श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

काव्यकौस्तुभः

श्रील श्रीबलदेवविद्याभूषण-पाद-विरचितः

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण,
सांख्य, मीमांसावेदान्ततर्कतर्कतर्क, वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितः ।

सद्ग्रन्थप्रकाशक
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरिप्रेस
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

मुद्रक*प्रकाशक :—

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदास निवास, कालीदह,

पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा (उ० प्र०)

पिन—२८११२१

प्रकाशनतिथि—२२।१०।८७

प्रथम-संस्करण—१०००

प्रकाशन सहायता—रु० ३०.००

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

—०*०—

विज्ञप्तिः

—०*०—

काव्य कौस्तुभ नामक ग्रन्थ प्रणेता श्रीबलदेव विद्याभूषणपाद हैं। प्रस्तुत अलङ्कार ग्रन्थ नव प्रभात्मक है। प्रथमा प्रभा--काव्य निर्णय, द्वितीया प्रभा--शब्दार्थ तद्वृत्ति निर्णय, तृतीया प्रभा--रस निर्णय, चतुर्थी प्रभा--गुण निर्णय, पञ्चमी प्रभा--रीति निरूपण, षष्ठी प्रभा--दोष निर्णय, सप्तमी प्रभा--ध्वनि भेद निरूपण, अष्टमी प्रभा--मध्यम काव्य निर्णय एवं नवमी प्रभा-शब्दार्थालङ्कार निर्णयात्मक है।

निज रचित साहित्य कौमुदी ग्रन्थ के समान इस में भी पूर्णतया समस्त विषय निबद्ध हैं। स्वाधीन रूप से इस में समस्त प्रमेय का विश्लेषण हुआ है। एवं विषादन प्रभृति कतिपय नवीन अलङ्कारों का सन्निवेश भी इस में है। उदाहरण समूह प्रायशः पूर्व्वाचार्य्य की उक्ति से सन्निविष्ट हुये हैं।

श्रीबलदेव विद्याभूषण--उड़िष्या प्रदेशस्थ रेमुणा के समीप वर्त्ती किसी ग्राम में जन्म ग्रहण आनुमानिक खृष्टीय अष्टादश शताब्दी में किये थे।

चिल्काह्रद के तीर स्थित किसी शास्त्रज्ञ के निकट व्याकरण, एवं न्याय शास्त्र अध्ययन करके वेद अध्ययनार्थ आप महीशूर गमन किये थे। एवं वहाँ माध्व सम्प्रदाय का शिष्यत्व अङ्गीकार किये थे, अनन्तर सन्यास ग्रहण पूर्वक पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थ तत्त्ववादि के मठ में अवस्थान किये थे।

अनन्तर श्रीरसिकानन्द प्रभुके प्रशिष्य कान्य कुब्ज निवासी श्रीराधा दामोदर (वेदान्त स्यमन्तक ग्रन्थ रचयिता)विप्र के निकट

श्रीजीव गोस्वामी प्रणीत मौलिक व्रज भक्ति प्रतिपादक षट् सन्दर्भ अपर नाम भागवत सन्दर्भ ग्रन्थ अध्ययन करके श्रीचैतन्यदेव प्रवर्त्तित गौड़ीय वैष्णव धर्म के विगाढ़ मर्म्म में आकृष्ट होकर श्रीराधा--दामोदर विप्र के शिष्य हुये थे।

श्रीपीताम्बर दास के निकट भक्ति शास्त्र एवं श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्त्ती पाद के निकट श्रीमद् भागवत अध्ययन किये थे, एवं विरक्त वैष्णव वेश ग्रहण कर 'एकान्ति गोविन्ददास' नाम से प्रख्यात हुये थे। श्रीवृन्दावनमें स्थित श्रीश्यामसुन्दर विग्रह प्रतिष्ठाता आप ही हैं। उद्धव दास एवं नन्दमिश्र इनके प्रधान शिष्य थे।

ब्रह्मसूत्र समूह के श्रीगोविन्द भाष्य प्रणयन कर आप गौड़ीय वेदान्ताचार्य्य नाम से ख्यात हुये थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ति पाद के चरम वयस में जयपुरस्थ मन्दिर समूह से वङ्गीय सेवाधिकारि वृन्द निष्काशित होने पर श्रीगोविन्द देव के आदेश से श्रीमत् कृष्ण-देव सार्वभौम के सहित जयपुरस्थ विपक्ष वृन्द को शास्त्रार्थ द्वारा पराजित करके 'गलता' नामक पार्वत्य प्रदेश में गौड़ीय वैष्णवों को पुनः प्रतिष्ठित करके वहाँ 'श्रीविजय गोपाल विग्रह' स्थापन किये थे, अद्यापि वह विग्रह तत्रत्य मन्दिर में विराजमान हैं। इसी समय आप श्रीगोविन्द देव के आदेश से 'श्रीगोविन्द भाष्य प्रणयन कर गौड़ीय वैष्णवों को सुप्रतिष्ठित किये थे। आप के द्वारा रचित ग्रन्थावलि का विवरण इस प्रकार है।

(१) षट् सन्दर्भ की टीका, (२) लघु भागवतामृत की टीका, (३) सिद्धान्तरत्न, (४) प्रमेयरत्नावली, (५) सिद्धान्त दर्पण (६) श्यामानन्द शतक की टीका, (७) नाटक चन्द्रिका की टीका, (८) साहित्य कौमुदी, (९) काव्य कौस्तुभ, (१०) छन्दः कौस्तुभ की टीका, (११) श्रीमद् भागवत की टीका वैष्णवानन्दिनी, (१२) दशोप निषत् की टीका, (१३) श्रीगोपाल तापनी टीका, (१४) श्रीभगवद् गीता भाष्य, (१५) स्तव माला की टीका (१६) ऐश्वर्य्य कादम्बिनी प्रभृति ग्रन्थ प्रणयन के द्वारा गौड़ीय वैष्णव साहित्य की सेवा आप

प्रचुर रूप से किये हैं।

यशः, अर्थ, सुखमय व्यवहार ज्ञान, परमशान्ति, एवं सुमधुर रीति से कर्त्तव्याकर्त्तव्य बोध लाभ हेतु काव्य शास्त्रकी आवश्यकता मानव समाज में अपरिहार्य्य रूप से है।

"अलङ्कार शास्त्र" को सुधीगण काव्यमीमांसा शब्दसे कहते हैं, उक्त नामसे ही अलङ्कार शास्त्र की सम्यक् उपयोगिता परिस्फुट होती है, अलङ्कार शास्त्र में व्युत्पन्न व्यक्ति,--काव्य रचना में एवं काव्यस्थ गुणदोष रीति अलङ्कार प्रभृतिका परिज्ञान करनेमें सक्षम होता है। चिकित्सा शास्त्र में निदान की आवश्यकता जिस प्रकार होती है, उस प्रकार ही भाषा में व्याकरण की आवश्यकता है, काव्य में भी अलङ्कार शास्त्र की आवश्यकता तद्रूप ही है। प्रस्तुत शास्त्र में दोष, गुण, रीति रसादिका सन्निवेश प्रचुरतया होने पर भी मुख्य रूपसे 'अलङ्कार' शब्द से ही कहते हैं।

भामहोद्भट रुद्रट वामन प्रभृति प्राचीन आलङ्कारिकगण गुणालङ्कार की प्रायशः समता को मानकर "अलङ्कारा एव काव्ये प्रधानमिति" अलङ्कार आख्या देते हैं। अतएव अलङ्कार की प्रधानता के कारण शास्त्र भी अलङ्कार नाम से परिचित हुआ। इस प्रकार सिद्धान्त को ही अलङ्कार प्रस्थान कहते हैं।

काव्यादर्श नामक ग्रन्थ में श्रीदण्डीने प्रधानतया अलङ्कार का स्थापन करने पर भी "गुणा एव काव्यप्राणाः" कहकर गौड़ीय वैदर्भी रीति भेद का निरूपण किया है। 'श्लेषः प्रसादः समता' इत्यादि दश गुण वैदर्भी मार्गका प्राण हैं। इसके विपरीत ही उनके मत में गौड़ीय रीति है। वामन ने भी काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति में "गुणं काव्यशोभाविधायकं, अलङ्कारश्च गुणकृत काव्यशोभाया उत्कर्ष सम्पादकम्" कहकर गुणों का प्राधान्य ही माना है। इनके मत में "रीतिरेव काव्यात्मा"। वैदर्भी पाञ्चाली गौडी रीति के मध्य में वैदर्भी रीति ही श्रेष्ठ है। ध्वन्यमान अर्थ को ही वाच्यार्थ का उपकरण मानकर इस मत में भी अलङ्कार का प्राधान्य स्वीकृत है।

इसे रीतिप्रस्थान कहते हैं। भामहोद्भट-अलङ्कार का सर्वथा प्राधान्य को मानते हैं, एवं उससे अतिरिक्त धर्मान्तर का अस्तित्व को भी नहीं मानते हैं, अन्यान्य धर्म समूह का अन्तर्भाव अलङ्कार में करते हैं।

भरत नाट्य शास्त्र में अलङ्कार एवं दोष गुणों की विवृति है। आचार्य वामन ने शब्दगुणार्थगुणों का पार्थक्य सुस्पष्ट रूपसे दर्शाया है, भोजराज कृत सरस्वती कण्ठाभरण में दोष गुणों का विस्तृत विवरण एवं विभाग निरूपण भी है। रुद्रट् कृत काव्यालङ्कार में गुण अलङ्कार, दोष रीतियों का सन्निवेश समानरूपसे विद्यमान है। लाटीरीति को मानकर उन्होंने चतुर्विध रीति का प्रतिपादन भी किया है। लघु समास निबद्धा रचना को पाञ्चाली, मध्य समास युक्ता को लाटी, अतिविस्तृत समास बहुल रचना को गौड़ी कहते हैं, समास रहिता रचना को वैदर्भी कहते हैं, शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार का भेद प्रदर्शन भी आपने किया है।

रुद्रट के ग्रन्थ में रस शब्दकी अवतारणा है, आपने "शृङ्गार वीर करुण बीभत्स भयानक अद्भुत हास्य रौद्र शान्त प्रेयान्' रूपमें दशविध रसका उल्लेख किया है। शृङ्गार रसका-सम्भोग-विप्रयोग भेद-नायकनायिका भेद का वर्णन भी आपने किया है। विप्रलम्भ शृङ्गार में उपमानुराग, मान प्रवास करुण रूपमें अवान्तर भेद भी माना है। वस्तुतः प्राचीन आलङ्कारिकों के मध्य में आपने ही रस का प्राधान्य एवं महत्त्व को घोषित किया है।

अग्निपुराणस्थ ३३७ अध्याय से ३४० पर्यन्त अलङ्कार का वर्णन है। 'लक्ष्मीरिव विना त्यागान्तवाणी भाति नीरसा" (अग्नि ३३९।९) न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः। (३३९।१२) चिन्मयब्रह्म की स्वाभाविक आनन्दाभिव्यक्ति होने से चमत्कार अपर पर्य्याय रस होता है, रस का प्रथम विकार ही अहङ्कार है, उससे अभिमान होता है, उससे प्रीति का उद्रेक होता है। यह रति विभावानुभावसात्त्विक व्यभिचारी के सम्बलन से शृङ्गार रस होता है। (३३९।१-४)

राग से—शृङ्गार, उग्रता से—रौद्र, अवष्टम्भ से—वीर, संकोच से बीभत्स रस होता है। और भी शृङ्गार से—हास्य, रौद्र से—करुण, वीर से—अद्भुत बीभत्स से—भयानक रसोत्पन्न होता है। (३३९।५-८) काव्य शोभावर्द्धक धर्म को अलङ्कार कहते हैं, 'अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते' अलङ्कार के विना शब्द सौन्दर्य मनोहर नहीं होता है। अर्थालङ्कार रहित सरस्वती विधवा की भाँति होती है। (३४३-२)

"लक्ष्मीरिव विना त्यागान्त वाणी भाति नीरसा। (३३९।९)
न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।" (३३९।१२)

शब्दार्थ—उभयविध अलङ्कार भेद से अलङ्कार त्रैविध्य का उल्लेख इस पुराणमें है। "शब्दार्थयोरलङ्कारो द्वावलङ्कुरुते समम्। एकत्र निहितोहारः, स्तनं ग्रीवामिवस्त्रियः॥" (३४५।१)

परवर्त्ती आलङ्कारिकगण रस का आत्मारूप में वर्णन करने पर भी पूर्व प्रचलित अलङ्कार शास्त्र नाम से ही परिचित है।

ध्वन्यालोक में (१।५) आनन्दवर्द्धनाचार्य्य ने "काव्यस्यात्मा स एवार्थः" कह कर ध्वनि को ही काव्यात्मा माना है। इनके मत में ध्वनिके द्वारा अथवा व्यङ्ग्यार्थ के द्वारा अभीप्सित वस्तु प्रतिपादन से काव्य चमत्कारिता एवं सौन्दर्य्य की अभिवृद्धि होती है। व्यञ्जना रूप व्यापारान्तर से वस्तु एवं अलङ्कार का रस भावादि का परिज्ञान होने से उत्तम काव्य होता है। ध्वनि से ध्वन्यन्तर होने से काव्य उत्तमोत्तम नाम से अभिहित होता है। श्रीविश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण नामक ग्रन्थ में 'रसात्मक' वाक्य को ही काव्य कहा है। आनन्दवर्द्धनाचार्य्य ने व्यञ्जनावृत्ति विरोधी मतवादों का निरास करके ध्वनि वाद का स्थापन किया है। अभिनव गुप्तने भी 'लोचन' नामक ध्वन्यालोक की टीका में अर्वाचीन विपक्षों के मतवादका निरास करके ध्वनिवाद का स्थापन

किया है। अनन्तर मम्मटभट्ट ने भी काव्य प्रकाश में व्यञ्जनावृत्ति की महिमा का गान सर्वातिशय रूप से किया है। काव्य प्रकाश की रीति के अनुसरण से ही कविराज श्रीविश्वनाथ ने साहित्य दर्पण की रचना की है। उसके बाद पण्डितराज श्रीजगन्नाथ ने रसगङ्गाधर' नामक ग्रन्थरत्न में पूर्वाचार्य्यकृत अस्पष्ट सन्दिग्ध प्रमेय समूह का स्थापन निःसन्दिग्ध रूप से किया है। रुय्यक ने अलङ्कारों का श्रेणी विभाग तथा अवान्तर भेद का प्रदर्शन अलङ्कार सर्वस्व में किया है। साहित्यदर्पण--रसगङ्गाधर एकावली चित्रमीमांसा प्रभृति ग्रन्थ में रुय्यक मत का ही सुसंग्रह हुआ है।

"रसो वै काव्यस्यात्मा" काव्य का आत्मा रस है, इस मत का समादर अनेकों ने नहीं किया, किन्तु नवीन आलङ्कारिकों ने काव्यात्मा रसको व्यञ्जनावृत्ति लभ्य कह कर उक्त मतको सम्मानित ही किया है। ध्वनि मत में प्राचीनार्वाचीन प्रसिद्ध मत समूह का समावेश यथायथ रूप में हुआ है। उन सबों में परस्पर सम्बन्ध तथा असन्दिग्धता विशेष रूप से परिलक्षित होती है। अतएव "रसो वै काव्यस्यात्मा" मत का बहुशः समर्थन हुआ है। "रसो वै काव्यस्यात्मा" शब्दार्थो तस्य शरीरं, गुणारसधर्मा एव।

प्राचीन आलङ्कारिकों के मत में काव्य प्राणरूप में जिसका निरूपण हुआ है, वह अलङ्कार है। काव्य शरीरभूत शब्दार्थ का शोभा सम्पादक रूप में काव्यात्मभूत रसाभिव्यक्ति का ही वह कारण है। यह सिद्धान्त "ध्वनिप्रस्थान" नामक चतुर्थ श्रेणी का है।

इस मत में शब्दार्थ का अविच्छेद्य सम्बन्ध स्वीकृत हुआ है। गुण—शब्दगत एवं अर्थगत है। दोष एव अलङ्कार शब्दार्थ उभय धर्मरूप में स्वीकृत हुआ है। काव्यात्मभूत रस ध्वनि की अभिव्यक्ति में प्रत्येक की उपयोगिता है। इस प्रकार सर्वाङ्गीण ध्वनि प्रस्थान का समादर समस्त सहृदय मनीषिओं ने किया है। प्रसङ्गवशातः ऋग्वेदीय अलङ्कार समूह का प्रदर्शन करते हैं—यास्ककृत निघण्टु में (३।१३) वैदिक पर्य्याय निरूपण प्रसङ्ग में उपमालङ्कारों का

विवरण है।—

इदमिव (१), इदं यथा (२), अग्निर्नये (३), चतुरश्चिद्दद-मानात् (४), ब्राह्मणा व्रतचारिण: (५) वृक्षस्य नु ते पुरुहुतवया: (६), जार आ भगम् (७), मेषोभूतोऽभी यन्नय: (८), तद्रूप: (९), तद् वर्ण: (१०), तद्वत् (११) तथा (१२), इति द्वादशोपमा।

अस्य विवृत्ति यथा नैघण्टुक काण्डे—

अस्य निपाता उच्चावचेष्वर्थे निपतन्ति उपमार्थेऽपि, उपमा नाम—कस्मिंश्चिदेवार्थे य: प्रसिद्धो गुण: तदन्यस्मिन्न प्रसिद्धस्तद्: गुणेऽर्थे शब्दमात्रेण यदुपसंयोज्य तद्गुणप्रकाशनं क्रियते—सोपमा। दुर्मदासो न सुरायामित्युपमार्थीय उपरिष्टात् उपचार स्तस्य येनोपमिमीते, (५।७।१८) मन्त्रेऽस्मिन् न शब्दोऽयं उपमार्थ व्यवहृत:। लौकिके संस्कृते 'न' शब्दो निषेधार्थे प्रयुज्यते, वेदे तु निषेधोपमा-द्योतकोऽयमिति मन्तव्यम्। व वा शब्दावपि उपमावाचकौ। लौकिके तु केवलमुपमार्थे तौ प्रयुज्येते यथा—(१) जातामन्ये तुहिन मथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् (मेघदूतं ८३), (२) मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते (सिद्धान्त कौमुदी). (३)हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्य्योधनो वा शिखी (मृच्छ ५।६)। पुनरुपमा लक्षण निर्णय—सामान्य लक्षणमासां ब्रवीति "यदतत्तत् सदृशमिति गार्ग्य:।" यत् किञ्चिदर्थ-जातमतद्भवति, तत् स स्वरूपं च, यथा—अनग्नि: खद्योत:, अग्नि सरूपश्च सोऽग्निनोपमीयते—अग्निरिव खद्योत इति। एवमेतत् सरूपेण गुणेन गुणसामान्यादुपमीयते-इत्येवं गार्ग्य: आचार्यो मन्यते। 'तदासां कर्म' स आसामुपमानानामर्थ: यदप्रसिद्धतर गुणस्य कस्यचित् प्रसिद्धतर गुणेनान्येन गुण प्रकाशनमित्यादि। ज्याय सा वा गुणेन, प्रख्याततमेन वा कनीयांसे वा प्रख्यात: वोपमिमीते। तद् यथा—सिंहे मानवक: चन्द्र इव कान्तो मानवक: इत्यादि।

(१) तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू (७।५।३२।६), सक्तुमिव तितउना (८।२३।२२), अत्र इव शब्द उपमा द्योतक:। (२) यथा इति—यथा

कर्मोपमा, "यथा वातो यथा वनं" यथा समुद्र एजति (४।४।२०।४) अत्र यथा—इव। (३) अग्नि र्न ये व्राजसा (८।३।१२।२), अत्र न—इव। (४) "चतुरश्चिद्ददमानात्" अत्र चित्—इव। (५) "ब्राह्मणा व्रतचारिणः" (५।७।३।१), "अत्र ब्राह्मण इव व्रत चारिणः" इति लुप्तोपमा। (६) 'वृक्षस्य नु ते' (४।६।१७।३), अत्रोपमार्थे 'नु'। (७) 'जार आ भगम्' (३।६।१०।१), आ इव। (८) मेषोभूतो भि यन्नयः (५।७(२४।५), अत्र मेष इत्येषा भूत शब्देनोपमा। (९—१०) अग्निरिति—एषा रूपोपमा, हिरण्य वर्णः (२।७।२३।५), (११) वदिति—एषा सिद्धोपमा, ब्राह्मण वदधीते, वृषलवच्चाक्रोशति। (१२) 'था' इत्ययं चोपमाशब्दः, तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (४।२।२३।१)

अथ लुप्तोपमान्यर्थोपमानीत्या चाक्षते— सिंहो व्याघ्रः, इति पूजायां, श्वा काक इति कुत्सायां, काक इति शब्दानुकृति स्तादिदं शकुनिषु बहुलं न शब्दानुकृति विद्यते इत्यौपमन्यवः।

उदाहृते मन्त्रसमूहे उपमानां चातुर्विध्यं स्वीकृतमस्ति—

(१) कर्मोपमा, (२) रूपोपमा, (३) सिद्धोपमा, (४) लुप्तोपमा यास्केन उपमान—शब्दोऽनि व्यवहृतः। "यावन्मात्रमुषसोन प्रतीकम्" इति (८।४।१२।३), मन्त्र व्याख्यायां वास्त्युपमानस्य संप्रत्यर्थे प्रयोगः।

पाणिनि ने स्वीय व्याकरण में उपमानोपमित सामान्य प्रभृति शब्दों का प्रयोग किया है।

(१) उपमा—उपमानानि सामान्य वचनैः (२।१।५५), उपमानादप्राणिषु (५।४।९७), उपमानाच्च(५।४।१३७),(२) उपमितं —उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे (२।१।५६), (३) सामान्यम् (२।१।५५, ५६), इत्यादौ महाभाष्ये (२।१।५५), चोपमानस्य लक्षणमास्ते निरूपितम्॥

सम्प्रति ध्वनि प्रस्थानानुसरणरत गौड़ीय वैष्णव साहित्य समूह में निबद्ध प्रणाली एवं अलङ्कारों का दिग्दर्शन करते हैं।

१४६३ शकाब्दा में श्रीरूपगोस्वामीचरण ने श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु का प्रणयन किया, तदनन्तर शकाब्दा १४७१ में श्रीउज्ज्वलनीलमणि नामक परिशिष्ट ग्रन्थ का निर्म्माण किया, रसामृतसिन्धु ग्रन्थ का ही उज्ज्वलनीलमणि परिशिष्ट ग्रन्थ है। ग्रन्थकार ने स्वयं हि कहा है। (पश्चिम १।२)

"निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरूहत्वादयं रसः।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य विततांगोऽपि लिख्यते॥"

उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें श्रृङ्गार रसका ही सुविस्तृत वर्णन हुआ है, यह ग्रन्थ श्रीशिङ्गभूपाल कृत 'रसार्णवसुधाकर' के छायावलम्बन से रचित हुआ है। रसामृत एवं उज्ज्वल में भक्तिरस का ही सम्यक् आलोचना है, गोस्वामीपाद ने भक्ति को ही मुख्य अभिधेय रूप में माना है, एवं भक्ति रस का अभिनव व्याख्यान भी प्रस्तुत किया है। रसामृतोक्त भक्तिरस लक्षण इस प्रकार है,—

"विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकै र्व्यभिचारिभिः
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्ण रतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत्॥"(२।१।५-६)

भाग्यवान् जन ही भक्तिरसास्वादन का अधिकारी है, उन्होंने अधिकारी का निर्णय निम्नोक्त शब्दों से किया है।

"प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्ति वासना।
एष भक्तिरसास्वादतस्यैव हृदि जायते॥"

रस—ब्रह्मवत् अवाङ्मनसोगोचर होने पर भी भाग्यवान् द्रष्टा, श्रोता, रसास्वादन करने में सक्षम होते हैं। दृश्य काव्य में द्रष्टा, श्रव्य काव्य में श्रोता को सामाजिक कहते हैं, दृश्य काव्य में अनुकार्य्याभिनय दर्शक का, श्रव्यकाव्य में वर्णनीय नायक का वर्णनकारी के श्रोता का रसास्वाद होता है। यह मत अनेक आलङ्कारिकों का सम्मत है। 'तस्मादलौकिकः सत्यं वेद्यः सहृदयरयम्' साहित्यदर्पणकार ने भी कहा है। (३)

भक्तिरसामृतोक्त 'रसलक्षण' दस प्रकार है— (२।५।१०४)

व्यतीत्य भावना वर्त्म यश्चमत्कार सार भूः ।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले वाढ़ं स्वदते स रसो मतः ॥

भरतमुनि ने भी कहा है—

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकै र्व्यभिचारिभिः
स्वाद्यत्वं नीयमानासौ स्थायी भावो रसो मतः ॥

अलङ्कारकौस्तुभ में भी उक्त है—

वहिरन्तः करणयो र्व्यापारान्तर रोधकम् ।
स्वकारणादिसंश्लेषि चमत्कारि सुखं रसः ॥

रस का निमित्त कारण विभाव है, समवायि—स्थायिभाव है, असमवायि—सञ्चारि भाव है । कार्य रूप में अनुभाव एवं सात्त्विकादि का ग्रहण होता है । सारार्थ यह है कि—सामाजिक के चित्तगत स्थायिभाव—काव्यगत विभानुभाव सात्त्विक व्यभिचारि भाव के सहित मिलित होकर रस होता है, अर्थात् आस्वादन अवस्था को प्राप्त करता है । प्राकृत एवं अप्राकृत भेद से रस-शास्त्र दो प्रकार हैं, भक्ति वादियों के मत में प्राकृत नायक प्रभृति का रसास्वाद नहीं होता है, किन्तु श्रीरामसीतादिवत् दिव्य नायक नायिका का रसास्वाद होता है । अतएव भगवद् विषयक काव्य-शास्त्र विनोद के विना सामाजिक का रसास्वाद नहीं होता है । अनुकार्य्य का रसास्वादन ही जब नहीं होता है, तब तो सामाजिक का रसास्वादन होना भी असम्भव है । प्राकृत अनुकार्य्यादि का रसास्वादन असिद्ध होने से लौकिक काव्यनाट्य की आलोचना से सामाजिक का भी रसास्वादन नहीं होगा । साधारण रसवेत्ता के मत में "पारिमित्याल्लौकिकत्वात् सान्तरायत्वाच्च, (साहित्यदर्पण-३) अनुकार्य्य में रसास्वादन असिद्ध होने पर भी महाकवि के लेखनी नैपुण्य से काव्य--नाटचादि से रसास्वादन होना सम्भव है । इससे सत् सामाजिक का भी रसास्वाद

होता है । भक्तिरसायन में श्रीमधुसूदन सरस्वतीपाद ने भी कहा है— "अतस्तदाविर्भावित्वं मनसि प्रतिपद्यते ।
किञ्चिन्न्यूनाञ्च रसतां याति जाड्यविमिश्रणात् ॥" (१।१३)

टीका—विषयावच्छिन्न चैतन्यमेव द्रवावस्थमनोवृत्त्यारूढ़तया आविर्भावित्वं प्राप्यरसतां प्राप्नोतीति न लौकिक रसस्यापि परमानन्दरूपतानुपपत्तिः, अतएव अनवच्छिन्न चिदानन्दघनस्य भगवतः स्फुरणात् भक्तिरसेऽत्यन्तानन्दमाधिक्यमानन्दस्य लौकिक रसे तु विषयावच्छिन्नस्यैव चिदानन्दांशस्य स्फुरणात्तत्दानन्दस्य न्यूनतैव, तस्माद् भक्तिरस एव लौकिक रसानुपेक्ष्य सेव्यइत्यर्थः ।

भक्तिरसामृत के रस लक्षण में—"हृदि सत्त्वोज्ज्वले वाढ़ं स्वदते स रसो मतः" सत्त्व शब्द का उल्लेख हुआ है । साधारणतः प्रतीति के लिए साहित्यदर्पणोक्त विश्लेषण से ही उसका अर्थ जानना आवश्यक होगा । भक्ति स्वरूप को अप्राकृत चिदानन्द रूप माना गया है । साहित्य दर्पणकार ने कहा है—

"रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते । वाह्यमेय विमुखतापादकः कश्चनान्तरो धर्मः सत्त्वमिति च ।"

अतएव काव्यनाटच दर्शनरत साधारण समस्त व्यक्तियों का रसास्वाद नहीं होता है । भाग्यवान् सहृदय व्यक्ति का ही रसास्वाद होना सम्भव है । साधारण रसग्रन्थ में इस सत्त्व को ही सामाजिक का स्थायीभाव कहते हैं । उसके विना सामाजिक का रसास्वाद नहीं होता है । सत्त्वोद्रेक का हेतु निरूपण भी दर्पणकार ने किया है—"अत्र च हेतु स्तथाविधालौकिक काव्यार्थ परिशीलनम् ।" अर्थात् अलौकिक काव्यार्थरूप विभावादि का सम्यक् अनुशीलन से ही अत्यन्त अभिनिवेश होता है । उससे ही सत्त्वोद्रेक होना सम्भव है । अतएव—"सामाजिकचित्तगतस्थायिभावो हि काव्यनाटचस्थित विभावादिभिर्मिलित्वा रसाय कल्पतेति" कथन समीचीन है ।

भावः—प्रायशः रसभाव का साम्य होने पर भी उभय में किञ्चित् तारतम्य विद्यमान है । रसामृत के (२।५।१०५) में भाव

लक्षण यह है—

"भावनायः पदं यस्तु बुधेनान्यबुद्धिना।
भाव्यते गाढ़ संस्कारैश्चित्ते भावः स कथ्यते ॥"

भरत ने भी कहा है—देहात्मकं भवेत् सत्त्वं सत्त्वाद् भावाः समुत्थिताः, रसानुभवोपयोगिजन्मान्तरीण संस्काराधिक सूक्ष्मभावेन शिशुतायां स्थितमपि तद्विकाशाय सामाजिकस्थ (अनुकार्य्यस्यापि) वयःसन्धि प्रभृतिकं वयोवस्था विशेषमपेक्षते ॥

"रस तरङ्गिणी" ग्रन्थ में भानुदत्त ने भी कहा है—"चित्तस्य रसानुकूलो विकारोऽवस्थाविशेषो वा भावः" विकारोऽयं द्विविधः-- (१) आन्तरः, (२) शारीरश्च। स्थायी सञ्चारी च भावः आन्तरः, तथानुभावः (उद्भास्वर-नृत्यगातादिकं) सात्त्विक भावश्च शारीरो विकारः। स्थायिभावो हि मुख्यतया पञ्चविधो गौणतश्च सप्तएव। सञ्चारिणा स्त्र्यस्त्रिंशत् सात्त्विकाश्चाष्टु। सामाजिकस्य (अनुकार्य्यस्यापि) चित्ते स्थायिभावस्य परिपुष्टतानुयायि खलु अनुभाव--सञ्चारिभावयो स्तरंग प्राबल्यस्यापि न्यूनाधिक्य जायते।

अलङ्कार कौस्तुभ (५) में स्थायीभाव का वर्णन है—

"आस्वादाङ्कुरकन्दोऽस्मि धर्मः कश्चन चेतसः।
रजस्तमोभ्यां हीनस्य शुद्धसत्त्वतया मतः॥
स स्थायी कथ्यते विज्ञै विभावस्य पृथक्तया।
पृथग्विधत्वं यात्येष सामाजिकतया सताम् ॥"

सामाजिकतया सतां सामाजिकानामेक एव कश्चिदास्वादाङ्कुरकन्दो मनसः कोऽपि धर्मविशेषः स्थायी। स तु विभावस्योक्तप्रकार द्विविधस्य भेदैरेव भिद्यते। अनुकार्य्याणान्तु स्वतन्त्रा एव स्थायिनो नानाविधाः।

पूर्वोक्त द्वादश प्रकार भाव निज निज अनुकूल उपकरणो के सहित मिलित होकर परम आस्वादन अवस्था को प्राप्त करते हैं। एवं अनवच्छिन्न सुस्थिर रूप से हृदय में अवस्थित होकर स्थायीभाव

कहलाते हैं। उक्त द्वादश विधता को छोड़ कर अपर कोई भाव स्थायीभाव नाम से परिचित नहीं होते हैं। उसके मध्य में कतिपय भाव सञ्चारिता को प्राप्त करते हैं,—जिस प्रकार मधुर में हासादि, साहित्यदर्पणकार के मत में (साहित्यदर्पण ३) "रत्यादयोऽप्यनियते रसे स्यु र्व्यभिचारिणः" प्रबलमभिव्यक्तः सञ्चारी,सामान्यतया व्यक्त स्थायी, तथा देवादि विषयारतिश्चापातततो भाव इति कथ्यते।

"सञ्चारिणः प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
उद्बुद्धमात्रस्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥"

श्रीबलदेव कृत साहित्य कौमुदी के (४।१२) मूल में उक्त है,--

"रतिर्देवादि विषया व्यभिचारी तथाजितः ॥" (४।१२)

कृष्णानन्दिनी टीका में लिखित है--"किञ्च हासादयः क्वचिद् व्यभिचारिणश्च स्युः, यदुक्तं श्रृङ्गारवीरयोर्हासो वीरे क्रोधस्तथा मतः। शान्ते जुगुप्सा कथिता व्यभिचारितया पुनः ॥" (४।१३)

सञ्चारिभाव भावों के परिचय में (३।२३५) साहित्य दर्पणकार ने "सञ्चारिणः प्रधानानि" शब्द से कहा, दृष्टान्त रूप में टीका में भी कहा—"परमविश्रान्ति स्थानेन रसेन सहैव वर्त्तमाना अपि राजानुगत विवाह प्रवृत्तभृत्यवदापाततो यत्र प्राधान्येनाभिव्यक्ता व्यभिचारिणो देव-मुनि-गुरु-नृपादि-विषया च रतिरुद्बुद्धमात्रा विभावादिभिरपरिपुष्टतया रसरूपतामनापद्यमानाश्च स्थायिनो भावा भावशब्दवाच्यः'।

विभावेनानुभावेन व्यक्त सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ॥(दर्पण ३।१)

विभावादयो वक्ष्यन्ते। सात्त्विकाश्चानुभावरूपत्वात् न पृथगुक्ताः व्यक्तो दध्यादि न्यायेन रूपान्तरपरिणतो व्यक्तीकृत एव रसो नतु दीपेन घट इव पूर्वसिद्धो व्यज्यते। तदुक्तं लोचनकारैः—"रसाः प्रतीयन्ते इति त्वोदनं पचतीतिवद्व्यवहारः" इति। अत्र च रत्यादि पदोपादानादेव स्थायित्वे प्राप्ते पुनः स्थायिपदोपादानं रत्यादीनामपि रसान्तरेष्वस्थायित्वप्रतिपादनार्थम्। ततश्च हास क्रोधादयः श्रृङ्गार

वीरादौ व्यभिचारिण एव । तदुक्तं "रसावस्थ: परं भाव: स्थायितां प्रतिपद्यते" रसावस्थोभाव एव स्थायोभाव: । अयमेव विभावादिभि- र्मिलित्वा रसाय परिणमति । "भावाएवाभिसम्बद्धा: प्रयान्ति रसरूपताम् ।" वस्तुतस्तुस्थितिरियमेव—

"न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जित:
परस्परकृतासिद्धिरुमयो रसभावयो: ।"

साहित्यदर्पण की इस उक्ति से प्रतीत होता है— रस एवं भाव कस्तूरी एवं कस्तूरी गन्ध के समान ही अविच्छेद्य सम्बन्धान्वित है ।

आलङ्कारिकों के मत में तो भाव भी रस ही है,—

"रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ ।
सन्धि: शबलता चेति सर्वेऽपि रसनाद् रसा: ॥"

रस धर्म के उपयोगी होने के कारण भावादि में भी उपचार से रस शब्द का प्रयोग होता है । भक्तिरसामृत में उक्त है,—

"भावा विभावजनिताश्चित्त वृत्तय ईरिता: ।"

नाटयशास्त्र का कथन है—

"विभावेनोद्धृतो योऽर्थ:, स भाव इति संज्ञित: ॥"

काव्य प्रकाश (४) में विभाव लक्षण निम्नोक्त प्रकार है—

कारणान्यथ कार्य्याणि सहकारीणि यानि च ।
रत्यादे: स्थायिनो लोके तानि चेन्नाटय काव्ययो: ।
विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिण: ॥"

लौकिक में रस का कारण–नायक एवं नायिका है । काव्य एवं नाटय में अभिनय एवं वर्णन कुशलता से विभावना को प्राप्त करते हैं, जैसे नलदमयन्ती है । सामाजिक का स्थायिभाव को विभावित करता है अर्थात् भावना पदवी को प्राप्त कराता है, अत: उसे विभाव कहते हैं । विभाव द्विविध हैं,—आलम्बन एवं उद्दीपन, नायक नायिकादि—आलम्बन हैं । कैशोर, वसन्त, मलयपवनादि- उद्दीपन हैं । रसामृत में उक्त है—(२।१।१५)

"तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादन हेतव: ।"

अग्निपुराण में वर्णित है—

"विभाव्यते हि रत्यादि र्यत्र येन विभाव्यते ।
विभावो नाम स द्वेधा आलम्बनोद्दीपनात्मक: ॥"

साहित्यदर्पण के मत में—"विभाव्यन्ते, आस्वादाङ्कुर प्रादुर्भाव योग्या: क्रियन्ते सामाजिक रत्यादिभावा एभिरिति विभावा उच्यन्ते ।'

विषयाश्रय भेद से आलम्बन द्विविध हैं—

(२) अनुभाव—(रसामृत २।२।१) अनुभावास्तु चित्तस्थ भावानामवबोधका: । चित्तस्थ भावों का अवबोधक को अनुभाव कहते हैं । अलङ्कार उद्भास्वर वाचिक भेद से त्रिविध का उल्लेख उज्ज्वल के अनुभाव प्रकरण में है ।

(३) सात्त्विक—(रसामृत २।३।१)कृष्ण सम्बन्धिभि: साक्षात् किञ्चिद् वा व्यवधानत: भावैश्चित्तमिहाक्रान्तं सत्त्वमित्युच्यते बुधै:, सत्त्वादस्मात् समुत्पन्ना ये भावास्ते तु सात्त्विका: ।"

अनुभाव विशेष ही सात्त्विक है, तथापि पृथक् नाम से अभिहित होने का कारण है । शुद्ध सत्त्व से आविर्भूत होने के कारण ही गोबलीवर्द्द न्याय से सात्त्विक कहते हैं । स्तम्भ कम्पादि अष्टविध होते हैं ।

विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति'
वागङ्ग सत्त्वसूच्या ये ज्ञेया स्ते व्यभिचारिण: ।
सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं सञ्चारिणोऽपि ते ॥

जो भाव स्थायीभाव को पुष्ट करता है, एवं उक्त स्थायीभाव से ही उत्थित होकर उसमें विलीन होता है, उसे सञ्चारी कहते हैं।

सामाजिक के स्थायीभाव को वैचित्री युक्त करता है, अत: इसे सञ्चारी कहते हैं । निर्वेद विषाद ग्लानि प्रभृति त्रयस्त्रिंशद् व्यभिचारी भाव हैं ।

विभाव के द्वारा सहृदय सामाजिक के चित्तमें जो भावित होता

है, उसे भाव कहते हैं। जिस से सामाजिक के चित्त में भावोन्मेष, अथवा आविर्भाव होता है, उसे भी भाव कहते हैं। मूलगत नायक नायिका को अनुकार्य्य कहते हैं। इस प्रकार अनुकार्य्य एवं सामाजिक एतदुभय में अनुभाव सात्त्विक व्यभिचारी भाव की स्थिति होती है।

संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) काव्य-नाट्य श्रवण दर्शन प्रभृति से सामाजिक के चित्त में विभाव—अनुभाव की उपस्थिति होती है।

(२) आक्षेप से अर्थात् व्यञ्जनावृत्ति से बोध होने पर सामाजिक के चित्त में सत्वर सञ्चारी एवं स्थायिभाव का आविर्भाव होता है।

(३) साधारणी करणाख्य व्यापार से 'नलदमयन्ती' का अथवा मेरा है, इस प्रकार रीति से विभावादि चतुष्टय का प्रत्यय सामाजिक का होता है।

(४) अनन्तर व्यञ्जनाके द्वारा अनुकार्य्यके सहित ही समानाकार रस की प्रतीति सामाजिक की होती है।

(५) स्वदनाख्य व्यापार के द्वारा 'अहमेव दमयन्ती विषयको रतिमान् नल एव' इस प्रकार स्वीयरसवासित चित्त में रत्यादि अभेदात्मक निज में नायकाभेदात्मकरससाक्षात्कार सहृदय सामाजिक का होता है। रसामृतसिन्धु एवं साहित्य कौमुदी में नाट्यशास्त्र के प्रमाण से साधारणीकरण का सुसंस्थापन हुआ है।

"शक्ति रस्ति विभावादेः कापि साधारणी कृतौ,
प्रमाता तदभेदेन स्वं यया प्रतिपद्यते।"

साधारण्य का अर्थ है—स्व एवं पर सम्बन्ध निर्णय न होना। रसामृतसिन्धु (२।५।१०१) की नाट्यशास्त्र श्लोक की टीकामें श्रीजीव गोस्वामी का कथन यह है—"मुनिवाक्ये तु भेदांशः स्वयमस्त्येव, इत्यभेदांश एव तु विभावादेः शक्तिरिति भावः।" भरतमुनि के मत में किन्तु नाट्य रसास्वादन प्रमाता सामाजिक है, दृश्यकाव्य का प्रेक्षक ही रसास्वादक होता है। सब व्यक्ति दर्शक सामाजिक नहीं

होते हैं—कारण कहा भी है—

"य स्तुष्टे तुष्टि मायाति शोके शोकमुपैति च।
क्रुद्धः क्रुद्धे भये भीतः स नाट्ये प्रेक्षकः स्मृतः॥"

उक्त रीति से श्रव्य काव्य में भी सहृदय श्रोता पाठक,—सामाजिक होगा, सवासन सभ्य का ही रसास्वादन होगा। वासना हीन व्यक्ति का रसास्वादन नहीं होता है, जिस प्रकार रङ्गमञ्चस्थ काष्ठ प्रभृति का रसोद्बोध नहीं होता है।

धर्मदत्त ने कहा—

"निर्वासनानान्तु रङ्गान्तः काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः।"

अभिनव गुप्तका कथन है—"येषां काव्यानुशीलनवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय तन्मयी भवन योग्यता, ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।"

आनन्दवर्द्धनाचार्य के मत में—"रसज्ञतैव सहृदयत्वमिति॥"

अलङ्कार कौस्तुभ (५) में उक्त है—"यदि तु विगलित वेद्यान्तरत्व मनुकर्त्तॄणामपि दृश्यते, तदा तेषामपि सामाजिकत्वमेव, अनुकरणन्तु संस्कारवशादेव जीवन्मुक्तानामाहारविहारादिवत्।" तेन सामाजिकानामेव रसः सम्पद्यते॥"

अलङ्कार कौस्तुभस्थ भक्ति रस का उदाहरण,—

"जय श्रीमद् वृन्दावन मदननन्दात्मजविभो
प्रियाभीरी वृन्दारिक निखिल वृन्दारकमणे।
चिदानन्दस्यन्दाधिक पदारविन्दासव मणे
नमस्ते गोविन्दाखिलभुवनक दाय महते॥"

अत्र देवविषयत्वाच्चेतोरञ्जकता रतिरेव भावः। स एव स्थायी; आलम्बनम्—श्रीकृष्णः, उद्दीपनम् तन्महिमादि अनुभावः हृदय द्रवादिः, व्यभिचारी—निर्वेद दैन्यादिः। परोक्षो भक्तानाम्, सामाजिकानान्तु प्रत्यक्षः॥

अलङ्कार कौस्तुभः में (५।१२) प्रेमरस का उदाहरण—

"प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवाद
स्त्वं मे प्राणा अहमपि तवास्मीति हन्त प्रलापः ।
त्वं मे ते स्यामहमिति च यत्तच्च नो साधु राधे
व्याहारे नौ नहि समुचितो युस्मदस्मत् प्रयोगः ॥"

अत्र चित्त द्रवःस्थायी, स च उभयनिष्ठः, आलम्बनमन्योन्यम् । उद्दीपनमन्योन्यगुणपरिमलः । अनुभावः,—विशिष्य निर्वचनाभावः, व्यभिचारी-मत्यौत्सुक्यादिः । परोक्षः-श्रीकृष्ण राधयोः, सामाजिकानां प्रत्यक्षः, प्रेमरसे सर्वरसा अन्तर्भवन्तीति प्रेमाङ्गं श्रृङ्गारादयोऽङ्गिन इत्यत्र महीयानेव प्रपञ्चः ।

भक्ति रस निर्णायक गौड़ीय वैष्णव ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यह है—(१) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-श्रीगौड़ीय रस-साहित्य कल्पतरु का सर्वोत्कृष्ट गलित फल स्वरूप असमोद्ध्र्व भक्ति रसविज्ञान शास्त्र है । श्रीचैतन्यदेव से शिक्षा प्राप्त श्रीपाद रूपगोस्वामी उक्त ग्रन्थ प्रणेता हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ सरस एवं विशुद्ध व्रजरीति परिपाटी का उपाय प्रदर्शक है, इस ग्रन्थ के तात्पर्य्यानुसार जीवन प्रणाली नियमित होने से मानब विश्वकीर्त्ति विस्तारी आनन्द वृन्दावन के अमृतमय राज्य में प्रवेश कर सकते हैं । इस में भक्ति रूपा उच्चतमा चिद्वृत्ति के धर्म-कर्मादि का अङ्कन विशेष निपुणता के सहित हुआ है । भक्ति रूपा चिद्वृत्ति का उद्भव, क्रमविकाश, एवं चरम परिणति का ईदृश मनोरम सर्वाङ्ग सुन्दर इतिहास अन्यत्र विरल है । विषय विभाग का नैपुण्य, निर्दोष सरस कवित्व, सुसूक्ष्म दार्शनिकता, मानव समाज में अपरिचित श्रेष्ठतम मानवता निर्म्माण के उपाय प्रदर्शकत्वादि का एकत्र अवलोकन की अभीप्सा होने पर इस ग्रन्थका अनुशीलन करना एकान्त कर्त्तव्य है । जो जन मुख्य भागवत वैष्णवीय भजन की विशुद्ध भजन प्रणाली को जानने के लिए समुत्सुक हैं । उनके लिए यह ग्रन्थ अवश्य अवलोकनीय है ।

अतीव सरस एवं परम पवित्रता की सुदृढ़तम भित्ति में सुप्रतिष्ठित जो गौड़ीय वैष्णव पद्धति है, उसका परिज्ञान भी इस

ग्रन्थ पाठ से ही होगा ।

चित्तवृत्ति को सुशिक्षाके द्वारा सुसंयत करने से ही मानव महान् होता है । प्राथमिक जीवन में असंयत चित्तवृत्ति समूह को किस प्रकार से संयत करके वैधी भक्तिको सहायता से परमादर्श परमप्रिय श्रीभगवच्चरणों में समाकृष्ट करना होता है । शास्त्रीय सुविधान से कैसे चित्त सुनिर्म्मल होकर उसमें श्रीभगवान् में प्रीति का उदय होता है, एवं उक्त प्रीति ही कैसे रागानुगा में परिणत होकर सांसारिक विषय वितृष्णा को उत्पन्न करके श्रीकृष्ण भजन को ही एकमात्र सुख कर रूप में प्रतिभात कराती है— इस ग्रन्थ में उसकी सुविस्तृत विवृत्ति है ।

अतुलनीया रागानुगा भक्ति कैसे भाव--भक्तयादि में सञ्चारित होती है । कैसे मानव व्रजभाव प्राप्त करने का अधिकारी होता है । भाव, अनुभाव, विभावादि का स्वरूप समूह साहित्यिक रसशास्त्र में दृष्ट होने पर भी कैसे मानव अखिल रसामृत मूर्त्ति श्रीभगवान् के भजन पथ में निर्दुष्ट अप्राकृत रसशास्त्र के विषय को लेकर अग्रसर हो सकता है । उस आनन्द लीलामय विग्रह के स्वरूप, गुणादि का बहुविध परिज्ञान उस ग्रन्थ से होता है । यह ही व्रजभक्ति रसका एकमात्र विज्ञान शास्त्र है ।

श्रीकृष्ण एवं भक्तिरस सम्बन्धि विस्तृत ग्रन्थ में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर रूप में विभाग चतुष्टय हैं । स्थायी भावोत्पादन नामक पूर्व विभाग में - सामान्य, साधन, भाव, प्रेमभक्ति विषयक लहरी चतुष्टय हैं । "भक्तिरस सामान्य निरूपण" नामक दक्षिण विभाग में—विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी एवं स्थायीभाव भेद से पञ्चलहरी हैं । "मुख्य भक्तिरस निरूपण" नामक पश्चिम विभाग में—शान्त, प्रीत भक्तिरस अर्थात् दास्य, प्रेयो भक्तिरस अथवा सख्य, वात्सल्य भक्तिरस एवं मधुर भक्तिरस भेद पञ्चलहरी तथा "गौण भक्तिरसादि निरूपण" नामक उत्तर विभाग में-क्रमशः हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, बीभत्स भक्तिरस, मैत्री

सेवा, श्रीमद्भागवतार्थास्वाद, साधुसङ्ग, नामसङ्कीर्त्तन, तथा श्रीधाम वास मुख्य है।

दुरुहाद्भुत वीर्य्येऽस्मिन् श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्धः, सद्धियां भावजन्मने ॥(२।११०)

प्रासङ्गिक रूप में युक्त वैराग्य (१२५) फल्गुवैराग्य निर्णय, एकाङ्ग अनेकाङ्ग भक्ति साधना की विवृत्ति है।

रागानुगा भक्ति लक्षण—

विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥

रागात्मिका—

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
(पूर्व २।१३२)

कामानुगा सम्बन्धानुगा भेद से उक्त भक्ति द्विविध हैं, (१४३) उक्त भक्त्यधिकारी जन, व्रजवासि जनादि भावलुब्ध जन ही हैं

तत्तद् भावादि माधुर्य्ये श्रुते धी र्यदपेक्षते।
मात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणम्॥

रागानुगा परिपाटी—

कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निज समीहितम्।
तत्तत् कथा रतश्चासौ कुर्य्याद् वासं व्रजे सदा॥ (१०५)
सेवा साधक रूपेण सिद्ध रूपेण चात्र हि।
तद्भाव लिप्सुना कार्य्या व्रजलोकानुसारतः॥(१५१)

भाव भक्ति लहरी, भाव लक्षण—

शुद्धसत्त्व विशेषात्मा प्रेमसूर्य्यांशु साम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥(३।१)

भावाविर्भाव कारण—

साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा,

प्रसादेनातिधन्यानां भावोद्वेधाभिजायते। (३।५)

भावाविर्भाव लक्षण—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नाम गाने सदारुचिः॥
आसक्तिस्तद् गुणाख्याने प्रीतिस्तद् वसति स्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्यु र्जात भावाङ्कुरे जने॥ (३।११)

प्रेमभक्ति लहरी में प्रेम लक्षण—

सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वाति शयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमानिगद्यते॥ (४।१)
प्रेमेदं भावोत्थ श्रीहरि प्रसादोत्थं चेति द्विधा भिद्यते।

प्रेमोदय में क्रम—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततोभावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥(४।११)

साधक देह में साधारण प्रेमाविर्भाव पर्य्यन्त होता है। प्रेम के विलास रूप स्नेहादि का आविर्भाव नहीं होता है। अतः स्नेहमानादि का वर्णन भक्तिरसामृत में नहीं है, उज्ज्वल में वर्णन हुआ है।

दक्षिण विभाग में—

(१) विभाव लहरी—विषयालम्बन श्रीकृष्ण के ६४ गुण समूह (१।११-११७), पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम भेद (११८-११९), धीरोदात्त--धीर ललित, धीरोद्धत, धीरप्रशान्त भेद (१२०--१२७), शोभाविलासादि अष्टगुण (१३३--१४०), सहाय (१४१), शान्त, दास, सखा, गुरु, प्रेयसी भेद से पञ्चविध भक्त (१५४), उद्दीपन विभाव गुणचेष्टा प्रसाधनादि (१५४--१८६)।

(२) अनुभाव लहरी—'अनुभावा चित्तस्थ भावानामवबोधकाः। (२।१), नृत्य विलुठित गीतादि।

(३) सात्विक लहरी — स्तम्भ स्वेद रोमाञ्च प्रभृति अष्टविध सात्विक, स्निग्ध, दिग्ध — रुक्ष भेद से त्रिविध।

(४) व्यभिचारी लहरी — निर्वेद विषाद दैन्यादि त्रयस्त्रिंशत्।

(५) स्थायिभाव लहरी—

अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन्
सुराजेव विराजेत सः स्थायी भाव उच्यते।
स्थायी भावोऽत्र सः प्रोक्तः श्रीकृष्ण विषयारतिः॥

मुख्य गौण भेद से द्विविध, प्रीति, सख्य, वत्सल्य, प्रियतारूप पञ्च मुख्य, हास विस्मयोत्साह शोक-क्रोध-भय-जुगुप्सा भेद से गौण सात हैं।

पश्चिम विभाग में—

(१) शान्त, (२) प्रीत, (३) प्रेयो, (४) वत्सल, (५) मधुर भक्तिरस का विभेद वर्णन।

उत्तर विभाग में—

हास्यादि सप्त गौण भक्तिरस, परस्पर मित्र वैरीस्थिति, रसाभास का वर्णन।

(२) उज्ज्वल नीलमणि—

अखिलरसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण का उज्ज्वल रस--विज्ञान शास्त्र है। इसमें नायक नायिकादि भेदादि शृङ्गार रस का विस्तृत वर्णन है।

(१) नायक भेद प्रकरण में—विषयालम्बन श्रीकृष्ण की मधुर रसोचित गुणावली, धीरोदात्तादि नायक भेद पति, उपपति भेदद्वय, परकीया रस में ही शृङ्गार रस का परमोत्कर्ष "अत्रैव परमोत्कर्षः शृङ्गारस्य प्रतिष्ठितः" बहु वार्य्यमानत्व, प्रच्छन्न कामुकत्व, मिथोदुर्ल्लभत्व ही रति के पारतम्य में कारण है, भरत मत के द्वारा समर्थन। "लघुत्वमत्र यत् प्रोक्तम्" श्रीजीव, विश्वनाथ की स्वकीया परकीया में विचार पद्धति। धीरोदात्तादि चतुर्विध नायक

के अनुकूल दक्षिण शठ धृष्ट भेद, ९६ विध नायक भेद।

(२) सहाय भेद प्रकरण—चेट, विट, विदूषक, पीठमर्द, प्रियनर्म भेद से सहायक पञ्चविध। विविध गुणसमूह स्वयं दूती, आप्तदूती, कटाक्ष वंशीध्वनि स्वयं दूती, तथा वीरा वृन्दादि आप्तदूती।

(३) कृष्णवल्लभा प्रकरण में— स्वकीया परकीया भेदसे द्विविधा प्रेयसी। कन्यका परोढ़ा नायिका, परोढ़ा साधनपरा, देवी, नित्य प्रिया भेद से त्रिविधा, साधनपरा— यूथयुक्ता मुनिगण उपनिषद्वृन्द यूथ हीना-प्राचीना नवीना नित्यप्रिया, राधा चन्द्रावली प्रभृति।

(४) राधा प्रकरण—सर्वथाधिका राधा, महाभाव स्वरूपिणी,

सुष्ठुकान्त स्वरूपेयं सर्वदा वार्षभानवी।
धृत षोड़श शृङ्गारा द्वादशाभरणाश्रिता॥

श्रीराधा के पञ्चविंशति गुणसमूह, पञ्चविध सखीवृन्द—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी, परमप्रेष्ठ सखी।

(५) नायिका भेद प्रकरण— मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा भेद से त्रिविध नायिका, मध्या, प्रगल्भा, धीरा, अधीरा, धीराधीरा, भेद नायिका की अष्टावस्था--अभिसारिका, वासक सज्जा, उत्कण्ठिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, कलहान्तरिता, प्रोषित भर्त्तृका, स्वाधीन भर्त्तृका, उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा भेद से त्रिविधा हैं।

(६) यूथेश्वरी भेद प्रकरण में—अधिका, समा, लघु, त्रिविधा, प्रखरा, मध्या, मृद्वी रूपेण त्रैविध्य हैं।

(७) दूती प्रकरण में—दूती दो प्रकार हैं, स्वयं दूती, आप्तदूती स्वयं दूती के द्वारा स्वाभियोग का प्रकाश--वाचिक, आङ्गिक चाक्षुष रूप से होता है। आप्तदूती त्रिविध हैं, अमितार्था, निसृष्टार्था, पत्रहारी, इन सब की विशेष क्रिया का उल्लेख है।

(८) सखी प्रकरण में—प्रखरा, मध्या, मृद्वी भेद से सखी त्रिविध हैं। वामा, दक्षिणा, ये नित्य नायिका, नित्यसखी, समस्नेहा, असमस्नेहा हैं।

(९) श्रीहरिवल्लभा प्रकरण में---व्रजदेवियों के सपक्ष, सुहृत्पक्ष, तटस्थ, विपक्ष का वर्णन है।

(१०) उद्दीपन प्रकरण में---गुण, नाम, चरित्र, मण्डन, तटस्थादि भाव उद्दीपन, वाचिक-कायिक-मानस भेद से गुण त्रिविध, वयःसन्धि, माधुर्य्य, यौवन का भेद। रूप--लावण्य सौन्दर्य्यादि नाम-रासादि चरितावली का उल्लेख है।

(११) अनुभाव प्रकरण में--नायिका के अलङ्कार समूह, भाव, हाव प्रभृति का वर्णन, अवान्तर भेद, उद्भास्वर है।

उद्भासन्ते स्वधाम्नीति प्रोक्ता उद्भास्वरा बुधैः।
नीव्युत्तरीय धम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनं।
जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासादय स्ते मताः॥

(१२) सात्त्विक प्रकरण में---स्तम्भ-स्वेदादयोऽष्ट सात्त्विक का वर्णन है।

(१३) व्यभिचारी प्रकरण में---निर्वेद विषादादि त्रयस्त्रिंशत् सञ्चारिभाव का वर्णन है। भावसन्धि-शाबल्य-शान्ति-प्रभृति की सुविस्तृत आलोचना है।

(१४) स्थायीभाव प्रकरण में---शृङ्गार रस में मधुरारति को स्थायीभाव कहते हैं। रत्याविर्भाव का कारण--

अभियोगाद् विषयतः सम्बन्धादभिमानतः।
सा तदीयविशेषेभ्य उपमातः स्वभावतः।
रतिराविर्भवेदेषामुत्तमत्वं यथोत्तरम्॥

निसर्ग-स्वरूप भेद से स्वभाव दो प्रकार हैं, ललनानिष्ठोभयनिष्ठस्व भेद से स्वरूप भी द्विविध हैं। यह रति--साधारणी, समञ्जसा, समर्था भेद से त्रिविध हैं। प्रेम (प्रौढ़ प्रेम), स्नेह (घृतमधु स्नेह) मान (उदात्त ललित), प्रणय (मैत्र, सुमैत्र, सख्य, सुसख्य), राग (नीलिम रक्तिमा, प्रत्येक द्विविध, नीलीश्याम, कुसुम्भ, मञ्जिष्ठा), अनुराग, भावः-(रूढ़ निमेषासहिष्णुता, आसन्नजनता हृद्विलोडनं,

कल्पक्षणत्व, क्षणकल्पत्व, अधिरूढ़, मोदन मोहन), दिव्योन्माद उद्घूर्णा दशविध।

मादन---सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥(१५५)

(१५) शृङ्गार भेद प्रकरण में---विप्रलम्भ- सम्भोग।

(१६) पूर्वराग प्रकरण में---

रति र्या सङ्गमात् पूर्वं दर्शन श्रवणादिजा।
तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते॥

इसका साक्षात् दर्शन--स्वप्न दर्शन भेद है। वन्दी-दूती, सखी मुख से श्रवण, प्रौढ़ होने से लालसादि दशदशा होती हैं।

(१७) मान प्रकरण में—स हेतुक-निर्हेतुक मान का निर्णय है।

(१८) प्रेमवैचित्त्य प्रकरण में—लक्षण एवं उदाहरण वर्णित है।

(१९) प्रवास प्रकरण में—बुद्धिपूर्व--अबुद्धिपूर्व भेदद्वय, चिन्ता जागर, उद्वेगादि दशाओं का विस्तृत वर्णन है।

(२०) संयोग वियोग स्थिति प्रकरण में—प्रकट लीला में मथुरा गमन, नित्यलीला में वृन्दावन में नित्य स्थिति वर्णित है।

(२१) सम्भोग प्रकरण में—जाग्रदवस्था में मुख्य, स्वप्न में गौण सम्भोग, मुख्य सम्भोग--चतुर्विध, पूर्वराग के पश्चात् संक्षिप्त, मान के अनन्तर सकीर्ण, किञ्चिद्दूरप्रवास से सम्पन्न, सुदूर प्रवास के पश्चात् समृद्धिमान्। इसका सुविस्तृत विश्लेषण है।

(२२) गौण सम्भोग प्रकरण में---स्वप्न में संक्षिप्तादि भेद चतुष्टय सन्दर्शन, जल्प, स्पर्शनादि सम्भोग की वर्णना है। संयोग एवं लीलाविलास के मध्य में लीलाविलास का ही समादर है।

"विदग्धानां मिथो लीलाविलासेन यत् सुखम्।
न तथा संप्रयोगेन स्यादेवं रसिका विदुः॥ (२२)

उपसंहार में—

अतलत्वादपारत्वादागमोऽसौ दुर्विगाहताम्।

स्पृष्टः परं तटस्थेन रसाब्धि-मधुरोमया ॥

इस ग्रन्थ की टीका तीन हैं,—'लोचन रोचनी'- 'श्रीजीव कृता, 'आनन्द चन्द्रिका'- श्रीविश्वनाथ कृता, श्रीविष्णुपद गोस्वामिकृता —'स्वात्म प्रमोदिनी'।

(४) नाटक चन्द्रिका—श्रीविदग्ध माधव ललितमाधवनाटक द्वय के लक्षणोदाहरण लक्ष्य विषयों का समन्वय साधक ग्रन्थ, श्रीरूप गोस्वामि प्रणीत है।

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र तथा शिङ्गभूपाल कृत रसार्णवसुधाकर के आदर्श से रचित 'नाटक चन्द्रिका' नामक नाट्यशास्त्र है। भरत मतविरोधी साहित्य दर्पण का वर्जन इस ग्रन्थ में हुआ है।

वीक्ष्य भरतमुनि शास्त्र रसपूर्व सुधाकरञ्च रमणीयम्।
लक्षणमतिसंक्षेपाद् विलिख्यते नाटकस्येदम् ॥(१)
नातीव संगतत्व द् भरतमुने मंत विरोधाच्च।
साहित्य दर्पणीया न गृहीता प्रक्रियाः प्रायः ॥ (२)

प्रस्तुत ग्रन्थ में नाटक लक्षण, दिव्य दिव्यादिव्यादिव्य भेद से नायक त्रिविध, ख्यात, क्लृप्त मिश्रेति त्रिविध-इतिवृत्त, प्रस्तावना, आशीर्वाद, नमस्क्रियादि वस्तुनिर्देशात्मक नान्दीत्रय, प्ररोचना, आमुख—पञ्चक, सन्धि, वीजादि पञ्च प्रकृति। आरम्भादि पञ्चावस्था, मुखादि संध्यङ्ग पञ्चक, द्वादश वीज भेद, त्रयोदश प्रतिमुख सन्धि भेद, द्वादश गर्भसन्धि भेद, एकविंशति सन्ध्यन्तर, षट्त्रिंशद् भूषण भेद, चार पताका स्थान, विष्कम्भादि अर्थोपक्षेपक, स्वगतादि नाट्योक्ति, अङ्ग स्वरूप, गर्भाङ्क स्वरूप, अङ्क संख्या, नाटक के रसादि, संस्कृत प्राकृत भाषाविधान, भारती प्रभृति वृत्ति भेदा नर्म एवं उसका भेद सलक्षणोदाहरण के सहित वर्णित है।

(५) अलङ्कार कौस्तुभ—कवि कर्णपुर गोस्वामी प्रणीत दश किरणात्मक अलङ्कार ग्रन्थ। प्रथम किरण—"ध्वनिर्नाद ब्रह्म" निर्णय करने के पश्चात् परापश्यन्तीत्यादि योग-शास्त्र मतानुसार

नाद का सर्वोत्कर्ष स्थापित हुआ है। ध्वनि का काव्य प्राणत्व प्रतिपादन के अनन्तर रसापकर्षक दोष रहित यथासम्भव गुणालङ्कार रसात्मक शब्दार्थ युगल को काव्य कहा है।

कवि लक्षण में—'स वीजो हि कवि र्ज्ञेयः, वीजं नाम प्राक्तन संस्कार विशेष काव्यरोहभूः।' काव्यं हि द्विविधम्—

उत्तमं ध्वनि वैशिष्टे मध्यमे तत्र मध्यमम्।
अवरं तत्र निष्पन्द इति त्रिविधमादितः ॥
पुनः ध्वनेर्ध्वन्यन्तरोद्गारे तदेव ह्य समोत्तमम्।
शब्दार्थयोश्च वैचित्र्ये द्वे यातः पूर्वपूर्वताम् ॥

शब्दार्थ वृत्तिद्वय निर्णयात्मक द्वितीय प्रकरण में—स्फोट वाद का निर्णय के अनन्तर साधु असाधु भेद से वर्णात्मक शब्द का द्वैविध्य प्रतिपादन हुआ है। जाति-क्रिया-गुण-द्रव्य के द्वारा उसका चतुर्विधत्व प्रतिपादन हुआ है। मुख्य लाक्षणिक व्यञ्जक भेद से शब्द त्रिविध, पुनः योगरूढ़ रूढ़ यौगिक भेद से त्रिविध हैं। समास शक्ति का बहुविधत्व प्रदर्शन के अनन्तर अभिधादि वृत्ति त्रय का स्थापन किया है

नानार्थानां शब्दानां भेदकाः खलु—

संयोगश्च वियोगश्च विरोधः सहचारिता।
सान्निध्यमन्यशब्दस्य देशसामर्थ्यमौचिती।
लिङ्गमर्थः प्रकरणं कालो व्यक्तिरिमादिशः॥

अर्थानां व्यञ्जकत्वस्य विषयः—

बोद्धव्य वक्तृ प्रकृति काकुप्रकरणैः सह।
देशकालवयश्चार्थे वैशिष्ट्याद् व्यञ्जकाः ॥

ध्वनि निर्णयात्मक तृतीय किरण हैं। रसाख्यध्वनि का ही आत्मत्व स्थापित हुआ है। अभिधामूलक लक्षणामूलक ध्वनि के मध्य में लक्षणामूलक ध्वनि—अविवक्षितवाच्य होता। अर्थान्तरोप संक्रान्त अत्यन्त तिरस्कृत भेद द्विविध है। अभिधामूलक ध्वनि में

विवक्षित वाच्य---लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य अलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य द्विविध हैं। इसके एकपञ्चाशत् भेद सलक्षणोदाहरण प्रतिपादित हैं। प्रकृति प्रत्ययादि जन्यवस्त्वलङ्कारादि व्यङ्ग्य के उदाहरण समूह वर्णित हैं। अनन्तर त्रिविध सङ्कर का निरूपण करके सिद्धान्त किया है--- ध्वने र्व्यापार युगलं ध्वननं मनुध्वननञ्च, यत्र केवलं ध्वननं तदुत्तमं काव्यम्, यत्र तु ध्वननानुध्वनने तदुत्तमोत्तममिति ॥

चतुर्थ किरण में- गुणीभूत व्यङ्ग्य का सोदाहरण वर्णन है--- स्फुटमपराङ्ग वाच्यमपोषकं कष्टगम्यञ्च, सन्दिग्ध प्राधान्यं तुल्य-प्राधान्य काकुगम्ये च असमीक्षञ्चेति गुणीभूत व्यङ्ग्य भेदाः। ध्वनि वैशिष्ट्य में आठ प्रकार भेद वर्णित हैं।

पञ्चम किरण में---रस भाव, तद् भेद निरूपण हैं। रस की अभिव्यक्ति का लक्षण, विभावानुभाव का वर्णन भरत मतानुसरण से हुआ है। रति रस आभासादि का वर्णन हैं, सामाजिक की रसास्वादन पद्धति को सूचित करके चमत्कार का ही रसत्व प्रतिपादन किया है।

रसेसारश्चमत्कारो यं विना न रसोरसः।
तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्रैवाद्भुतोरसः॥

दृश्य एवं श्रव्य में शृङ्गार वीर करुणाद्भुत हास भयानक बीभत्स, रौद्र, शान्त, वात्सल्य भेद से एकादश रस स्वीकृत हैं। इसमें 'प्रेमरस' नामक रस का अङ्गीकार है, वह अङ्गी है, समस्त रसों का अन्तर्भाव उक्त 'प्रेमरस' में होता है। शृङ्गाररस वर्णन के समय सम्भोग विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन किया है, पूर्वराग में दशदशा विरह त्रिविध, मानद्वय का प्रदर्शन हुआ है। मिथो अवलोकनादि मधुपानान्त सम्भोग प्रकरण लिखने के पश्चात् विप्रलम्भ का भेद उल्लिखित हुआ है।

विरहमान, नायक भेद, तद्गुणावलि स्वकीया परकीया नायिका भेद, अष्ट अवस्था भाव अलङ्कार निर्णय के सहित साङ्गोपाङ्ग

आलम्बन विभाव का निरूपण हुआ है। उद्दीपन विभाव में सखी दूती, सात्त्विक व्यभिचारि प्रभृति भावोदय का मनोरम वर्णन है।

गुणविवेचनात्मक षष्ठ किरण हैं, इसमें माधुर्य्यादि गुणत्रय का निरूपण हैं। अर्थ व्यक्ति उदारत्व समातिरिक्त गुण का उल्लेख भी हुआ है।

सप्तम किरण में— शब्दालङ्कार का निरूपण है, वक्रोक्ति श्लेष अनुप्रास, यमक भाषादि श्लेष का उदाहरण एवं विविध चित्र काव्य का वर्णन है।

अर्थालङ्कार निरूपणात्मक अष्टम किरण में--उपमादि समस्त अलङ्कारों का सुविशद वर्णन है। अन्तः में शब्दार्थालङ्कार का दोष प्रदर्शन हुआ है।

रीति निर्णयात्मक नवम किरण में--वैदर्भी प्रभृति रीति चतुष्टय का निरूपण है।

अथ दोष निरूपणात्मके दशम किरण में--पदपदांश वाक्यार्थ रसगतान् स प्रपञ्चान् तान् निर्णीतवान्॥ इस ग्रन्थ में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती कृत सुबोधिनी टीका है।

(६) साहित्य कौमुदी—श्रीमद्बलदेव विद्याभूषण विरचिता कृष्णानन्दिन्याख्या व्याख्या सम्बलित अलङ्कार ग्रन्थ साहित्य कौमुदी है। इसमें अग्निपुराणस्थ साहित्य प्रक्रिया के अनुसार भरतमुनि प्रणीत कारिका की व्याख्या है। ग्रन्थकार ने उक्त कारिका समूह की वृत्ति रचना हेतु एकादशपरिच्छेद के द्वारा उक्त कारिका का सन्निवेश किया है।

प्रथम परिच्छेद में—काव्य प्रयोजनादि, काव्य स्वरूप, उत्तमादि काव्य भेद समूह हैं। द्वितीय में— शब्दार्थ भेद, वाचक प्रभृति का स्वरूप भेद वर्णन है। तृतीय में--अर्थ व्यञ्जकतादि का वर्णन। चतुर्थ में —ध्वनि भेद, रसस्वरूप, रसविशेष, स्थायिभाव, व्यभिचारी भाव, रसाभास, लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रम विभाग का वर्णन है। पञ्चम में--

गुणीभूतव्यङ्ग्य भेद का वर्णन है। षष्ठ में— शब्दार्थ चित्र, सप्तम में--दोष निरूपण, अष्टम में---गुण विचार, नवम में -शब्दालङ्कार, दशम में---अर्थालङ्कार, एकादश में--भरतोक्त परिशिष्ट शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार का वर्णन है।

(७) षट् सन्दर्भ--उपास्य, उपासक, साध्य, साधन एवं प्रमाण गत सार्वभौम ऐक्य प्रतिपादक श्रीभागवत तत्त्व समन्वयात्मक षट् सन्दर्भ ग्रन्थ है। प्रणेता श्रीजीवगोस्वामि चरण हैं। शास्त्र प्रतिपाद्य परमतत्त्व का निरूपण "तत्त्व, भगवत्, परमात्म, कृष्ण" सन्दर्भ चतुष्टय में है। भक्ति सन्दर्भ में--अभिधेय तत्त्व का सुविशद वर्णन एवं प्रीति सन्दर्भ में- पुरुष प्रयोजन का सुष्ठु निर्द्धारण है। भगवत्प्रीति का सर्वश्रेष्ठत्व, प्रीति लक्षण, दृश्यश्रव्य की रस भावना विधि, द्वादश रसविचार सुविन्यस्त हैं।

(८) भक्तिरसामृतसिन्धु बिन्दु---

(९) उज्ज्वलनीलमणि किरण---श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्तीपाद विरचित ग्रन्थद्वय में मूलोक्त विषयों का संक्षेप एवं भक्तिरस का निरूपण प्राञ्जल रूप से है।

(१०) काव्य कौस्तुभ--श्रीबलदेव विद्याभूषणपाद कृत नवप्रभात्मक ग्रन्थ में साहित्य कौमुदी के समान साहित्यालङ्कारगत विषय समूह का विवेचन स्वाधीन भाव से है। इसमें विषादनादि नवीन अलङ्कारों का निरूपण है। उदाहरण समूह का उल्लेख प्रायशः पूर्वाचार्य्योक्ति से ही हुआ है।

हरिदास शास्त्री

❀ विषयसङ्कलनम् ❀

—※—

❀ वर्णानुक्रमेण विषय सङ्कलनम् ❀

—※—

—*—

❀ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❀

—*—

काव्यकौस्तुभः

प्रथमा प्रभा ।

कलाभि र्निभृतः श्रीमान् राधया समलंकृतः ।
दीव्यत्कुवलयः सोऽयं विधु र्विजयतेतराम् ॥१॥

प्रारिप्सितस्यास्य शास्त्रस्य काव्यांगत्वात् काव्यफलमेव फलमिति तावदाह ॥

कीर्त्तिः सार्वज्ञ्यमानन्दो धनादीनि च काव्यतः ॥२॥

सार्वज्ञ्यं देवमानवादि-प्राणिचेष्टावगतिरूपः ॥ आनन्दो रसानुभव-समुद्भूतः, धनं नृपति-प्रसादलब्धा हस्त्यश्वादिसंपत्,

---

विकसित कुवलय के समान कान्तियुक्त श्रीमान् विधु श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विराजित हैं, श्रीराधा के सहित आनन्दित एवं शृङ्गारोचित कलाविलास पूर्ण हैं ॥१॥

प्रारिप्सित काव्य शास्त्र,--काव्य का अङ्ग होने के कारण काव्य फल से ही उक्त शास्त्र पूर्ण है, अतएव कहते हैं,—काव्य से ही कीर्त्ति, सार्वज्ञ्य, आनन्द धनादि की प्राप्ति भी होती है ॥२॥

सार्वज्ञ्य —देव मानवादि प्राणियों की चेष्टा का परिज्ञान है, आनन्द—रसानुभव से उत्पन्न होता है, धन--नृपति की प्रसन्नता से

आदिना धर्मकाममोक्षाः। तत्र धर्मो भगवद्वन्दनादिः। कामो धन-द्वारकः। मोक्षो ज्ञानकाण्डे व्युत्पत्तिविधानादित्येतत् सर्वं काव्यादेव भवेदत स्तत्र पुंभिः सयत्नै र्भाव्यम्। तस्य हेतुमाह।

हेतुस्तस्य भवेच्छक्तिः शिक्षानिपुणता तथा ॥३॥

शक्तिः पूर्वसंस्कारः, शिक्षा काव्यविदुपदेशः, निपुणता तु व्याकरणाभिधानकोषच्छन्दः प्राचीनकाव्यादिनिभालनाद् व्युत्पत्तिः तस्य काव्यस्योद्भवे कारणं। तस्य लक्षणमाह।

कविना निर्मितं वाक्यं काव्यं ॥४॥

चमत्कारकर-गद्यपद्यात्मना रचितं कवेर्वाक्यं काव्यं। उदाहरणं—

प्राप्त हस्ती अश्व सम्पत्ति,आदि शब्दसे धर्म काम मोक्ष को भी जानना होगा। उन में से धर्म-भगवद् वन्दनादि रूप हैं, काम--धन के द्वारा ही विषयेच्छा पूर्त्ति होती है, मोक्ष-ज्ञान काण्डात्मक शास्त्र में शब्दार्थ बोध होने से होता है। यह सब काव्य से ही होता है, अतः मानवगण यत्न पूर्वक इस का अनुशीलन करें।

उस में हेतु का निर्णय करते हैं—काव्य के प्रति शक्ति, शिक्षा एवं निपुणता कारण है ॥३॥

शक्ति--पूर्वसंस्कार, शिक्षा,—काव्यज्ञ व्यक्ति का उपदेश, निपुणता—व्याकरण, अभिधान, कोष, छन्दः, प्राचीन काव्यादि अनुशीलन से व्युत्पत्ति, ये सामग्री काव्य विरचन में हेतु होती है, उसका लक्षण कहते हैं।

कवि के द्वारा निर्मित वाक्य ही काव्य है ॥४॥

चमत्कारकर गद्य पद्यात्मक,--कवि रचित वाक्य को काव्य कहते हैं। उदाहरण—

कोकिलकलकुलकंपां तनुजितशंपां प्रियां पश्यन्,
वपुरवनमितपयोदः समुदित-मोदः स माधवो जयति ॥

गद्यपद्ययोश्चमत्कारकरत्वं चातुर्य्यादेव भवति। चातुर्य्यं तु युक्तिविशेषेणार्थ-नियोजनं। तथा हि वर्णयन्ति-शत्रो र्गदितवीर्य्यादि र्निर्जयान्नायकस्तुतिः। चातुर्य्यमिति पश्चात्तनं संबध्यते।

उदा०—उग्रप्राप्तधनुर्विद्यं सर्वज्ञं क्षात्रकंटकं।
गर्विष्टं खर्वयामास भार्गवं राघवाग्रणी ॥

दृष्टान्तेनाल्पवर्णेन महतोऽर्थस्य कीर्त्तनं ॥

उदा०—नृगवत् स गतिं याति यो ब्रह्मस्वापहारकः।
अत्र नृगवदित्यनेन नृगाख्यायिका-व्यक्तिः।

वह माधव श्रीकृष्ण एवं वसन्त-उत्कर्ष मण्डित है। दोनों ही हर्ष उल्लास से परिपूर्ण हैं।

कारण केकिल के कल कूजन से कम्पित विद्युत् तिरस्कृत कान्ति युक्त प्रिया को उन्होंने देखा, और पयोद मेघ भी अवनमित हो चुके थे।

गद्य पद्य का चमत्कारकरत्व होना कवि की निपुणता से ही सम्भव है, चातुर्य्य वह है--वर्णितव्य विषय को जिस में युक्ति विशेष के द्वारा नियोजन किया जाता है। उदाहरणहेतु वर्णन करते हैं-- शत्रु में वर्णित प्रभाव समूह का पराभव हेतु प्रकृत नायक की स्तुति होती है, सर्वत्र ही वर्णन में चातुर्य्य का योग होना आवश्यक है,

उदाहरण—राघवाग्रणी रामचन्द्र,--धनुर्विद्या में निष्णात हेतु गर्वित, सर्वज्ञ, क्षत्रिय कण्टक शोधन हेतु गर्विष्ट भार्गव का गर्व खर्व किये थे।

दृष्टान्त द्वारा स्वल्प वर्ण से महदर्थ का वर्णन भी चातुर्य्य होता है, यथा—जो जन ब्राह्मण की सम्पत्ति का अपहरण करता है, वह

पद्येन लघुना वा स्याद्गम्भीरार्थ-प्रकाशनं ॥५॥

यथा–निजभक्त-सुखार्थं यः कालमप्यतिवर्त्तते ।
पुरुषाय नम स्तस्मै कस्मैचित्पुरुतेजसे ॥

रावणेन निपीड़ितः सुरैरभ्यर्थितो भगवान् द्वापरे एव तद्विनाशकालं त्रेतां प्रकल्प्य तं निजघान, अदित्या तोषितश्च तत्सुखाय बलिवृद्धिकालमन्यथयन् बलिं दूषयामासेति पद्यादस्मात्प्रकाशते ॥

अपारानन्दविज्ञप्ति र्या स्यान्न्यून-पदादिभिः ॥६॥

यथा–सस्मिता मृगशावाक्षी गाढ़मालिंगिता मया ।

नृग राजा के समान दुर्गत होता है, इस को व्यक्त करने के लिए नृग प्रकरण है ।

अथवा लघु पद्य के द्वारा गम्भीरार्थ का प्रकाशन होना चातुर्य्य है, यथा—जो निज भक्त के सुखार्थ अवहित होकर रहते हैं, उन अमित प्रभाव सम्पन्न पुरुष को नमस्कार । रावण के द्वारा निपीड़ित देवगण के द्वारा प्रार्थित भगवान् यद्यपि द्वापर में उसका विनाश काल निर्दिष्ट था, तथापि त्रेता में उस समय को मानकर उसको मारे थे, अदिति से सन्तुष्ट होकर उनको सुखी करने के लिए बलि वृद्धि काल को अन्यथा करके बलिको कदर्थित किया, उक्त पद्य से यह अर्थ प्रकाशित हुआ ॥५॥

जिससे अपार आनन्द की विज्ञप्ति हो, और न्यूनपदता उसका व्यञ्जक हो वह भी काव्य है । यथा—मैंने सस्मित मृगशावाक्षी को गाढ़ आलिङ्गन किया, किन्तु उसने 'मा मा मा' इस प्रकार जो कही, वह उक्ति मेरे मनको कतर रही है । यहाँ मा इसके अनन्तर 'पीड़य' पद न्यूनता उनकी आनन्द मग्नता का सूचक है ॥६॥

मा मा मेति यदब्रूत तन्मे कृन्तति मानसम् ॥

अत्र मेत्यनन्तरं पीडयेति पदमूनं सत्तस्याः सुखसिन्धुमग्नतां बोधयति ।

हेतोरतिप्रसिद्धस्य न कुर्य्यादादरं क्वचित् ॥७॥

यथा–न युद्धेन भ्रुवोः स्पंदेनैव वीरा निवारिताः ।

विख्यात--सहितोक्तिश्चेत्तत्सादृश्याय कल्पते ॥८॥

यथा--युवामेव हि विख्यातौ त्वं बले जलधिर्जलैः ॥

अत्राम्बुधिसाहित्येनोक्ति र्नृपतेस्तत्तुल्यतायै स्यात् ।

ख्यातदोष-निरासश्च वीक्ष्यते गुणवर्णनात् ॥९॥

यथा—मुधा निन्दति संसारं कंसारि र्यत्र पूज्यते ।

चातुर्य्यं कवितायां स्यादेवमाद्यर्थयोजनं ॥ स्फुटं, इदं काव्य-

---

कहीं पर अप्रतिषिद्ध हेतु का समादर नहीं होता है । यथा—युद्ध से नहीं, किन्तु भ्रू सञ्चालन से ही वीरगण पराजित हो गये ॥७॥

उन उनकी सहायता हेतु विख्यात सहितोक्ति की कल्पना यदि हो तो भी काव्य होता है । यथा—आपदोनों जलधि के जलके समान विख्यात पराक्रमी हैं । यहाँ अम्बुधि साहित्य उक्ति के द्वारा नृपति को जलधि के समान दुर्द्धर्ष सूचित करना है ॥८॥

गुण के वर्णन से प्रसिद्ध दोष का निरास करना भी देखने में आता है । यथा । जहाँ कंसारि पूजित हो रहे हैं, वहाँ संसार की निन्दा व्यर्थ ही की जा रही है ॥९॥

कविता में चातुर्य्य होना ही चाहिये, इस प्रकार कहना कर्त्तव्य है । परिस्फुट है, यह काव्य लक्षण, कवि के वाक्य मात्र में विनियोग होगा, इस से अलक्ष्य गमन रूप अतिव्याप्ति दोष होगा, अतः निमित पदोपादान हुआ । साहित्यदर्पण कारोक्त काव्य लक्षणमें दोष प्रदर्शन

लक्षणं कविवचन-मात्रेनातिव्याप्तं निर्मितमित्युक्तेः। वाक्यं रसात्मकं काव्यमिति तु रामः सहसा तया क्रीड़तीत्यत्राति-व्याप्तम्। रसात्मकवाक्यत्वात्। अदोषौ सगुणौ सालंकारौ शब्दार्थौ काव्यमिति तु कुरङ्गनयनेत्यत्रातिव्याप्तं। तादृश-शब्दार्थरूपत्वात्। अथास्य शरीरादि-स्वरूपमाह॥ शब्दार्थ-विग्रहं काव्यमिति संबध्यते। शब्दार्थशरीरं काव्यमिति।

तस्यात्मा तु रसो व्यंग्य स्तदन्यः प्राण उच्यते॥१०॥

रसभावादि व्यंग्यः काव्यस्यात्मा। वस्त्वादिस्तु प्राणः।

रसभाव-तदाभास-भावशान्त्यादिको गणः॥११॥

सर्वोऽपि रस्यमानत्वाद्रस-शब्देन कीर्त्तितः॥ स्फुटं

उत्कर्षकारणानि स्यु र्गुणालंकार-रीतयः॥

ओजःप्रभृतयो गुणाः शौर्य्यादिवत् काव्यस्योत्कर्षकाः।

अनुप्रासोपमादयोऽलंकाराः कुण्डल-कङ्कणादिवत्॥१२॥

करते हैं, 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'' यह लक्षण की रामः सहसा तया क्रीड़ति''—अतिव्याप्ति होगी। यह भी रसात्मक वाक्य है। काव्य प्रकाशकार के काव्य लक्षण में दोष प्रदर्शन करते हैं। ''अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ शब्दार्थौ काव्यम्'' इस लक्षण 'कुरङ्ग नयना' शब्दमें है। उस प्रकार शब्दार्थ रूप काव्य है॥१०॥

अनन्तर काव्य के शरीरादि का स्वरूप कहते हैं,--शब्दार्थ विग्रहं काव्यं, शब्दार्थ शरीर ही काव्य है। काव्य की आत्मा रस है, वह व्यञ्जना वृत्तिलभ्य है। तदन्य को प्राण कहते हैं। रस भावादिव्यङ्ग्य काव्य की आत्मा है। वस्तु आदि प्राण हैं॥११॥

रस, भाव, तदाभास, भावशान्त्यादि समस्त रस्यमान होने के कारण रस शब्द से उल्लिखित होते हैं॥१२॥

वैदर्भीप्रमुखा रीतयस्त्वङ्ग-संस्थान-विशेषवत्।

दोषाः श्रुतिकटुत्वाद्या भवेयुरपकर्षकाः।

काणत्वादिवत् श्रुतिकटुत्वादयः काव्यमपकर्षयन्ततस्स्य दोषाः स्युः। गुणादिषु ये यद्धर्मा यथा यदुत्कर्षयान्त्यपकर्षयान्ति च तत्तूर्ध्वं वक्ष्यामः॥

इति काव्यकौस्तुभे काव्यफलादि-निर्णयः

प्रथमा प्रभा॥

द्वितीया प्रभा

अथ काव्यविग्रहभूतयोः शब्दार्थयोः क्रमात् स्वरूपमाह॥

मुख्यो लाक्षणिकः शब्दो व्यंजकश्चेति स त्रिधा।१।

उत्कर्ष कारक,--गुण अलङ्कार रीति निकर हैं। औजः प्रभृति गुण निचय भी शौर्य्यादि के समान काव्य का उत्कर्ष बोधक होते हैं। अनुप्रास उपमादि अलङ्कार समूह कुण्डल कङ्कणादि के समान शोभाधायक हैं, श्रुति कटुत्वादि दोष समूह रसापकर्षक होते हैं। काणत्वादि के समान श्रुति कटुत्वादि काव्य का अपकर्ष कारक होते हैं, अतः उसे दोष कहते हैं। गुणादि में जो जिसका धर्म होता है, तथा जिसे उत्कर्ष मण्डित करता है, एवं जिसको अपकर्ष लिप्त करता है, उसका विवरण अग्रिम ग्रन्थ में कहेंगे।

इति काव्य कौस्तुभे काव्य फलादि निर्णयः

प्रथम प्रभा॥१॥

द्वितीय प्रभा

अनन्तर काव्य विग्रह स्वरूप शब्दार्थों का क्रमशः स्वरूप को

मुख्यो वाचकः ।

अर्थास्त्वेषां क्रमाद्वाच्य-लक्ष्य-व्यंग्याः प्रकीर्तिताः ।२।

वाच्यादीनां स्वरूपमाह ।

वाच्यार्थोऽभिधया वेद्यो लक्ष्यो लक्षणया भवेत् ।३।

व्यंग्यो व्यंजनया तस्मात्तिस्रः शब्दस्य वृत्तयः ॥

एक एव शब्द स्तिसृभि र्वृत्तिभि स्त्रिविधः संस्त्रिविधानर्थान् बोधयति । यथा गङ्गाशब्दोऽभिधया प्रवाहं, लक्षणया तीरं, व्यंजनया तु शैत्यादीति । शक्तिरेवाभिधा वृत्ति र्व्यापारः

कहते हैं । मुख्य, लाक्षणिक, व्यञ्जक रूप से शब्द त्रिविध हैं । शब्द को वाचक कहते हैं ॥१॥

क्रमशः उन शब्दों के वाच्य लक्ष्य व्यङ्ग्य अर्थ होते हैं ॥२॥

वाच्यादिओं के स्वरूप को कहते हैं ।

अभिधा वृत्ति से वाच्यार्थ का बोध है, लक्षणा के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होता है, व्यञ्जनावृत्ति से व्यङ्गार्थ का बोध होता है, अतः शब्दों की वृत्ति त्रिविध हैं ।

एक ही शब्द,—तीन वृत्तियों से तीन प्रकार अर्थों का बोध कराता है । यथा,--गङ्गा शब्द,--अभिधा से गङ्गा प्रवाह का, लक्षणा के द्वारा तीर का, व्यञ्जना द्वारा शीतलता प्रभृति का बोधक होता है । शक्ति को ही अभिधा, वृत्ति, व्यापार, क्रिया शब्द से कहते हैं, ईश्वर सङ्केत को शक्ति कहते हैं ॥३॥

अनन्तर अभिधा से वाचक का लक्षण करते हैं ।

जिस स्वाभाविक वृत्ति से शब्दार्थ का बोध होता है,उसे अभिधा कहते हैं, उस अभिधावृत्ति के योग से वह शब्द अभिधा वाचक कहलाता है ।

शब्द का उच्चारण मात्र से ही सहज रूप से जिस अर्थ का बोध

क्रिया चेति पर्यायशब्दाः ।

अथाभिधाया वाचकस्य च लक्षणमाह ।

यया स्वाभाविको वृत्त्या शब्दस्यार्थोऽवगम्यते

साभिधा योगत स्तस्या वाचकोऽसौ प्रकीर्त्तितः ॥४॥

उच्चारितमात्राच्छब्दाद्यः साहजिकोऽर्थः प्रतीतः, तत्र शब्दस्य या वृत्तिः साभिधा । तदाश्रयः शब्दो वाचकः, यथा गङ्गेयमित्युक्ते गङ्गाशब्दात् साहजिकतयाऽवगते प्रवाहविशेषे तस्य वृत्तिरभिधा, तया युक्तोऽसौ तस्य वाचकः ।

अभिधा बोधयेदर्थं सङ्केत-सहचारिणी ।५।

होता है, उस सङ्केत को अभिधा कहते हैं । उसका आश्रय शब्द होता है, यथा—यह गङ्गा है, इस कथन से स्वाभाविक रूपसे प्रवाह का जब बोध होता है, वह अभिधा है, उस शक्ति युक्त शब्द होता है ॥४॥

संकेत साहचर्य्य से अभिधा अर्थ बोधक होती है । इस शब्द से इस प्रकार अर्थ को जानना, इस प्रकार ईश्वरेच्छा संकेत को शक्ति कहते हैं । जात्यादि चतुर्विध अर्थ का बोध संकेत से होता है । कुछ व्यक्ति चतुर्विध वाचक को जाति में ही मानते हैं ।

जाति, गुण, क्रिया--संज्ञा रूप चतुर्विध अर्थ में ब्राह्मण, श्याम, पाचक, डित्थ प्रभृति चतुर्विध शब्द क्रमशः संकेत युक्त होते हैं । जात्यादि को संकेतित कहते हैं, उसमें जाति— ब्राह्मणत्वादि पिण्ड में ब्राह्मणादि व्यवहार निर्वाहिका है, गुणः – सजातीय से पृथक् कारक बुद्धि हेतु है, यथा श्यामादि, श्यामादि गुण सजातीय जन्तुओं से व्यक्ति को पृथक् कर बोध कराता है, क्रिया–आरम्भ समाप्ति युक्ता चेष्टा हैं । यथा पाकादि कार्य । संज्ञा--तो वक्ता की इच्छा से कल्पित व्यवहार निर्वाहक शब्द रूप होती है, वह शब्द स्वयं वाच्य वाचक

अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छा-संकेतः ।

सङ्केतो गृह्यते यस्माज्जात्यादिषु चतुर्ष्वतः ।

चतुर्धा वाचकः केचिज्जाताविवेति मन्वते ।

जाति-गुण-क्रिया-संज्ञा-रूपेषु चतुर्ष्वर्थेषु ब्राह्मणः श्यामः पाचको डित्थ इत्यादय श्चतुर्विधाः शब्दाः क्रमात्संकेतवन्तः । जात्यादयश्च संकेनिताः कथ्यन्ते । तत्र जाति ब्राह्मणपिण्डादिषु ब्राह्मणत्वाद्या व्यवहारनिर्वाहिका । गुणः सजातीय-व्यावृत्ति-धीहेतुः श्यामादिः । श्यामादयो हि जन्तून् सजातीयेभ्यो गौरादिजन्तुभ्यो व्यावर्त्तयन्ति । क्रिया पूर्वापरीभूतांगा पाकाद्या । संज्ञा तु वक्तृस्वेच्छा–कल्पित-शब्दरूपा स्वयं वाच्यवाचक-भाव-भाक् । एषु व्यक्तिधर्मेष्वेव तेषां शब्दानां संकेतः । तैर्व्यक्तोनामाक्षेपादर्थक्रियाकारिता सिद्धा । व्यक्तिषु तु संकेतो नानन्त्याद्व्यभिचाराच्च । अनन्ता हि व्यक्तय स्तासु संकेतो ग्रहीतुमशक्यः । असंकेतित-ब्राह्मण-

---

भाव युक्त होता है । इनमें व्यक्ति धर्ममें ही उन सब शब्दों का सङ्केत है, उससे व्यक्ति का बोध आक्षेप से होता है । और क्रियाकारिता होती है, व्यक्ति में सङ्केत मानने पर व्यक्ति अनन्त हैं, और व्यभिचारि भी होगा, व्यक्ति—अनन्त होने से उसमें संकेत प्रयोज्य नहीं होगा, असंकेतित ब्राह्मण व्यक्ति के समान शूद्रादि व्यक्ति का भी बोध ब्राह्मण शब्दसे होने लगेगा । कारण--असङ्केत युक्त समान रूप से दोनों होते हैं । इस प्रकार व्यभिचार दोष के कारण-व्यक्ति में शक्ति स्वीकार करना उचित नहीं है । यदि कहो कि गवादि गत श्यामादि गुण, गुड़ादि गत पाकक्रिया, बालादि गत---डित्थादि शब्दों का तो प्रत्यक्ष से ही भेद हो जाता है, अतः व्यक्ति संकेत पक्षके दोष

व्यक्तेरिव शूद्रादि-व्यक्तेरपि ब्राह्मणशब्दात् प्रतीतिः स्याद-गृहीत-संकेततया स्तौल्यादिति व्यभिचाराच्च तास्वसौ न ग्राह्यः, नच गवादि-गतानां श्यामादि-गुणानां गुडादिगतानां पाकादि-क्रियाणां बालादि-गतानां डित्थादिसंज्ञानां च प्रत्यक्षतो भेदसिद्धौ व्यक्तिसंकेतपक्षोक्तो दोषः सम इति वाच्यम् । गुणादीनामप्यैकयात् । तेषां भेदस्फूर्त्तिस्त्वाश्रय-भेदादेव, न तु स्वतः । दर्पणादिभेदान्मुखभेदवत् । प्रत्यभिज्ञया धर्मिभेदग्रहस्य बाधादाश्रयभेद-हेतुकाद्भेदधीरिति । अथवा जातिवाच्येव सर्वोऽपि शब्दः । तथाहि—मुदिरमरकत-कोकिलादिष्वयं श्यामोऽयं श्याम इत्यादिप्रत्ययाविशेषा-च्छ्यामत्वादि गुड़तण्डुलपाकादिष्वयं पाकोऽयं पाक इति पाकादित्वं । बालतरुणकीरोच्चारितेषु डित्थादिशब्देष्वयं डित्थोऽयं डित्थ इति डित्थादित्वमिति सर्वजातेरेवानुभवात् ।

वाचको यौगिको रुढ़ो योगरुढ़श्च कीर्त्तितः ॥६॥

समूह इस में भी समस्त रूप से होंगे । ऐसा कहना ठीक नहीं है । गुणादिकों की एकता है । उस में जो भेद की स्फूर्त्ति होती है, वह आश्रय भेद से है, स्वतः नहीं है, दर्पणादि के भेद से जिस प्रकार मुख का भेद होता है । प्रत्यभिज्ञा द्वारा धर्मिभेद ग्रह का बाध होने से आश्रय भेद से ही भेद बुद्धि होती है । अथवा समस्त शब्द जाति वाचक ही है, उदाहरण में—मेघ, मरकत, कोकिलादि में प्रयुक्त "यह श्याम है," इस प्रकार शब्द प्रयोग से अर्थ बोध होता है । गुड़ तण्डुल पाकादि में भी पाकशब्द प्रयोग से पाकादि का बोध होता है, बाल तरुण के उच्चारित डित्थादि शब्द से भी "यह डित्थ है" इस प्रकार बोध होता है, इस में जाति का बोध ही होता है ॥५॥

बाचक शब्द—यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ होते हैं, उस में प्रथम--

तत्राद्यः पाचकादिरवयवशक्त्या वाच्यं बोधयति, मध्यमो मण्डपादिः समुदायशक्त्या । अन्त्यस्तु पङ्कजादिरुभय-शक्त्येति ॥६॥

अथ लक्षणाया लाक्षणिकस्य च लक्षणमाह ॥

शक्यार्थबाधे तद्युक्तो ययार्थोऽन्यः प्रतीयते ॥७॥

सा लक्षणा तया योगाच्छब्दो लाक्षणिकः स्मृतः ।
जहत्स्वार्थाऽजहत्स्वार्था तथा स्यादुभयात्मिका ॥
द्विधा रुढ़ि फलाभ्यां सा ।

कलिङ्गः साहसीत्यादौ कलिङ्गादिशब्दो देशविशेषादि-रूपे स्वार्थेऽसंभवन् रूढ़िमाश्रित्य यया स्वसंयोगसम्बन्धवन्तं

पाचकादि अवयव शक्ति के द्वारा वाच्य का ज्ञान कराते हैं, मध्यम-समुदाय शक्ति से मण्डपादि का बोध होता है । अन्त्य योग रूढ़ से पङ्कजादि में उभय शक्ति का बोध होता है ॥६॥

अनन्तर लक्षणा एवं लाक्षणिक का लक्षण करते हैं । शक्यार्थ की बाधा होने पर जिस शक्ति द्वारा अन्यार्थ की प्रतीति होती है, वह लक्षणा है, उस के योग से शब्द लाक्षणिक होता है ॥७॥

वह जहत् स्वार्थ अजहत् स्वार्थ भेद से द्विविध है, रूढ़ि फल भेद से उसका दो भेद हैं ।

'कलिङ्गः साहसी' यहाँ कलिङ्गादि शब्द देश विशेषादि रूप स्वार्थ में असम्भव होने से रूढ़ि को आश्रय कर जिस वृत्तिसे कलिङ्ग देश से योग सम्बन्ध युक्त पुरुषादि रूप अन्यार्थ का बोध होता है, वह रूढ़ि लक्षणा है । गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' यहाँ गङ्गादि शब्द जल मयादि रूप स्वार्थ में असम्भव होने से प्रयोजन के उद्देश्य से जिस वृत्ति से निज सामीप्यादि सम्बन्ध तटादि रूप अन्यार्थ का बोध होता है । वह फल स्वरूपा लक्षणा है । 'गङ्गातट में घोषः' प्रति पादन होने

पुरुषादिमन्यार्थं बोधयति, सा रूढ़िलक्षणा । गङ्गायां घोषः प्रतिवसतीत्यादौ गङ्गादिशब्दो जलमयादिरूपे स्वार्थेऽसंभवन् प्रयोजनमुद्दिश्य यया स्वसामीप्यादि-संबन्धवन्तं तटादि मन्यार्थं बोधयति, सा फललक्षणा, गङ्गातटे घोष इति प्रतिपादना-लभ्यस्य शैत्याद्यतिशयस्य बोधनमिहफलं जहत्-स्वार्थेयं । देशादेः प्रवाहादेश्च स्वार्थस्य त्यागात् जहत् स्वार्थेयमिति द्वितीयान्यपदार्थो बहुव्रीहिः । कुन्ता गच्छन्तीत्यजहत्स्वार्था । स्वार्थानां कुन्तानां गतावत्यागात् । एवं छत्रिणः प्रयान्तीति छत्रिपदस्यैकसार्थवाहित्वे लक्षणा । तत्त्वेन छत्रिण-स्तदन्येषां चावबोधनात् । काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काकपदस्य दध्युपघातकेषु लक्षणा । तेन तेषां बोधनात् । सोऽयं देवदत्त इत्यादौ जहदजहत्स्वार्था तत्-कालैतत्कालयोस्त्यागात् पिण्डमात्रस्यात्यागाच्च । एवं रथो गच्छतीत्यत्र चेति ॥८॥ गौणी स्याद् गुणयोगतः ।

से शैत्यादि रूप अतिशय अर्थ का बोध नहीं होता, उस अर्थ लाभ हेतु यह जहत् स्वार्थ है । देशादि प्रवाहादि का स्वार्थ त्याग से यह जहत् स्वार्थ है, द्वितीय अन्य पदार्थ का बोध बहुव्रीहि समास से होता है । "कुन्ता गच्छन्ति" यह अजहत् स्वार्थ है । स्वार्थ कुन्त का गमनार्थ में त्याग नहीं हुआ है । एवं "छत्रिणः प्रयान्तीत्यत्र" छत्री पदका एक स्वार्थ वाहित्व में लक्षणा है । उस से छत्री एवं छत्र हीन व्यक्ति का भी सह गमन में बोध होता है । काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" यहाँ काकपद से यावतीय दधि विरोधी का बोध होता है । यह भी लक्षणा से ही सम्भव है । सोऽयं देवदत्तः" यहाँ जहत् अजहत् स्वार्थ लक्षणा के द्वारा तत् काल एतत् काल को छोड़कर पिण्ड मात्र का बोध होता है । एवं रथो गच्छति" स्थल में जानना होगा, ॥८॥

लक्ष्यमाणगुणै र्योगाद्गौणी लक्षणोच्यते ॥९॥

यथा सिंहो देवदत्त इति, गौ र्वाहीक इति च । अत्र सिंहादि-शब्दो मुख्यया वृत्त्या देवदत्तादिशब्देन सहान्वयमप्राप्नुवन् शौर्य्यजाड्यादि-समान-गुणसम्बन्धेन देवदत्तादिमन्यार्थं यया लक्षयति, सा गौणी वृत्तिः । भेदेसत्यपिताद्रूप्यावगतिः फलं ।

कार्य्यकारणभावादि-सम्बन्धाद्बहुधा च सा ॥१०॥

सा लक्षणा । यथा मुक्तिः सत्सेवा, आयुर्घृतमित्यादि । अत्रान्य-वैलक्षण्येन कार्य्यकारित्वं फलं ।

यथा च—हरिभक्तो हरिर्नृपभक्तो नृप इत्यत्र स्वस्वामि-भावात् । अत्रालंध्यवचस्त्वं फलं ॥ क्वचिदन्वयानुपपत्तिः क्वचित्तात्पर्य्यानुपपत्तिश्च लक्षणावीजं बोध्यं । गङ्गायां

गुण के योग से गौणी होगी । लक्ष्यमाण गुणके योग से गौणी लक्षणा होती है । यथा—सिंहो देवदत्तः "गौ र्वाहीकः" स्थल में सिंहादि शब्द--मुख्या वृत्ति से देवदत्त शब्द के साथ अन्वय न होने से शौर्य्य जाड्यादि समान गुण सम्बन्ध से देवदत्तादि अन्यार्थ का बोध जिस वृत्ति से होता है, उसे गौणी वृत्ति कहते हैं, भेद होने पर भी उस प्रकार अर्थ की प्रतीति होती है ॥९॥

कार्य कारण भावादि के सम्बन्ध से वह लक्षणा अनेक प्रकार होती है । वह लक्षणा । यथा—"मुक्ति सत्सेवा,"आयु र्घृतम्" यहाँ अन्य वैलक्षण्य से कार्य कारित्व फल है, अर्थात् सत् सेवा–मुक्ति का जनक है, यु यु का जनक घृत है । हरिभक्तो हरिः, नृपभक्तोनृपः" यहाँ स्वस्वामिभाव है । यहाँ आज्ञाधीनत्व ही फल है, कहीं पर अन्वयानुपपत्ति, कहीं तात्पर्य्यानुपपत्ति, लक्षणा का वीज है, गङ्गायां घोषः स्थल में प्रवाह के सहित घोष पदार्थ का अन्वय असम्भव होने

घोषः इत्यत्र प्रवाहे घोषान्वयानुपपत्त्या तीरे लक्षणा । कुन्ताः प्रविश्यतामित्यत्र प्रवेशान्वये संभवत्यपि भोजने तात्पर्यानुपपत्त्या कुन्तधरेषुलक्षणेति ॥१०॥

अगूढ़गूढ़रूपत्वाद्वां व्यङ्ग्येयं पुन द्विधा ॥११॥

इयं फललक्षणाऽगूढ़व्यंग्या गूढ़व्यंग्या चेति द्विधा ।

यथा – उत्कीर्णानि विचित्राणि नवोद्भिन्नानि सुभ्रुवः ।
पिबन्ति दृग्भिरंगानि नन्दसूनो रहर्निशं ॥

अत्रोत्कीर्णादिपदै स्तत्तत्सादृश्यानि लक्ष्याणि निर्माण-सौष्टवादीनि तु व्यंग्यानि । तानि च गूढ़ान्येव सद्धृदयमात्र-वेद्यत्वात् । दृग्भिः पानस्या-संभवात् सादरावलोकी लक्ष्यः । गाढ़ासक्तिस्तु व्यंग्या । सा चागूढ़ा वाच्यवत् सर्ववेद्यत्वात् । इत्थं निरूपितया लक्षणया योगाल्लाक्षणिकः शब्दः ।

अथ व्यंजनाव्यंजकयो र्लक्षणमाह ।

से तीर में गङ्गा पद की लक्षणा हुई । कुन्ताः प्रविश्यताम्" यहाँ प्रवेश के साथ अन्वय सम्भव होने पर भी भोजन वेला में असम्भव होगा, अतः कुन्त पद का कुन्त घर में लक्षणा है ॥१०॥

अगूढ़गूढ़रूप होने से व्यङ्ग दो प्रकार हैं । यह फल लक्षणा अगूढ़ व्यङ्ग्या गूढ़ व्यङ्ग्या रूप से दो प्रकार हैं । यथा, —व्रजाङ्गना-गणों के अङ्ग समूह का पान नेत्र के द्वारा नन्दनन्दन अहर्निश करते रहते हैं, अङ्ग समूह नवोद्भिन्न विचित्र उत्कीर्ण हैं । यहाँ उत्कीर्णादि पद के द्वारा उन उन सादृश्य युक्त निर्म्माण सौष्ठव समूह व्यङ्ग्य हैं, वे सब गूढ़ हैं, सद् हृदयमात्र वेद्य हैं । नेत्रों से पान करना असम्भव होने से सादर अवलोकन ही लक्ष्य है । व्यङ्ग्य--गाढ़ आसक्ति है । वह तो अगूढ़ है, वाच्य के समान, सब ही व्यक्ति जान

विरतावभिधादीनां परोऽर्थो बोध्यते यया ।।१२।।
व्यञ्जना सा तया योगाच्छब्दादि र्व्यञ्जको मतः ।।

शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावादभिधादिषु स्वं स्वमर्थं निवेद्य विरतासु यया परोऽर्थो बोध्यते, सा शब्दार्थयो र्वृत्ति र्व्यंजना । तया योगाच्छब्दोऽर्थश्च व्यञ्जकः । शब्दार्थौ चेति सा द्वेधा तयोराद्या पुन र्द्विधा ।

एका स्यादभिधामूला लक्षणामूलिकापरा ।।१३ ।

तयोराद्यामाह ।

शब्दस्यानेकार्थकस्याभिधायां
संयोगाद्यै रेकतो यन्त्रितायाम् ।
तस्यार्थं या बोधयेद्वाच्यभिन्नं
तन्मूलासौ व्यञ्जनाविद्भिरुक्ता ।।१४।।

सकते हैं । इस प्रकार निरूपित लक्षणा के द्वारा योग से लाक्षणिक शब्द होता है ।।११।।

अनन्तर व्यञ्जना व्यञ्जक का लक्षण कहते हैं । अभिधादि वृत्ति विरत होने पर जिस से विशेष अर्थ बोध होता है, उसे व्यञ्जना कहते हैं, उस के योग से शब्दादि व्यञ्जक होते हैं । शब्द वृत्ति कर्म-व्यापार से विरत होने से अर्थ प्रत्यायन शक्ति स्तिमित होती है । अभिधादि वृत्ति निज निज अर्थ प्रकाश विरत होने से जिस के द्वारा अपर अर्थ का बोध होता है, वह शब्दार्थ की वृत्ति, व्यञ्जना है । उस के योग से शब्द एवं अर्थ व्यञ्जक होते हैं । शब्दार्थ क्रम से वह दो प्रकार हैं, प्रथम के पुनर्वार द्वो भेद हैं ।।१२।

प्रथम प्रकार अभिधा मूला है, द्वितीय-लक्षणा मूलिका है ।।१३।।

प्रथम का विवरण कहते हैं—अनेकार्थ वाचक शब्द की एकार्थ

अनेक वाच्यस्य शब्दस्याभिधायां संयोगादिभिरेकस्मिन्नर्थे नियमितायां सत्यां तस्य या वृत्ति र्वाच्येतरार्थं बोधयेत्, साभिधामूला शाब्दी व्यंजना । स चक्रो हरिरस्त्वचक्रश्च भातीति चक्रसंयोगवियोगाभ्यां हरिशब्दस्याभिधा भगवति नियमिता । भीमार्जुनावित्यर्जुनः पार्थः साहचर्यात् । कर्णार्जुनाविति कर्णो राधेयो विरोधात् । सर्वं जानाति देव इति देवो भवान् प्रकरणात् चन्द्रो व्योम्नि विभातीति चन्द्रः शशी, देशविशेषात् । मधुना कोकिलो मत्त इति मधुर्वसन्तः, मदविधानसामर्थ्यात् । प्रमत्ता मधुना बधूरिति तु मध्वासव

बोधकता में नियन्त्रित होने से वह वाच्य भिन्न अभिधा मूला व्यञ्जना है । वृत्ति में इस का अर्थ प्रकाश सुस्पष्ट रूप से करते हैं । जिस शब्द का अनेक अर्थ हैं, अभिधा के द्वारा संयोगादि एक अर्थ में नियमित होने से उस की जो वृत्ति वाच्य भिन्न अपरार्थ का बोध कराती है, वह अभिधा मूला शाब्दी व्यञ्जना है । उदाहरण--"स चक्रो हरिः, अचक्रश्चभाति" चक्रयुक्त चक्रविरहित उभय रूपसे हरि शब्द भगवान् का ही वाचक है । भीमार्जुनौ--यहाँ भीम के साहचर्य्य से पार्थ शब्द अर्जुनका बोधक है । कर्णार्जुनौ, कर्ण शब्द-राधेय नन्दन का बोधक है, अर्जुन कर्ण का प्रतिद्वन्द्वी है । सर्वं जानाति देवः" यहाँ देव शब्द से भवान् अर्थ का बोध प्रकरण लभ्य है । चन्द्रो व्योम्निविभातीति, चन्द्र शब्द शशी का बोधक है, यह अर्थ आकाश शब्द के योग से प्राप्त है । मधुना कोकिलो मत्तः" यहाँ मधु शब्द--वसन्त का बोधक है, मद विधान सामर्थ्य से बोध होता है । प्रमत्ता मधुना बधूः । यहाँ मधु शब्द--आसव का वाचक है । मत्त कारकता उस में है । एवं संयोग, वियोग, साहचर्य्य, विरोध, प्रकरण, देश, सामर्थ्य, योग्यता के द्वारा एकार्थ अभिधा में नियमन होता है । यथा—हे चञ्चल लोचने ! मैंने घनप्रभहारकोदेखा, वह कौस्तुभ से उद्भासित था, वह कुचकुम्भकुम्भ को नखों से विदीर्ण कर

स्तद्विधानयोग्यत्वात् । एवं संयोगबियोगसाहचर्य्य-विरो
प्रकरणदेशसामर्थ्ययोग्यताभिरेकस्मिन्नर्थेऽभिधाया नियम
स्यात् ॥

यथा—घनप्रभः कोऽपि निरीक्षितो मया
हरिश्चलापांगि विदीप्तकौस्तुभः ।
कृष्ट्वा नखं यः कुचकुम्भिकुम्भकान्
करोति मुक्ताधवलां वनस्थलीम् ॥

अत्र कौस्तुभ-संयोगेन हरिशब्दः कृष्णमेवाभिधत्ते
सिंहस्तु व्यंजनया गम्यः। तयोरुपमा च। यथा वा
कलाभिर्निभृत इत्यादि । अत्र विधु-शब्दः प्रकरणेन भगवन्
मभिधत्ते । चन्द्रस्तु व्यंजनया लभ्यः। ननु श्लेषस्या
विषयः । परिवृत्त्यसहविध्वादिपदग्रहादिति चेन्
तस्यानवबोधात् । न वा स श्लेषः । यथा—

सच्चन्दन-धवलकुचा प्रियावनी सा घन-छाया । अ
नायिकाटवी च प्रतिपाद्यते । तत्र प्रकरणं युगपदवतरेन्
नावतरेद्वा । यत्र त्वेकत्रैवावतरति तत्र व्यजनैव । यथ
कलाभिरित्यादौ ॥१४॥ अथ परामाह—

वनस्थली को मुक्ताधवलित कर रहा है ।

यहाँ कौस्तुभ शब्द के साथ हरि शब्द का योग होने से हरि
शब्द से श्रीकृष्ण का बोध होता है । सिंह का बोध--व्यञ्जना से होगा
दोनों में उपमा है । जैसे कि कलाभि निभृत ''स्थल में है । यहाँ वि
शब्द भी प्रकरणवश कृष्ण का बोधक है। व्यञ्जना वृत्ति से च
का बोध होगा । अच्छा,—यहाँ तो श्लेष है, परिवृत्ति–असह वि
आदि पद है, ऐसा नहीं है । उसका बोध नहीं होता है। नानार्थ स्थ

लक्षणा स्वीकृता यस्मै तच्छैत्यादि–फलं यथा ।१५।
बोध्यते सा बुधैरुक्ता व्यञ्जना लक्षणाश्रया ॥

गङ्गायाम् घोषः प्रतिवसतीत्यादिषु प्रवाहादिप्रतिपाद-
नादभिधायाम् तटादि-प्रतिपादनाच्च । लक्षणायामुपक्षीणायां
यया शैत्याद्यतिशयादि बोध्यते सा लक्षणामूला व्यञ्जना ।
फलेनाभिधा सङ्केताभावात् न च लक्षणा । हेत्वभावात् ।
मुख्यार्थबाधो मुख्यार्थसम्बन्धः फलरूढ्योकतरच्चेति त्रयं
तस्याम् हेतुः । किन्तु व्यञ्जनैव तस्य प्रत्यायिकेति
स्वीकार्य्यव सा ।

अथार्थी व्यञ्जनामाह ।

वक्तृबोद्धव्यवाच्यादिवैशिष्ट्येनार्थतो यया ।१६।
अर्थान्तरं प्रतीयेत सात्वार्थी व्यञ्जना स्मृता ॥

में यहाँ अनेकत्र तात्पर्य्य ग्राहक--प्रकरणादि का अवतरण युगपत्
होता है । वह व्यञ्जना से ही होता है । जिस प्रकार 'कलाभिः'
स्थल में है ॥१४॥

शैत्यादि फल लाभ हेतु जिस को लक्षणा मानी गई है, उसे
बुधगण लक्षणाश्रया व्यञ्जना कहते हैं । 'गङ्गायां घोष.'' प्रतिवसति
यहाँ अभिधा से प्रवाह का प्रतिपादन होता है । और लक्षणा से तट
का बोध होता है, लक्षणा उपक्षीण होने पर जिस वृत्ति से शैत्यादि
का बोध होता है, वह लक्षणमूला व्यञ्जना है, अभिधा फल में नहीं
है, उस में सङ्केत नहीं है, लक्षणा भी नहीं है, हेतु का अभाव है ।
मुख्यार्थबाध,--मुख्यार्थ सम्बन्ध, फल रूढ़ि एकतर--ये तीन लक्षणा
में हेतु है, किन्तु व्यञ्जना के द्वारा ही शैत्यादि अतिशय का बोध
होता है, अतः व्यञ्जना स्वीकार करना आवश्यक है ॥१५॥

अर्थतो वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यरूपात् । तत्र वाच्यस्य व्यञ्जकत्वम् तथा—

विलुलित-विकुरा विलुप्तचित्रा
त्वमसि वरश्रम-सूचकाङ्गकान्तिः ।
अथ सपदि कृतातिचारुवेशा
निवस मृगाक्षि बधूचयोऽभ्युपैति ॥

अत्र स्मराक्रान्तेन कान्तेन भृशोपभुक्ताम् त्वाम् वीक्ष्य बध्वः परिहसिष्यन्ति स्नानादिभि स्तच्चिह्नान्यपनयेति वाच्याऽर्थो व्यञ्जयति । लक्ष्यस्य यथा—

व्रजपतिमतिसुन्दराङ्गमङ्गी
कृतमहिलं नहि लक्षय त्वमक्ष्णा ।
यदि तव भवने सुखाभिलाषः
सुमुखि चकास्ति चयेन बान्धवानां ॥

अत्र बन्धुभिः सह गृहे सुखस्पृहाम् विहाय व्रजराजसुतं पश्येति जहत्स्वार्थया लक्ष्योऽर्थ स्तद्वीक्षादिनैव तव तारुण्यं सफलमिति व्यनक्ति । उभयत्र वक्तृबोद्धव्ययो वैशिष्ट्यम् ।

१६—अनन्तर आर्थी व्यञ्जना कहते हैं । वक्तृ बोद्धव्य वाच्यादि वैशिष्ट्य के द्वारा जिस वृत्ति से अर्थान्तरकी प्रतीति होती है, उसे आर्थी व्यञ्जना कहते हैं । अर्थ से—वाच्य लक्ष्य व्यङ्ग्य होते हैं । वाच्य व्यञ्जकता का उदाहरण—कान्तोपभुक्त ललना को देखकर बधूगण उपहास करती हैं, हे मृगाक्षि ! तुम्हारे चिकुर विलुलित है, अङ्ग चित्र भी विलुप्त है, शरीर को देखकर प्रतीत होता है, तुम थक गई हो, अनन्तर विश्राम करो और उत्तम वेश से सुसज्जित हो ।

व्यङ्ग्यस्य यथा—

अरविन्दवनी क्षरन्मरन्दा
भ्रमदिन्दिरवृन्दवन्दितास्मिन् ।
विलसत्यचलं पतत्रिराजी
ननु राजीवदलायताक्षि पश्य ॥

अत्र निर्जनोऽयं देश इति व्यङ्ग्योऽर्थः । स च सुरतार्हत्वम् तस्य व्यनक्ति । वाच्यस्य स्थलस्य वैशिष्ट्यात् ।

"अधुना मुदिरागमे मनोज्ञाः सखि रत्नद्युति-दीपिता बड़भ्यः । निपतत्परिगर्जिताम्बुधारा-मुखरीभूतगृहान्तरा भवति ॥"

यहाँ स्मराक्रान्त कान्त के द्वारा अतिशय रूप से पुनः पुनः उपभुक्ता ललना को देखकर बधूगण उपहास करती हैं । स्नानादि के द्वारा सम्भोग चिह्न का अपसारण करो, यह वाच्यार्थ व्यञ्जित होता है । लक्ष्य का उदाहरण—हे सुमुखि ! यदि बान्धवों के साथ घर में सुख पूर्वक रहने की इच्छा हो तो, व्रजराज नन्दन को निज नेत्र से न देखना । यहाँ बन्धुगणों के साथ गृह में सुख स्पृहा को छोड़कर व्रज-राजनन्दन को देखो, जहत् स्वार्थ के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होता है, व्रजराजनन्दन को देखने से ही तुम्हारा तारुण्य सफल होगा । उभय स्थलमें ही वक्तृबोद्धव्य का वैशिष्ट्य है । व्यङ्ग्य का उदाहरण हे कमलदलायत नेत्रे ! देखो, स्थान अतिमनोरम है, कमलवन, मधु धारा क्षरित है, भ्रमर गुञ्जन कर रहा है, समस्त शोभा सम्पत्ति युक्त यह स्थान है, पक्षिगण सेवित भूमि शोभित है, देखो ! यह देश निर्जन है, यह अर्थ व्यङ्ग्य है, वह भी सुरत योग्य है, इसको प्रकाश करता है । वाच्य स्थल के वैशिष्ट्य से प्रकाशित हुआ है ।

अनुज्ञाप्रार्थनपरायण दूती के प्रति ललना कहती है, सखि । अधुना मेघागम से रत्नद्युति द्वारा उद्भासित गृह राजि है, अम्बुधारा

अत्र क्व कान्तमानेष्यामीति सङ्केतमिङ्गितेन पृच्छन्तीं दूतीं प्रति नेदानीं कुञ्जो रम्यः किन्तु भुवनमेवेति वाच्योऽर्थो व्यञ्जयति कालवैशिष्ट्यात् ।

अरविन्दमरन्दसंभृतः सखि यस्मिन् रमते समीरणः ।
नवपल्लवमन्दिरम् जनः प्रतिपद्येत पदं शुभेन तत् ॥

अत्र कान्तेन कृष्णेन सार्द्धं तत्र मां संयोजयेति वाच्योऽर्थो द्योतयति देशवैशिष्ट्यात् । यत्र शब्दस्य प्राधान्येन व्यञ्जकत्वं तत्रार्थस्य गौणं तत् । यत्र त्वर्थस्य प्राधान्येन व्यञ्जकत्वं तत्र शब्दस्य तद्गौणमिति प्राधान्यमव्य-पेक्ष्य शाब्दार्थौ च व्यञ्जनेत्युक्तिः ॥

इति काव्यकौस्तुभे शब्दार्थ तद्वृत्तिनिर्णयो
द्वितीया प्रभा ॥

की वर्षा चारों और हो रही है, उससे गृहाभ्यन्तर मुखरीकृत हो गया है। यहाँ कहाँ पर कान्त को ले आऊँगी? पूछने पर दूति को ललना बोली, इदानीं कुञ्ज रम्य नहीं है, किन्तु भवन ही रम्य है, इस प्रकार वाच्य अर्थ व्यञ्जित हुआ काल वैशिष्ट्य से।

हे सखि! भ्रमर शोभित कमल में समीरण विलास करता है, सुखी जन सौभाग्य से मङ्गल मय नव पल्लव मन्दिर को प्राप्त करता है। यहाँ कान्त कृष्ण के साथ मुझे वहाँ पर मिलन कराओ, इस प्रकार वाच्यार्थ द्योतित होता है—देश के वैशिष्ट्य से। जहाँ शब्द का प्राधान्य से व्यञ्जकता है, वहाँ अर्थ गौण होता है, जहाँ अर्थ प्राधान्य से व्यञ्जकता है, वहाँ शब्द का गौणत्व है, इस प्रकार प्राधान्य की अपेक्षा से शब्दार्थों व्यञ्जना होती है।

इति काव्य कौस्तुभे शब्दार्थ तद् वृत्ति निर्णयो
द्वितीय प्रभा।

तृतीया प्रभा।

—*—

एवं काव्य-शरीरभूतौ शब्दार्थौ निरूप्येदानीं तदात्मभूतान् रसादीन्निरूपयति तत्र रसस्वरूपमाह ॥

विभावैरनुभावैश्च सात्विकै र्व्यभिचारिभिः ।
व्यक्तो रत्यादिकः स्थायी विद्वद्भिः कथितो रसः ।१।

(२) एतद्व्याचष्टे ।

रत्यादेः स्थायिनस्तस्यालम्बनोद्दीपनाह्वयम् ।
निमित्तकारणं प्राज्ञैर्विभावः परिकीर्त्यते ॥
स्थायिनामाश्रयो यस्तु स स्यादालम्बनो मतः ।
तेषामुद्दीपकः प्रोक्तो बुधैरुद्दीपनाभिधः ॥

तृतीयप्रभा।

—*—

(१) एवं काव्य के शरीर भूत शब्दार्थ का निरूपण कर सम्प्रति उसके आत्मभूत रसादि का निरूपण करते हैं।

विभाव अनुभाव सात्विक व्यभिचारि के द्वारा रत्यादि स्थायी भाव व्यक्त होने से विद्वान् गण उसे रस कहते हैं ॥१॥

(२) उसको कहते हैं—रत्यापरपर्याय स्थायीभाव के आलम्बन-उद्दीपन नामक निमित्त कारण को प्राज्ञगण विभाव कहते हैं। स्थायि-भाव का जो आश्रय है, वह आलम्बन है, बुधगण उसका उद्दीपक को उद्दीपन विभाव कहते हैं।

ललनादि यथाख्याता यथा च विपिनादिकं ।
अनुभावस्तु रत्यादेरुपजातः स्मितादिकः ॥
सात्विकाः स्तम्भरोमाञ्च वैवर्ण्यस्वेद-संलयाः ।
स्वरभङ्गाश्रुकम्पाश्च रसज्ञैरष्ट कीर्त्तिताः ॥
स्थायिनः पोषको निर्वेदादिः सञ्चारिसंज्ञकः ।
निर्वेदग्लानिदैन्यानि शङ्कासूया-मदश्रमाः ॥
आलस्यमोहस्मृतयो धृतिचिन्तामृतित्रपाः ।
आवेग-हर्ष-चापल्य-जाड्यगर्व-विषण्णताः ॥
स्वप्नौत्सुक्यावहित्थाश्च निद्रामर्षौ मतिस्तथा ।
औग्र्यापस्मारसंत्रासबोधव्याधिवितर्ककाः ।
उन्मादश्चेत्यमी त्रिंशत्त्रयश्च व्यभिचारिणः ॥
रजस्तमोनिहीनस्य शुद्धसत्वस्य चेतसः ।
धर्मो निगदितः स्थायी रसोपादानतां गतः ॥
विभावादेः पृथक्त्वेन पार्थक्यं यात्यसावपि ॥२॥

ललनादि-विपिनादि को उद्दीपन विभाव कहते हैं, रतिके अनुभाव स्मितादि होते हैं ।

स्तम्भ, रोमाञ्च वैवर्ण्य, स्वेद, संलय, स्वरभङ्ग, अश्रु, कम्प को अष्ट सात्त्विक कहते हैं। स्थायिभाव का पोषक होने से निर्वेदादि को सञ्चारि भाव कहते हैं। निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, मोह, स्मृति, धृति चिन्ता मृति त्रपा, आवेग, हर्ष, चापल्य जाड्य, गर्व विषण्णता, स्वप्न, औत्सुक्य, अवहित्था, निद्रा अमर्ष, मति, उग्रता, अपस्मार, संत्रास, बोध व्याधि वितर्क, उन्माद-ये ३३ त्रयस्त्रिंशत् व्यभिचारी कहलाते हैं।

जिस चित्त में रजोगुण तमोगुण शून्य शुद्ध सत्त्व है, उस चित्त

(३) स च नवविधः,

रतिहासौ तथा शोकः क्रोधोत्साह-भयानि च ।
जुगुप्साविस्मयशमाः स्थायिनो नव कीर्त्तिताः ।
चतुर्भि व्यञ्जकैरेभिः प्रबन्धे चारुतां गतैः ।
आस्वादांकुरकन्दोऽसौ व्यक्तः स्थायी रसायते ॥

(४) यदुक्तं—

साधारण्येन विज्ञातै विभावाद्यैर्विमिश्रितः ।
च्युतवेद्यान्तरः स्थायी चमत्कारिसुखं रस इति ।
आनन्दांशे विभावाद्यैर्बलिष्ठै र्भग्नसंवृतिः ।
आत्मारत्याद्यवच्छिन्नो रसः स्यादिति केचन ॥

(५) स च रसो नवविधः ।

शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नवाचार्य्यैरसाः स्मृताः ॥

के धर्म को स्थायी भाव कहते हैं, वह ही रसका उपादान होता है। वह विभावादि रूप से पृथक् प्रतीत होता है ॥२॥

(३) रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा विस्मय शम ये नव स्थायिभाव होते हैं। विभाव अनुभाव सात्त्विक सञ्चारि मिलित होकर आस्वाद अङ्कुर कन्द स्थायी भाव रसरूपमें परिणत होता है।

(४) अभियुक्त व्यक्ति कहते हैं-साधारणी करण द्वारा विभावादि संयुक्त होने से वेद्यान्तर स्पर्श शून्य होकर स्थायी भाव चमत्कारकारि सुखरूप रस होता है। इस में मतान्तर कहते हैं–बलिष्ठ विभावादि द्वारा आनन्दोद्रेक होने पर जब अन्य प्रत्यय अभिभूत हो जाता है, एवं आत्मा रत्यादि से युक्त होता है, तो किसी के मतमें रस होता है ।४।

वह रस नवविध हैं —

श्यामः पाण्डुर्धूम्रो रक्तो गौरस्तथैव कालश्च ।
नीलश्च पिङ्गलश्चापि श्वेतश्चेति क्रमादमी ॥ बोध्याः
नन्दात्मज-हलि-सीतापतिर्भार्गवकल्किनः क्रमतः ।
किरिबुद्धकूर्मकपिलाश्चापि रसानां स्मृता देवाः ॥

इति रससामान्यनिरूपणम् ।

६ । अथ विशेषेण ते निरूप्यन्ते । तत्र शृङ्गारः ।
प्रोक्ता मनोऽनुकूलेऽर्थे रतिश्चेतोनुरञ्जनं ।
शृङ्गारस्थायितामेति कान्तत्वेऽर्थस्य तस्य तत् ॥
कान्तादन्यत्र तत्प्रीतिः पांचाल्याः श्रीहरौ यथा ।
यूनोः सखीषु सखीषु मैत्री तत् स्यात्परस्परम् ॥

शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र वीर, भयानक, बीभत्स अद्भुत, शान्त को आचार्य गण रस कहते हैं । श्याम, पाण्डु, धूम्र, रक्त, गौर, काल, नील, पिङ्गल श्वेत, क्रमशः उक्त रसे के वर्ण होते हैं ।

देवता कहते हैं—नन्दनन्दन, हली, सीता पति, भार्गव कल्कि, वराह, बुद्ध, कूर्म, कपिल, क्रमशः उक्त रसोंके देवता होते हैं । (५)

इति रससामान्य निरूपणम् ॥

(६) अनन्तर विशेष रूप से उनका निरूपण करते हैं । इनमें से शृङ्गार का प्रदर्शन करते हैं---मनोऽनुकूलविषय में चित्त की अनुरञ्जनात्मिका वृत्ति ही रति स्थायिभाव है, जब विषय कान्त रूप से ही प्रतिभात होता हो तो वह शृङ्गारस्थायिता को प्राप्त करता है,सर्वोत्तमताके कारण इस रसका कथन शृङ्गार शब्दसे हुआ

कान्त से अन्यत्र भी वह प्रीति होती है, जिस प्रकार पाञ्चाली की प्रीति श्री हरि में हुई । इस से ही युवक युवती की प्रीति का निर्वाह, सखी के प्रति, एवं सखियों की प्रीति परस्पर में होती है ।

यत्र स्पर्शश्च हासश्च यथायथमुदीक्ष्यते ।
सम्भोगो विप्रलम्भश्च शृङ्गारो द्विविधो मतः ॥

७ । तत्र सम्भोगः ।

रतिरेषा विभावाद्यै रुचितै र्व्यक्तिमागता ।
आलिङ्गनादिहेतुश्चेत्तदा सम्भोग उच्यते ॥

यथा—त्वं मुग्धाक्षि विनैव कञ्चुलिकया धत्से मनोहारिणीम्
लक्ष्मीमित्यभिधायिनि प्रियतमे तद्वीटिकासंस्पृषि ।
शय्योपान्तनिविष्टसस्मितवधूनेत्रोत्सवानन्दितो
निर्यातः शनकैरलीकवचनोपन्यासमालीजनः ॥

यथा वा — सख्या स्तवानंगरसोत्सवेऽधुना
ननर्त्त मुक्तालतिका स्तनोपरि ।
उत्प्लुत्य यस्याः सखि नायक श्चलो
धीरं मुहु र्मे प्रजहार कौस्तुभं ॥
मिथोऽवलोकमाध्वीकपानादि र्बहुधा ह्यसौ ।

जहाँ स्पर्श हास का दर्शन यथायथ रूप से होता है । यह शृङ्गार सम्भोग विप्रलम्भ भेद से दो प्रकार हैं । (६)

(७) इस में सम्भोग— यह रति अनुरूप विभावादि के द्वारा प्रकाशित होती है । आलिङ्गनादि हेतु होने से उसे सम्भोग कहते हैं । उदाहरण—कान्त ने बोला, हे प्रियतमे ! मुग्धाक्षि ! तुम तो कञ्चुलिका के बिना ही मनोहर शोभित हो रही हो,प्रियतम के इस कथन से उसने उसकी वीटिका को स्पर्श किया ।

शय्याके समीप में निविष्ट, सस्मित वधूनेत्रोत्सवानन्दित सखी जन,धीरे धीरे बहाना बनाकर निकल गई । यथा वा-कृष्ण सखिको बोले

मिथोऽवलोको यथा—

एहीति पृष्ठगसखीरणकैतवेन
व्यावृत्य यो मयि तथा विहितः कटाक्षः ।
प्रत्यस्तवन्मम कटाक्षमवाप्य शान्तौ
ध्यन्तर्विभेद स निकृन्तशरार्द्धवन्मे ॥

एवमन्ये तूह्याः ॥

८। अथ विप्रलम्भः ।

अयुक्तयो र्युक्तयो र्वा यूनोः श्लेषाद्यभावतः ।
प्रकृष्यति रतिः सा चेद्विप्रलम्भ स्तदोच्यते ।
पूर्वराग स्तथा मानः प्रवासश्चेति स त्रिधा ॥

९। तत्र पूर्वरागः—

रति र्या संगमात् पूर्वं पूर्वरागः प्रकीर्त्यते ॥

हे सखि ! तुम्हारी सखि की मुक्तालतिका अनङ्ग उत्सवमें वक्षोज के उपर नृत्य कर रही है । जिस की मध्यमणि ने सहसा उछल कर मेरे कौस्तुभ को अपहरण कर लिया ।

इसमें परस्पर अवलोकन, मधुपानादि अनेक प्रकार विलास होते हैं ।

मिथोऽवलोको यथा—कृष्ण ने कहा—सखी को बुलाने के बहाने आओ, कह कर पीछे के ओर दृष्टि देकर जब मेरे प्रति कटाक्ष निक्षेप किया तो मेरा कटाक्ष उस के कटाक्ष के प्रतिरोधक बनकर शान्त हुआ, किन्तु उसका कटाक्ष कटा हुआ शर की भाति मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर ही रहा । इस प्रकार उदाहरण का प्रस्तुतीकरण स्वयं करें । (७)

(८) अथ विप्रलम्भ, पात्र पात्री की प्रीति जब मिलनाभाव से तन्मयता को प्राप्त करती हो तो उसे विप्रलम्भ कहते हैं । इस में पूर्व

यथा—इन्दीवरोदरसहोदरमेदुरश्री
र्वासो द्रवत् कनकवृन्दनिभं दधानः ।
आमुक्तमौक्तिक-मनोहर-हारवक्षाः
कोऽयं युवा जगदनङ्गमयं करोति ॥

यथावा-कनकाद्रि-निकेतकेतकी कलिता कल्पकलेवरद्युतिः ।
हृदि सा मुदिरालिमेदुरे चपला मां किमलं करिष्यति ॥

१०। अत्र दश दशाः ।

लालसोद्वेग--जाड्यानि तानव्याधिजागराः ।
उन्मादव्यग्रता-मोहा मृत्युश्चेति दशा दश ॥

मृत्युशब्देन मूर्च्छोच्यते ।

११। अथ मानः ।-एकत्र स्थितयो र्यूनोरन्योन्यमनुरक्तयोः ।
रति श्चु वाद्यहेतुश्चेत्तदा मानः प्रकीर्त्यते ॥

राग, मान, प्रवास तीन प्रकार अवस्था है । (८)

(९) तत्र पूर्वरागः—मिलन के पूर्व में जो प्रीति होती है, उसे पूर्वराग कहते हैं । यथा—राधा कहती हैं—नीलकमल के समान कमनीय कान्ति, सवर्ण वर्ण परिधेय वसन, मुक्तामाला से शोभित वक्षःस्थल, युवक कौन है, जो जगत् को अनङ्गमय कर रहा है ।

यथा वा—कृष्णोक्ति-कनकाद्रि निवासी कनक केतकी समद्युति नीलमेघ के वक्षः स्थलमें शोभित चपला मुझ को क्या करेगी ? ।९

(१०) अत्र दशदशाः । इस में दशदशा होती हैं । लालसा उद्वेग, जड़ता, क्षीणता, व्याधि, अनिद्रा, उन्माद, व्यग्रता, मोह, मृत्यु । मृत्यु शब्द से मूर्च्छा को जानना होगा । (१०)

(११) अथमानः—अन्योन्य अनुरक्त युवक युवतियों में सहसा प्रीति

यथा — स्वप्ने व्यलीकं वनमालिनोक्तं
पालीत्युपाकर्ण्य विवर्णवक्त्रा ।
श्यामा विनिश्वस्य मधुत्रियामां
सहस्रयामामिव साभ्यनैषीत् ॥
निर्हेतुकोऽपि मानो गम्यः ॥

१२ ॥ अथ प्रवासः । यथा—
मुग्धा सुधांशु-किरणे
जालगते भवनदाह-चकिताक्षी ।
आदातुमवधिलेखं
प्रविशति भवनं निवार्य्य सह यान्तीः ॥

अथ विभावेषु नायकभेदाः ।

अवाक्षिण्य को प्राप्त होने से मान कहते हैं ।

सहेतुक मानका उदाहरण—स्वप्नावस्था में वनमालीने 'पाली' शब्द का उच्चारण किया था, इस से श्यामा का मुखमण्डल विवर्ण हो गया, और पुनः पुनः श्वास लेती हुई मधुत्रियामिना को सहस्रयामिनी की भांति बिताई । यह मान--निर्हेतुक भी होता है । (११)

(१२) अथ प्रवासः---यथा— मुग्धा, सुधांशु किरण से जो गवाक्ष से गृहाभ्यन्तर में आ रही थी, गृहदाह की शङ्का से चकित हो उठी, अवधि लिखित पत्र को लाने के लिए घर में घूस रही थी, किन्तु साथ जानेवाली सखी को मना कर रही थी । (१२)

अथ विभावेषु नायकभेदाः ।

(१३) नायक भेद में धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरप्रशान्त, धीरललित, चतुर्विध हैं । क्रमशः इस के लक्षण प्रस्तुत करते हैं ।

१३ । धीरोदात्तो धीरोद्धतश्च धीरप्रशान्तश्च ।
धीरललितः क्रमेणैषां लक्षणानि लक्ष्याणि च ॥
क्षमी गभीरो निगूढगर्वो महासत्त्वः ।
श्लाघाशून्यः शुभवाग्धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

यथा—वीरमन्यमदप्रहारिहसितंधौरेयमार्तोद्धृतौ
निर्व्यूढव्रतमुन्नतक्षितिधरोद्धरेण धीराकृतिम् ।
मय्युच्चैः कृतकिल्विषेऽपि मधुरं स्तुत्या मुहुर्यन्त्रितम्
प्रेक्ष्य त्वां मम दुर्वितर्क्य-हृदयं धीर्गीश्च न स्पन्दते ॥

१४ । स्वश्लाघातिरतो मायी मत्सरी क्रोधनश्चलः ।
अहंयुः कथितो धीरोद्धतोऽसौ रसवेदिभिः ॥

यथा—विच्छातच्छिद्रमन्विच्छ विमूर्छन्म्लेच्छदर्दुर ।
प्रसर्पन् कृष्णसर्पस्त्वां भक्षयत्येष सक्षणः ॥

क्षमाशील, गम्भीर निगूढ़ गर्व, महासत्व, श्लाघाशून्य, हितवादी दृढ़व्रत को धीरोदात्त कहते हैं । उदाहरण—जिनके हास्य से वीरम्मन्य व्यक्तियों का दर्प नष्ट हो जाता है, जो आर्त्तजन की रक्षा में अग्रणी है, असुर स्वभाव सम्पन्न व्यक्ति के भार से पृथिवी पीड़िता पर होने वैसे रक्षा करना जिनका व्रत है, जो अतिशय धीर हैं, उनके प्रति मैं अपराधाचरण करने पर भी आपने मेरे प्रति मधुर व्यवहार ही किया । इस प्रकार दुर्वितर्क्य हृदय विशिष्ट आपको देखकर मेरी बुद्धि तथा वाणी जड़ हो गई ॥१३॥

(१४) जिस में आत्मश्लाघा में आसक्ति है, मायावी, मत्सर, क्रोधी, चञ्चल, अहंकारी स्वभाव है, उसे रसवेत्ता गण धीरोद्धत कहते हैं— यथा—हे म्लेच्छ दर्दुर सत्वर आत्मरक्षा के निमित्त आश्रयस्थलका अन्वेषण करो, अन्यथा यह कृष्ण सर्प तुम्हें अवश्य

विनयी विवेकयुक्तो विपदां सहनश्च शान्तश्च ।
धीरप्रशान्तः स कथितो मुनिनातिधर्मिष्ठः ॥

यथा—श्रुतवर्ण-धर्मनिरता निजप्रजाः
प्रतिरञ्जयन्ननुगत-क्रियोदयः ।
हरिभक्तिरत्नपरितुष्ट-मानसः
पृथिवीं प्रशास्ति नृपतिर्युधिष्ठिरः ॥

परिहासपटुर्मृदुलः कलाकलापाञ्चित स्तरुणः ।
कान्तावशगश्चिन्तारहितः कथितोऽत्र धीरललितोऽयं ॥

यथा—सुस्मेरां व्रजतरुणीं चलालकां तां
संपश्यन्मधुरिमभारसंनतांगीं ।
सानन्दः पुलककुलाकुलोज्ज्वलश्रीः
शुद्धान्ते शुभवति माधव श्चकास्ति ॥१४॥

१५ । एषोऽनुकूलदक्षिण-शठ-धृष्टतया चतुर्विधोऽभिमतः ।
निखिला श्चतुर्विधाः स्युस्तेनामी षोड़शोदिताः कैश्चित् ॥

ही तत्काल भक्षण करेगा । विनयी, विवेक युक्त, शान्त, विपद् सहन शील, अतिधर्मिष्ठ को मुनिने धीर प्रशान्त कहा है । यथा--युधिष्ठिर-- अधीतशास्त्रानुरूप आचरणरत प्रजाओं को सुखी करने के निमित्त सर्वदा कार्य करते थे, एवं हरि भक्तिरत्न प्राप्ति से सन्तुष्ट मानस से पृथिवी पालन करते थे । परिहास कार्य में निपुण, मृदुल, कलाविलास पूर्व, तरुण, कान्तावश, चिन्ता रहित को धीरललित कहते हैं ।

यथा—माधव--सुस्मेर चञ्चलालकावली शोभित अङ्ग शोभा से मण्डित वृज ललना को देखकर आनन्द पुलकों से शोभित होकर मङ्गलमयभवन में विराजित हैं ॥१४॥

(१५) यह नायक—अनुकूल दक्षिण, शठ, धृष्ट—चार प्रकार के

अनुकूलादीनां लक्षणानि ।

एकाश्रितोऽनुकूलः समः समस्तासु दक्षिणः प्रोक्तः ।
शठः एकस्यां रक्तो वहिः परस्यां धृतप्रणयः ॥
समन्तुरपि निःशङ्कस्तर्जितोऽपि न लज्जितः ।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक् प्रोक्तोऽसौ धृष्ट-नामकः ।
एषां लक्ष्याणि मृग्याणि ॥

इति नायकभेदाः ॥

—✻✻—

१६ । अथैषां गुणाः ।

श्रीमान् कृती कृतज्ञश्च रूपयौवन-मण्डितः ।
त्यागी दक्षोऽनुरक्तश्च तेजस्वी चतुरः सुधीरित्यादयः ॥
शोभा विलासो गाम्भीर्य्यं स्थैर्य्यं माधुर्य्यतेजसी ।
औदार्य्यं ललितं चेति सत्वजं स्याद् गुणाष्टकम् ॥

होते हैं । पूर्वोक्त चतुर्विध के साथ मिलकर षोड़श भेद होते हैं । अनुकूल प्रभृतियों के लक्षण निकर इस प्रकार है । एक को आश्रय कर रहने वाले को अनुकूल कहते हैं, सब के प्रति उदार बुद्धि वाले को दक्षिण कहते हैं । शठ,—उसे कहते हैं, जो व्यक्ति बाहर एक के प्रति अनुराग को दिखते हुए अपर में गाढ़ प्रीति करता है । जो अपराध से भी नहीं डरता है, भर्त्सना से भी लज्जित नहीं होता है, दोष प्रकट होने पर भी मिथ्या भाषण करता है । उसे धृष्ट नायक कहते हैं । इसके उदाहरण समूह आकर ग्रन्थमें अनुसन्धान करें ॥१५॥

इति नायक भेदाः

(१६) इस के गुण समूह—श्रीमान्, कृती, कृतज्ञ, रूप यौवन-- मण्डित, त्यागी, दक्षो, अनुरक्त, तेजस्वी, चतुरः, सुधी, प्रभृति ।१६।

१७। तत्र शोभा-नीचे कृपाधिके स्पर्द्धा सत्य-शौर्यातिदक्षता:।
उत्साहश्चानुरागश्च शोभा स्युर्मिलिता इमे ॥

यथा—स्वर्गध्वंसं विधित्सु र्व्रजभुवि कदनं सुष्ठु वीक्ष्यातिवृष्ट्या
नीचानालोच्य पश्चान्नमुचिरिपुमुखानूढ़कारुण्यवीचिः।
अप्रेक्ष्य स्वेन तुल्यं कमपि निजरुषामत्र पर्याप्तिपात्रं
बन्धूनानन्दयिष्यन्नुदहरत हरिः सत्यसन्धो महाद्रिम् ।

१८। कल्पनं रम्यवेषादे विलासः कथ्यते बुधैः।
यथा—विचित्रगुञ्जागिरिधातुचित्र-
विभूषितोऽसौ सखीभि मुरारिः।
स्वयं च तान् कौतुकतः कलावान्
विभूषयंस्तै विजहार सार्द्धं ॥

(१७) शोभा, विलास गाम्भीर्य स्थैर्य, माधुर्य तेजः औदार्य, ललित यह आठ गुण को सत्वज कहते हैं।

तत्र शोभा, नीच के प्रति कृपा, अधिक में स्पर्द्धा, सत्य, शौर्य्य अतिदक्षता, उत्साह, अनुराग,---यह सब मिलकर शोभा होती है।

उदाहरण—सत्यसन्ध हरिने गोवर्द्धन महाद्रिको उठा लिया, इन्द्र ने अति वृष्टि के द्वारा व्रज भूमि को विपन्न कर दिया था, किन्तु आपने देखा विपक्ष इन्द्र अपने के समान नहीं है, अत क्रोध किस से करे,यह देखकर करुणार्द्र हृदयसे ही उसपर्वत को उठाकर उन बन्धुओं को आनन्दित किया ॥१७।

(१८) विलास—रम्य वेषादिका धारण को विलास कहते हैं। यथा—मुरारि,—विचित्र गुञ्जा गिरिधातु के चित्र से चित्रिताङ्ग होकर सखाओं को चित्रित किया एवं उन से स्वयं भूषित होकर उन सब के साथ विहार करने लगे ॥१८॥

१९। गाम्भीर्यं-भीकोपशोकहर्षाद्यै गाम्भीर्यमविकारिता।
यथा—नो कथ्यते किमु कथा विषयो यदि स्या-
न्नो गोप्यते किमु भवेद् यदि गोपनीयः।
आपच्यमान इव हृद्व्रण एष भावः।
कृष्णस्य कामपि दशां भजते न विद्मः ॥

२०। स्थैर्यं—स्वनिश्चयादचलनं स्थैर्यं विघ्ने महत्यपि।
यथा—प्रतिकूलेऽपि सशूले शिवायां निरंशुकायां च।
व्यलुनदेव मुकुन्दो विन्ध्यावली-नन्दनस्य भुजान् ॥

२१। माधुर्यं—सर्वथा स्पृहणीयत्वं माधुर्यं परिकीर्त्यते।
यथा—निरस्य रत्नाभरणानि माधवः' इत्यादि।

गाम्भीर्य—

(१९)—भय, कोप, शोक, हर्षादि के द्वारा विकार प्राप्त न होना ही गाम्भीर्य है। यथा—कथनीय होने पर भी कुछ भी नहीं कहता, यदि गोपनीय हो, तो भी गोपन नहीं करते हैं, । ईषद् पक्व हृदय व्रण के समान यह भाव,—कृष्ण को किस दशा को उपस्थित करता है, इस को हम जान नहीं सकते ॥१९॥

(२०) स्थैर्यम्—अतिशय विघ्न उपस्थित होने पर भी निज निश्चय में स्थिर रहने को स्थैर्य कहते हैं।

यथा—शिव त्रिशूल हस्त से प्रतिकूल परायण थे, पार्वती भी विवशा होकर प्रतिकूल आचरण कर रही थी, किन्तु मुकुन्द,--इस भीषण प्रतिकूल अवस्था में विन्ध्यावली नन्दन के भुज समूह को छेदन किये थे ॥२०॥

(२१) माधुर्यम्—सर्वथा स्पृहणीयत्व को माधुर्य कहते हैं।
यथा—माधव, रत्नाभरण समूह को परित्याग करके भी

२२। तेजः—अवज्ञादेरसहनं तेजः सद्भिरुदीर्य्यते।

यथा—व्रजाधिपे शूरसुते च कंसेनाकृश्यमाने किल निग्रहाय।
चुकूर्दिषु मंचमधिस्थितिज्ञस्ताम्रांबकः पश्य हरिं विभाति॥

२३। औदार्य्यं-मित्रामित्रेषु यत्साम्यं तदौदार्य्यं प्रकीर्त्तितं॥

यथा—आपीय पूतनायाः सहचरजननीगणस्य च स्तन्यं।
सदयः सममेव ददौ जननीत्वं यः स एव पायात्॥

२४। ललितं—शृङ्गारप्रचुरा चेष्टा ललितं कथ्यते बुधैः॥

यथा—विपिनलतादलकुसुमैं विभूष्य राधां हरिः प्राह।
त्वं सुमुखि कृष्ण-पक्ष प्रणयवती कुञ्जदेवता कापि॥

इति नायकगुणाः॥

शोभित थे॥२१॥

(२२) तेजः—अवज्ञादि का असहन को तेजः कहते हैं।

व्रजाधिपनन्द एवं वसुदेव को तिरस्कार करते देखकर कृष्ण, कंस को निगृहीत करने के निमित्त मञ्चके उपरिस्थित कंस के निकटवर्त्ती हुए, देखो॥२२॥

(२३) औदार्य्यम्, मित्र अमित्र में समता परायण को औदार्य्य कहते हैं। यथा—सहचर गणको जननी के स्तन्य पान एवं पूतना का भी स्तन्यपान आपने किया, और सदय होकर दोनों को ही जननी मति दी, वह कृष्ण तुम सब की रक्षा करें॥२३॥

(२४) बुधगण—शृङ्गार प्रचुर चेष्टा को ललित कहते हैं।

यथा—हरिने विपिन लतादल कुसुम के द्वारा राधाको विभूषित करके कहा,—हे सुमुखि! तुम तो कृष्ण पक्ष प्रणयवती कोई कुञ्ज देवता हो॥२४॥

इति नायक गुणाः॥

अथ तत्सहायाः।

—※—

१। नायकस्य सहायाः स्युः सखाय स्तेषु केचन।
रहस्यज्ञाः प्रियसखाः प्रियनर्मसखा स्तथा।
दूताश्च त्रिविधा स्तेषु निसृष्टार्थोऽमितार्थकः।
सन्देश-हारकश्चेति स्फुटमग्रे भविष्यति॥

इति सहायाः।

अथ नायिका-भेदाः।

२। परकीया स्वकीया च नायिका द्विविधा मता।
ऊढ़ानूढ़ा च तत्राद्या द्विविधा परिकीर्त्तिता॥

अथ तत्सहायाः।

अथ तत्सहायाः

(१) नायक सहायक सखागण होते हैं। उनमें से कतिपय रहस्यज्ञ, प्रियसख्या, प्रियनर्मसखा होते हैं, दूतगण भी त्रिविध होते हैं। निसृष्टार्थ, अमितार्थक, सन्देशहारक भेद से तीन प्रकार होते हैं, इस का विशेष कथन आगे होगा॥१॥ इति सहायाः।

अथ नायिका-भेदाः।

(२) नायिका स्वकीया परकीया भेद से द्विविध हैं, परकीया ऊढ़ा अनूढ़ा भेदसे द्विविध हैं। अनूढ़ा को छोड़कर दो प्रकार जो नायिका

अनूढ़ां वर्जयित्वात्र द्विविधा नायिका तु या ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भा च प्रत्येकं सा त्रिधा स्मृता ।
धीराश्च स्युरधीराश्च धीराधीराश्च नायिकाः ।
मुग्धां विहाय तेनैता बुधैः पंचदशोदिताः ॥
लौकिके परकीया तु कन्यैवाभिमता भवेत् ।
अलौकिके परोढ़ापि कृष्णानन्यैव संमता ॥
शतं ता विंशतिश्च स्यु रवस्थाभिरथाष्टभिः ।

३ । तत्र कन्या —

पित्राद्यर्पणतः पूर्वं तदादेरप्यसंमतौ ।
जातानुरागा कन्या चेत् परकीयैव संमता ।
दुर्गार्च्चनपराः कन्या यथा श्रीगोकुले स्मृताः ।
अन्यैर्व्यूढ़ा अपि स्नेहाद्गोविन्दार्पित-विग्रहाः ।

हैं, वह मुग्धा मध्या प्रगल्भा भेद से प्रत्येक तीन तीन प्रकार हैं. धीरा अधीरा धीरा धीरा भेद से नायिका तीन प्रकार हैं, मुग्धाको छोड़कर अवशिष्ट पञ्चदश प्रकार हैं, लौकिक में परकीया शब्द से कन्यका को जानना होगा,अलौकिक में तो कन्या परोढ़ा भी श्रीकृष्ण की अनन्या होती है । अष्ट अवस्था के द्वारा वे एकशत विंशति होती हैं ।

(३) उस में से कन्या का लक्षण पिता आदि के द्वारा अपर को अर्पण करने के पहले पिता माता प्रभृति की असम्मति से यदि श्रीकृष्ण के प्रति अनुरागिणी होती है, तो उसे परकीया कहते हैं । श्रीगोकुल में दुर्गार्चन परायणा कन्या गण हैं ।

अन्य से बिवाहित होने पर भी स्वाभाविक स्नेह से गोविन्दार्पित बिग्रहा कुछ होती हैं ।

विप्राग्नि साक्षीकर विवाह विधि सम्बन्धान्वित ललनागण पति

करग्रह-विधिं प्राप्ता भर्त्तुं वंचन-तत्पराः ।
स्वकीयाः कथिता स्तास्तु द्वार्वत्यां रुक्मिणी-मुखाः ॥

४ । अथ मुग्धादीनां लक्षणानि । दिङ्मात्रेण लक्ष्याणि च ।
प्रथमावतीर्ण-तरुणिम-मदनविकारा सखीवशा ।
माने मृदुः सलज्जा दुःसहसुरता भवेन्मुग्धा ॥

५ । तत्र प्रथमावतीर्णा—तरुणिमा यथा—

धावत्याक्रमितुं जवात्परिसरं श्रुत्योरपांगद्वयी
पौष्कल्यं हरतः कुचौ वलिगुणैराबध्य मध्यं ततः ।
मुष्णीत श्चलतां भ्रुवौ चरणयो रुद्यन्महाविभ्रमे
राधाया स्तनुपत्तने नरपतौ बाल्याभिधे शीर्य्यति ॥

६ । दुःसहसुरता यथा—

नवसंगम—लालसेन नेत्रा मृगनेत्रा विमितास्मितांचितभ्रूः ।

के आदेश पालन तत् पर होती हैं, उसे ही स्वकीया कहते हैं, जैसे द्वारका में रुक्मिणी प्रमुख हैं ।३।

(४) अथ मुग्धा प्रभृति का लक्षण-दिग् दर्शन रूप लक्षण करते हैं ।—तारुण्य का प्रथम प्रवेश तथा मदन विकार का प्रारम्भ, सखी के अधीन रहना, मान में मृदुता, लज्जा शीला, दु सह सुरता को मुग्धा कहते हैं ॥४॥

(५) उस में से प्रथमावतीर्ण तरुणिमा का उदाहरण—नेत्र के अपाङ्गद्वय वेग से बाहर आक्रमण करने के निमित्त दौड़ते हैं, वक्षोज द्वय ने अपनी स्थूलता द्वारा मध्य भाग की स्थूलता को अपहरण कर उसे त्रिवली से बन्ध दिया है । राधा के तनु पत्तनमें भ्रू रूपी चञ्चल नरपति का उदय होने से वाल्य नाम से परिचित सब जन दुःखी हो

वरचंदन-कल्पितेन्दिरं सा मुखचन्द्रं कृत-सीत्कृतं बभार ॥

७। मध्या विलसित-तरुणिम-सुरतिभरा परिमित-व्रीडा।
ईषत्प्रगल्भवचना निगूढ़चातुर्य्यभाक् प्रोक्ता॥

८। तत्र विलसित-तरुणिमा यथा—

वाद्यं किङ्किणिमाहरत्युपचयं ज्ञात्वा नितम्बो गुणी
स्वस्य ध्वंसमवेत्य वष्टि वलिभियोग सहन्मध्यमं।
वक्षः साधु फलद्वयं वितनुते राजोपहारक्षमं
राधाया स्तनुराज्य मंचति नवे क्षौणीपतौ यौवने॥

९। निगूढ़चातुर्य्या यथा—

हरौ परिरम्भकलाविलासे ननेति भामा मधुरं वदन्ती।
श्लिष्यंतमुच्चै स्तमथाभिरेभे यथा परानन्दनिधौ ममज्जः।

जाते हैं। अर्थात् बाल्यता अपसृत हुई ॥५॥

(६) दुःसह सुरता यथा—नवसङ्गम लालसा से विभोर होकर चञ्चल नयना मुखचन्द्र को सीत्कार शोभा से अलङ्कृत किया॥६॥

(७) मध्या—तारुण्य पूर्णा, सुरत लालसान्विता, परिमित व्रीड़ा युक्ता, ईषत् प्रगल्भ वचना, निगूढ़ चातुर्य्य पूर्णा होती है ॥७॥

(८) विलसित तरुणिमा का उदाहरण---नवीन नरपति रूप यौवन का राधा के तनु राज्य में आगमन होने से तनुराज्य उनके सम्मानार्थं आदर पूर्वक उपायन प्रस्तुत करता है। वक्षः उत्तम फल द्वय को उपहार रूप में प्रस्तुत करता है, जो राजा की प्रसन्नता के उपयोगी है। नितम्ब गुणी—अपनी उन्नति को अनुभव कर किङ्किणी वाद्य को प्रोत्साहित करती है। मध्य भाग अपनी क्षीणता का अनुभव कर त्रिबली से बंधने की इच्छा कर रहा है ॥८॥

१० । मध्या धीरा प्रियं वक्ति सागसं वक्रया गिरा ।

यथा—पद्मिन्यहं कुमुदिनी किल सैव सत्यं

सत्यं भवांश्च मधुसूदन एव मत्तः ।

वामेन तामसुखयन्निशि दक्षिणेन

प्रातः प्रबोधयति मामपि लोचनेन ॥

११ । अधीरा सागसं कान्तं निरस्येत्परुषोक्तिभिः ॥

यथा—साचिकन्धरममुं किमिक्षसे

यातु यातु सखि पूतनार्दनः ।

वामरीतिचतुरां हि पामरीं

सेवतां परमदेवतामिव ॥

१२ । धीराधीरा तु वक्रोक्त्या सबाष्पा भाषते प्रियं ।

---

(९) निगूढ़ चातुर्य--यथा हरि, परिरम्भ कला विलास में अभिलाषी होने से, भामा, न, न, न, मधुर स्वर से कहती हैं, आलिङ्गन करने से उसने भी परिरम्भन किया, और परानन्द सिन्धु में डुब गई ॥९॥

(१०) मध्या, धीरा, अपराधी प्रिय को वक्रोक्ति के द्वारा कहती है। मैं तो पद्मिनी हूँ न, वह तो सत्य ही कुमुदिनी है। यह भी सत्य है, आप तो मधु सूदन हो, और उस में मत्त हो, वाम नेत्र से तो उस को रात्रि में सुखी आपने बनाया मुझ को प्रातः काल में दक्षिण नेत्र से प्रबुद्ध कर रहे हो ॥१०॥

(११) अपराधी अधीरा कान्त को परुष वाक्य से निषेध करती है। यथा—सखि ! दीनता को व्यक्त कर साचिकन्धर मुद्रां में स्थित उनको क्यों देख रही हो, पूतनार्दन को जाने दो जाने दो, उस वाम रीति चतुरा पामरी की सेवा वह परम देवता की भांति करे ॥११॥

यथा— नीत्वा हरिं दर्पणमन्दिरं प्रिया

दृष्टान्य---भोगांकमुवाच वाष्पभाक् ।

न संकुच त्वं किल पंकजेक्षण

प्रतीयसेऽत्रैवमुपागतो यतः ॥

१३। गदिता मदन-मदान्धा रतिरणनिपुणा सुपूर्णतारुण्या ।

भावोन्नता प्रगल्भा वैदग्ध्याकान्तं-वल्लभा कविभिः ॥

तत्र मदन-मदान्धा यथा–

निर्गते रति-गृहात्सखीगणे यत्किमप्यकृत माधवो मयि ।

नाविदं सखि समस्तमेव तत् सौख्यसिन्धु-विनिमज्जनादहं ॥

वैदग्ध्याक्रान्तवल्लभा । यथा—

श्लिष्टाश्लिष्यति कान्तेन चुम्बिता तं विचुम्बति ।

लिखिता नखरैस्तन्वी लिखन्त्यपि न हीयते ॥

---

(१२) धीरा धीरा,—किन्तु वक्रोक्ति एवं ईषत् रोदन के सहित प्रिय को कहती है । प्रिया हरि को दर्पण मन्दिर में ले जाकर जब प्रिय के अङ्ग में अन्य भोग चिह्न को देखकर वाष्प पूर्ण नेत्र से कहने लगी, हे पङ्कजेक्षण ! तुम सङ्कोच न करो । कारण प्रतीत होता है कि यहाँ पर ही तुम आगए हो ॥१२॥

(१३) कविगण उसे प्रगल्भा कहते हैं। जो मदनमद से अतिशय आक्रान्ता, रतिरण निपुणा, सम्पूर्ण तरुणी, वैदग्धी के द्वारा कान्त को आक्रमण करने वाली, भावोन्नता ललना हो। मदन मदान्धा का दृष्टान्त—हे सखि ! रतिगृह से सखीगण बाहर निकल जाने पर माधव ने मुझ पर जो कुछ किया, उस को मैं कह नहीं सकती हूँ। कारण,–मैं आनन्द सिन्धु में डूब गई थी।

वैदग्ध्याक्रान्त वल्लभा का उदाहरण—आलिङ्गिता होकर

१४। प्रगल्भा यदि धीरा स्यात्सावहित्थावहेलया।
उदास्ते प्रकृतात् कोपादादरं दर्शयेद्बहिः।
यथा—व्रतिनी वताद्य नाहं दधामि माल्यं वदामि ते वितथं।
इत्थं प्रेयसि विनयाद्गभीरयामास सा रुषं राधा॥

१५। अधीरा ताड़येत्कान्तं संतर्ज्य परुषोक्तिभिः।
यथा-आजन्मयोषिद्द्वेष-लब्ध-दीक्षः प्रयाहि मे प्राङ्गणतो मुकुन्द।
इति ब्रुवाणातिरुषारुणाऽसौ जघान लीलाकमलेन कान्तम्॥
१६। धीराधीरा प्रगल्भाचेदुक्ता स्यादुभयो गुणैः॥
यथा—साक्षाद्वर्त्तिनि जीविते मम कथं शाठ्यं त्वमालम्बसे
धिङ् मा त्वांच धिगावयोः सुजनतां धिक् प्रेम धिक्तद्यशः।

आलिङ्गन करती रहती है, कान्त चुम्बन करने पर कान्त को चुम्बन करती है, नख के द्वारा निजाङ्ग अङ्कित होने से वह कान्त के अङ्ग में नख चिह्न प्रदान करती रहती है। लज्जित नहीं होती है ॥१३॥

(१४) धीरा यदि प्रलम्भा होती है तो भाव गोपन कर अवहेला से प्रसङ्ग से उदासीन रहती है, और कुपित होने पर भी बाहर समादर करती है। दृष्टान्त,—राधा सखि को बोली मैं सच झूट नहीं बोलती हूँ मैं तो आज व्रतिनी हूँ, अतः मालाधारण नहीं कर सकती हूँ। इस प्रकार बर्त्ताव कर राधाने अपना क्रोध को गूढ़ बनाया।

(१५) अधीरा,—परुष उक्ति के द्वारा तर्जना के साथ कान्त को ताड़ना करती है। दृष्टान्त—हे माधव! तुम तो जन्म से ही योषित् विद्वेषी हो, हमारे प्राङ्गण से चले जाओ, इस प्रकार कहकर अतिशय क्रोध से अरुण वर्ण होकर उसने लीला कमल से कान्त को प्रहार किया ॥१५॥

(१६) यदि धीरा धीरा प्रगल्भ होती है तो, जीवित अवस्था में

किं ब्रूमः पुरुषोत्तमोऽसि जगतां भर्तासि मय्येव ते
धूर्तत्वं न हि तेन ते गुणगणः किञ्चित्तरां हीयते ॥

— ✻✻ —

अथासामष्टावस्थाः ।

१। प्रोक्ताभिसारिका विप्रलब्धा वासकसज्जिका ।
विरहोत्कण्ठिता तद्वत्कलहान्तरिता परा ।
प्रोषितप्रेयसी खण्डितार्था स्वाधीनभर्तृका ।

२। क्रमेणासां लक्षणानि ।

याभिसारयते कान्तं स्वयं वाभिसरत्यमुम् ।
रजनी--योग्यवेशासौ बुधैरुक्ताभिसारिका ॥

ही तुम क्यों शठाचरण कर रहे हो ? मुझे धिक् उसे धिक् हम दोनों की सुजनता को धिक्, प्रेम को भी धिक्कार, उस के यशः को भी धिक्कार है । मैं क्या बोलूँ, तुम तो पुरुषोत्तम हो, जगत् के भर्त्ता हो। किन्तु तुम्हारी धूर्त्तता मेरी प्रति ही है ? उस से तुम्हारे गुण गणों का अपचय कुछ भी नहीं होता है ॥१६॥

— ✻✻ —

अथासामष्टावस्थाः ।

(१) अभिसारिका, विप्रलब्धा, वासकसज्जिका, विरहोत्कण्ठिता, कलहान्तरिता परा, प्रोषित प्रेयसी खण्डितार्था, स्वाधीन भर्त्तृका ।१

(२) क्रमशः लक्षण समूह—जो कान्ता, कान्त को अभिसार कराकर स्वयं कान्त के निकट अभिसार करती है। एवं सितकृष्ण रजनी के योग्य वेश धारण करती है, उसे बुधगण अभिसारिका

वल्लभे कृत सङ्केतेऽप्यप्राप्ते सति दैवतः ।
व्यथमानमना या स्याद्विप्रलब्धा तु सा स्मृता ॥

३। वेशभूषण-ताम्बूल-पुष्पाद्यै र्वासमन्दिरे ।
सुसज्जा वीक्षते या तु कान्तं सा वाससज्जिका ॥

४। हेतुना केनचित्कांते सविलम्बे निरागसि ।
समुत्सुका भवेद्यातु विरहोत्कण्ठिताथ सा ॥

५। कान्तं पादान्तगं कोपान्निरस्यानन्तरं तु या ।
सन्तापं तनुते सा स्यात्कलहान्तरिता स्मृता ॥

६। बहुकार्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः प्रियः ।
तदनागति-दुःखार्त्ता सा स्यात्प्रोषितभर्तृका ॥

कहते हैं ।

वल्लभ द्वारा सङ्केत प्राप्त होकर सङ्केत स्थल में कान्त की अनुपस्थिति से दुःखिता को विप्रलब्धा कहते हैं ॥२॥

(३) वेश भूषण,ताम्बूल-पुष्पादि के द्वारा वास गृहको सुसज्जित कर जो कान्तागमन की प्रतीक्षा करती है, उस को वासक सज्जा कहते हैं ॥३॥

(४) किसी कारण वश सङ्केत स्थल में कान्त के आगमन में विलम्ब होने से जो नायिका समुत्सुका होती है, उसे विरहोत्कण्ठिता कहते हैं ॥४॥

(५) पद प्रान्त में निपतित कान्त को कोपवशतः प्रत्याख्यान करने के पश्चात् जो सन्ताप को प्राप्त करती है, उसे कलहान्तरिता करते हैं ॥५॥

(६ अनेक कार्य्य सम्पादन हेतु कान्त दूरदेश गमन करने पर, दुःखार्त्ता नायिका को प्रोषित भर्त्तृका कहते हैं ।६॥

७। उषित्वा मन्दिरेऽन्यस्या स्तद्भोगांकयुतः प्रियः।
प्रात र्यद्गृहमागच्छेत्खण्डिता सा रुषाकुला ॥

८। कान्तो रतिगुणाकृष्टो यत्पार्श्वं न विमुञ्चति।
स्वाधीनभर्त्तृका सा स्यात्तदर्पित-मनस्तनुः ॥

एतासामुदाहरणानि तु स्फुटत्वाद् ग्रन्थविस्तरभयाच्च न कृतानि।

—**—

अथासां नायिकानामलङ्काराः।

१। अलङ्काराः सत्वजाः स्युर्विंशति र्यौवनोद्भवाः।
भावो हावश्च हेला चेत्यंगजाः कीर्त्तिता स्त्रयः ॥

२। शोभा कान्ति स्तथा दीप्ति र्माधुर्य्यं च प्रगल्भता।

---

(७) अपर के मन्दिर में रात्रियापन कर कान्त प्रत्यूष में भोगाङ्क लेकर आने से क्रुद्धा नायिका को खण्डिता कहते हैं ॥७॥

(८) रतिगुणाकृष्ट कान्त जिसके समीप को नहीं छोड़ता है, कान्त में समर्पित मनस्तनु को स्वाधीन भर्त्तृका कहते हैं। (८) इसके उदाहरण समूह का प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ है, कारण—लक्षण ही परिस्फुट है, द्वितीयतः ग्रन्थ अतिविस्तृत हो जायेगा ॥८॥

—**—

अथासां नायिकानामलङ्काराः।

(१) यौवनोद्भव सत्वज अलङ्कार समूह विंशति प्रकार के होते हैं। भाव, हाव, हेला, तीन अङ्गज कहलाते हैं ॥१॥

धैर्य्यमौदार्य्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः ॥
लीला विलासो विच्छित्ति र्विभ्रमः किलकिञ्चितं।
मोट्टायितं कुट्टमितं बिब्बोको ललितं तथा।
विकृतं चेति विद्वद्भिर्दश प्रोक्ताः स्वभावजाः ॥

३। तत्र भावः।

आद्यो विकारो भावः स्यान्निर्विकारस्य चेतसः।

यथा—आधूलिकेलिशतशः सह येन येयं
प्रागल्भ्यचारु सुचिरं कलपायते स्म।
तं श्यामसुन्दरमपूर्वमिवेक्षमाणा
सा गण्डयोः पुलक-मण्डलिकां तनोति ॥

४। हावः—नयनादिविकारेण व्यक्तोऽसौ हावतां व्रजेत्।
असौ भावः यथा—

---

(२) शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य्य, प्रगल्भता, धैर्य्य, औदार्य्य ये सात अयत्नज हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, विकृत नामक द्वादश विध को विद्वान् गण—स्वभावज मानते हैं ॥२॥

(३) भाव—निर्विकार चित्त में प्रथम विक्रिया को भाव कहते हैं। यथा—जो धूलि केलि से आरम्भ कर समस्त समय में प्रगल्भता पूर्ण मनोहर रीति से कलह का निर्वाह करती रहती है, वह श्याम सुन्दर को कभी नहीं देखा है, इस प्रकार दृष्टि से सहसा देखकर निज गण्ड द्वय को पुलकायित कर दिया है ॥३॥

(४) नयनादि विकार से व्यक्त अवस्था को हाव कहते हैं, भाव ही हाव होता है। यथा—जब उसने निज चञ्चल नयनों के कोण से नन्दनन्दन के हृदय को बिद्ध किया, उस समय ही उसमार्ग से हृदय

लोलेन किञ्चिदलसेन च किञ्चिदक्ष्णा
सा यद् विभेद हृदयं व्रजराजसूनोः ।
तस्या स्तदैव हृदयेन समं तदन्त-
स्तेनाध्वनैव नु विवेश नवोऽनुरागः ।।

५ । हेला–अभिलक्ष्ये विकारे तु हावो हेला स्मृता बुधैः ।।
यथा–एकमप्यतिरहोऽपि तमेकाप्युत्सुकाऽपि सखि नाहमपश्यम् ।
कोमलं कुवलयादपि हन्यात् साहसेन कतमेन कटाक्षः।

६ । शोभा--सैव शोभा भवेद्रूपलावण्याद्विभि रुर्जिता ।।
सैव हेलैव । यथा—
धृत्वा रक्तांगुलि-किसलयै र्नीपशाखां विशाखा
निष्क्रामन्ती व्रततिभवनात् प्रातरुद्घूर्णिताक्षी ।
वेणीमंसोपरि विलुठती मर्धमुक्तां वहन्ती
लग्ना स्वान्ते मम नहि वहिः सेयमद्याप्ययासीत् ।।

में नवानुराग प्रविष्ट हुआ ।।४।।

(५) हाव – अभीप्सित विषय को लक्ष्यकर विकार प्राप्त होने से हेला रूप धारण करता है । यथा—हे सखि ! एकान्त में उत्सुक को मैंने नहि देखा है, किन्तु उसने कुवलय से भी अतिशय कोमल कटाक्ष के द्वारा मुझ को विद्ध किया ।।५।।

(६) वह शोभा होगी जब वह रूप लावण्य से उर्जिता होती है। यथा घूर्णित नेत्रा विशाखा प्रत्यूष में रक्ताङ्गुलि किशलय से नीप शाखा को पकड़ कर कुञ्ज भवन से निकल रही है, उस की वेणी स्कन्ध के उपर अधखुली लटक रही थी, उसको मैंने देखा, वह मेरे

७ । कान्तिः । प्रदीप्ता मदनोन्माथा सैव कान्तिरुदीर्य्यते ।।
सैव शोभैव । यथा—को वेद रे सखि लगिष्यति दृष्ट एव
को वेद जीवमपनेष्यति लग्न एव ।
प्रेङ्खोलिभिः परिमलैः सहसांधयाऽसौ
श्यामो रसः परिचितो वेद कोऽपराधः ।।

८ । दीप्तिः । वयोभोगादि-विस्तीर्णा सैव दीप्तिः स्मृता बुधः ।
सैव कान्तिरेव । यथा--रूपश्रियं मूर्त्तिमतीमिव प्रियां
मनो हरन्तीं स्मितवीक्षणामृतैः ।
तां रत्नपर्य्यंकगतां नतभ्रुवं
पश्यन्नमन्दां मुदमाप माधवः ।।

९ । माधुर्य्यं । सर्वावस्थासु चारुत्वं माधुर्य्यं परिकीर्त्तितं ।
यथा--जलावगाहे च्युत-मेखलायाः शैवाल-वल्लयेव बभौ नितम्बः ।।

हृदय में घुस कर बैठ गई, अभी तक नहीं निकली है ।।६।।

(७) शोभा,-प्रदीप्त मदनोन्मत्त होने से कान्ति कहलाती है। सैव-शोभा । यथा सखि ! कौन जानता रे !– देखने से ही वह लग जायेगा ?

और कौन जानता है कि-लगने से ही जीवन चला जायेगा ? चञ्चल परिमल से ही वह श्याम रस का परिचय मिल गया है, कहो, इस में मेरा अपराध क्या है ? ।।७।।

(८) वयः भोगादि विस्तीर्णाकान्ति दीप्ति नामसे अभिहिता होती है । यथा–माधव,-मूर्त्तिमती सौन्दर्य्य लक्ष्मी स्मित वीक्षणामृत द्वारा मनोहरण कारिणी, नतभ्रु प्रिया को पर्य्यङ्क गत देखकर अतिशय आनन्दित हुए थे ।।८।।

अकैतवं रूपमहेतुहार्दं सर्वावस्थासु सदैकरूपम् ॥

१० । प्रगल्भता । निःशंकत्वं प्रयोगेषु बुधाः प्रागल्भ्यमुज्जगुः ।
यथा--श्लिष्टा श्लिष्यति कान्तेनेत्यादि ॥ (२१ पृष्ठायां)

११ । धैर्य्यं । धैर्य्यं स्यादविकारित्वं सुखदुःखे महत्यपि ॥
यथा--आस्तां तदीय-नवयौवन-पूर्णवापी
कापीयमत्र न करोमि निमज्जनेच्छां ।
इच्छामि तं कमपि कालमलज्जमुच्चै
राक्रंदितुं सुमुखि हा प्रिय हा प्रियेति ॥

१२ । औदार्य्यं । सर्वदा विनयो विज्ञै रौदार्य्यं समुदाहृतं ।
यथा—गुणमणिखनिरप्यसौ मुरारि

(९) सर्वावस्था में चारुता को माधुर्य्य कहते हैं । यथा–जलावगाहन में मेखलाच्युत होने से नितम्ब शैवाल के समान शोभित हुआ, अकैतव रूप एवं अहेतुक ममता समस्त अवस्था में सर्वदा एकरूप मधुर है ॥९॥

(१०) प्रयोग में निःशङ्क होना ही प्रागल्भ है । उदाहरण— श्लिष्टा श्लिष्यति कान्तेनेत्यादि ॥१०॥

(११) महत् दुःख एवं सुख उपस्थित होने पर भी अविकारी होना ही धैर्य्य है, उदाहरण—उसकी नव यौवन रूप अभिनव कोई वापी हो, तथापि मैं उस में अवगाहन करने की इच्छा नहीं करता हूँ, मैं केवल कुछ काल की इच्छा करती हूँ । जिस में मैं केवल हे सुमुखि ! हा प्रिय ! हा प्रिय ! निर्लज्ज भाव से यह कह कर रोदन करूँ ॥११॥

(१२) विज्ञगण सर्वदा विनय को औदार्य्य कहते हैं । यथा—

मयि कुरुते करुणां यदद्य कान्तः ।
अविरलकलहांचिबुद्धिवृत्तौ
तदिह सखीनिकरस्य सुप्रसादः ॥

१३ । लीला--कान्तानुकरणं लीला रम्य-वेशक्रियादिभिः ॥
यथा—मृगमदकृत-चर्चा पीतकौषेयवासा
रुचिर-शिखिशिखण्डा बद्ध-धम्मिल्लपाशा ।
अनृजु निहितमंसे वंशमुत्क्वाणयन्ती
कृतमधुरिपुवेशा मालिनी पातु राधा ॥

१४ । विलासः । विशेषो दयितालोके मुखनेत्रादि-कर्मणः ।
यानस्थानासनादेश्च विलासः कथितः बुधैः ॥
यथा—कान्तमायान्तमालोक्य मन्दिरे मदिरेक्षणा ।
सस्मिता सहसोत्तस्थौ गण्डसंचल-कुण्डला ॥

मुरारि,---गुण मणि की खनि है, आज मुझपर करुणा करेंगे । अविरल कलहयुक्त बुद्धि वृत्ति होने पर भी सखि निकर के प्रति परम प्रसन्न होते हैं ॥१२॥

(१३) कान्त का अनुकरण रम्य वेश प्रभृति के द्वारा करने से लीला होती है । मधुरिपुवेश धारण कारिणी राधा तुम सब की रक्षा करें, उसने मृगमद द्वारा अङ्गलेपन किया है, पीतवसन धारण, मनोहर शिखिपिच्छ के शिरोभूषण से शोभित, त्रिभङ्गिम रूपसे स्थित होकर वह वंशी वादन कर रही है ॥१३॥

(१४) दयित के अवलोकन से मुख, नेत्र, कर्म, यान स्थान आसनादि की विशेष अवस्था को विलास कहते हैं । मदिरेक्षणा-- मन्दिर में कान्त को आते देखकर हँस हँस कर उठकर खड़ी हो गई, उस समय गण्ड संलग्न कुण्डलद्वय आन्दोलित होने लगे ॥१४॥

१५। विच्छित्तिः। स्वल्पापि वेशरचना विच्छित्तिद्युति-पोषकृत्॥

यथा—मुक्तावलंविनासा मणिकङ्कण-चारुपाणियुगलासौ।
शोभां दधार राधा रसिकमणे र्मोहिनीमचलाम्॥

१६। विभ्रमः। विभ्रमः प्रेयसि प्राप्ते भूषास्थान-विपर्य्ययः।

यथा—अधात्काञ्चीं कण्ठे जघन-भुवि हारं चरणयोः
कृशांगी केयूरे भुजलतिकयो र्नूपुरयुगं
किमङ्गैरन्योन्यं मधुमथन-संगोत्सव-विधौ
प्रसादो व्यातेने प्रणय-पिशुनः स्वस्वविभवैः॥

१७। किलकिञ्चितं। गर्वस्मिताभिलाषादे र्भीकोपादेश्च मिश्रणं।
प्रमोदात् प्रेयसः संगे कथ्यते किलकिञ्चितं॥

---

(१५) स्वल्प वेश रचना भी यदि कान्ति पोषक हो तो उसे विच्छित्ति कहते हैं।—नासिकाग्र भाग में मुक्ता, मनोहर पाणि युगल में मणिकङ्कण के द्वारा भूषित होकर ही राधा,-रसिक मणि कृष्ण की अचल मोहिनी बन गई॥१५॥

(१६) प्रिय का आगमन से भूषास्थान का विपर्य्यय को विभ्रम, कहते हैं। मधुमथन के सङ्गोत्सव के निमित्त गोपी गण--निज निज विभव से शोभित हो उठी थीं, कण्ठ में काञ्ची, जघन में हार, चरण में केयूर, भुज युगल में नूपुर धारण कर प्रिय मिलन हेतु चल पड़ी॥१६॥

(१७) गर्व, स्मित, अभिलाष, भय, क्रोध, के मिलन से जो भाव उत्पन्न होता है, उसे किल किञ्चित कहते हैं, प्रिय सङ्गमामोद से यह होता है। यथा--माधव ने, राधा के बक्षोज में हस्तार्पण करने पर--

यथा--न्यस्ते च यस्याः पुरतः कराब्जे वक्षोजयुग्मोपरि माधवेन।
सा गर्वकोपस्मिताभीतिलोलं तदाह यत्तस्य मनो जहार॥

१८। मोट्टायितं। प्रव्यक्तिरभिलाषस्य कान्तवार्त्तासु चेद्भवेत्।
रोमाञ्चस्मित-जृम्भाद्यैस्तदा मोट्टायितं स्मृतं॥

यथा--राधा बाधामूलं न सा सखीभि र्जगाद पृष्टापि।
उदिते किल हरिचरिते मुहुर्जजृम्भे सरोमाञ्चा॥

१९। कुट्टमितं। दयिते कुचसंस्पर्श मुखचुम्बादि कुर्व्वति।
हृद्यानन्दो वहिः कोपः स्मृतं कुट्टमितं बुधः॥

यथा—स्तनकनकघटीं पटीमुदस्य
स्पृशति हरौ बहुभङ्गिभङ्गुर-भ्रूः।
इयमसरसवाणि पाणि-रोधात्
कृतकरुषा परुषा कषायितासीत्॥

राधाने गर्व कोप, स्मित, भीति, लोलता के द्वारा श्रीकृष्ण के मनोहरण किया॥१७॥

(१८) कान्त की वार्त्ता श्रवण के निमित्त व्यक्त अभिलाष द्वारा रोमाञ्च, स्मित, जृम्भा प्रभृति का उद्गम होने से मोट्टायित कहते हैं। यथा—सखिगण के द्वारा पूछे जाने पर राधाने अन्तर व्यथा को प्रकट नहीं किया, किन्तु हरिकथा प्रसङ्ग आरम्भ होने से ही रोमाञ्चित होकर जिम्भाई लेने लगी॥१८॥

(१९) श्रीकृष्ण,—कुचसंस्पर्श मुखचुम्बनादि करने पर हृदय में बाहर कोप, प्रकट होने से कुट्टमित भाव, बुधगण-उसे कुट्टमित भाव कहते हैं। यथा—हरि,—स्तनकनकघट को स्पर्श करने पर-कान्ता विविध भङ्गी से हस्त चालन पूर्णक-हस्तरोध किया, और परुष वचन युक्त क्रोधसे लाल हो उठी॥१९॥

२० । विव्वोकः

विव्वोकः कथ्यते गर्वादिष्टे वस्तुन्यनादरः ।

यथा— प्रियोक्तिलक्षेण विपक्ष-संनिधौ
स्वीकारितां पश्य शिखण्डमौलिना ।
श्यामातिवामा हृदयंगमामपि
स्रजं दराघ्राय निरास हेलया ॥

२१ । ललितं

सुकुमारोऽङ्गविन्यासो ललितं समुदीर्य्यते ।

यथा--प्रसूनतल्पोदरसङ्गदूनं नूनं वपुर्मे सखि नैति निद्राम् ।
इति स्मरायास विशीर्णचिन्ता सखीधियाऽसौ तमालिलिंग ॥

२२ । विकृतं

त्रपादिभिरनुक्तस्य वक्तुमिष्टस्य चेद्भवेत् ।
प्रकाश श्चेष्टया प्राज्ञै स्तदा विकृतमुच्यते ॥

---

(२०) गर्वसे इष्ट वस्तु में अनादर को विव्वोक कहते हैं । यथा–विपक्ष के समीप में प्रिया शब्द उच्चारण से श्रीकृष्ण के प्रति श्यामा क्रुद्धा हो गई, और श्रीकृष्ण स्वयं माला प्रदान करने पर भी मनोहर माला का ईषत् घ्राण लेकर उसने अवहेला से निरास किया ॥२०॥

(२१) सुकुमार—अङ्गविन्यास को ललित कहते हैं । यथा--हे सखि ! कुसुम शय्या में विन्यस्त कुसुम से मेरा शरीर अत्यन्त विलष्ट हो गया है, इस से निद्रा भी नहीं होती है, इस प्रकार कन्दर्प क्लेश से क्लिष्ट होकर सखी बुद्धि से राधाने कृष्ण को आलिङ्गन कर लिया ॥२॥

(२२) लज्जादि के द्वारा प्रिय के अभीप्सित विषय को यदि

यथा—निशमय्य मुकुन्द मन्मुखाद् भवदभ्यर्थितमत्र सुन्दरी ।
न गिराभिननन्द किन्तु सा पुलकेनैव कपोलशोभिना ॥

इत्यलङ्काराः ।

— ※—

१ अथासां सहायाः ।

नायिकानां सहायाः स्युः सख्यस्तासु तु काश्चन ।
संमताः प्रियसख्यश्च प्रियनर्मादिका स्तथा ॥

२ निर्हेतुकहिताचाराः सदृश्यः सुखदुःखयोः ।
अन्योन्य--हृदयज्ञाश्च सख्यः संपरिकीर्त्तिताः ।

३ प्रियसख्यस्तु ताः प्रोक्ता या युक्ता रसनर्म्मणि ।

प्रकट कर कहा नहीं जाता है, चेष्टा से ही व्यक्त किया जाता है, तो प्राज्ञगण उसे विकृत कहते हैं । यथा—हे मुकुन्द ! तुम्हारे विनय को हमारे मुख से सुन्दरी ने सुनकर वाणी से अभिनन्दन नहीं किया, किन्तु पुलकायित कपोल युगल से ही अभिनन्दन किया ॥२२॥

इत्यलङ्काराः ।

— ※—

अथासां सहायाः ।

(१) नायिका के सहायक को सखी कहते हैं, वे तीन प्रकार हैं, सखी, प्रियसखी, प्रियनर्मसखी ।

(२) हेतु विहीन हितपरायणा, सुख दुःखमें नायिका के हृदयानुरूप हृदय युक्ता, परस्पर की हृदयज्ञा को सखी कहते हैं ।

४ प्रियनर्मादिका स्तास्तु याः स्वच्छ यावदास्थिताः ।

५ एता प्रायेण दूत्यः स्यु स्तास्त्रिधाः कथिता बुधैः ।

निसृष्टार्था मितार्था च तथा सन्देशहारिका ॥

६ द्वयोरिंगितमादाय स्वयमुत्तरदायिका ।

सुश्लिष्टं कुरुते कार्य्यं निसृष्टार्था निगद्यते ।

७ मितार्था प्रमितं वक्ति कार्य्यान्तं या निगच्छति ।

यथोक्तं या वदेद् वृत्तं सा तु सन्देशहारिका ॥

इति सहायाः ।

—❋❋—

१ अथ स्वयंदूती ।

अत्यौत्सुक्यानुरागाभ्यां त्रपा-भ्रंशात् स्वयं यदि ।

---

(३) प्रियसखी – रस नर्म विलास में संश्लिष्ट होती है ।

(४) प्रियनर्म सखी – नायिका की छाया के समान आश्रिता होती है ।

(५) दूती भी तीन प्रकार हैं, निसृतार्था मितार्था, सन्देश हारिका ।

(६) नायक नायिका के ईङ्गित को जानकर स्वयं उत्तर प्रदान करती हुई सुष्ठु रूप से कार्य सम्पादन करती है निसृष्टार्था दूती ।

(७) मितार्था—परिमित कहती है, एवं कार्य सम्पन्न करती है, कथनानुरूप कहने वाली को सन्देश हारिका कहते हैं ॥

इति सहायाः ।

—❋—

अथ स्वयंदूती ।

(१) अति उत्सुकता एवं अनुराग से लज्जा शून्य होकर यदि

व्यनक्ति स्वाशयं कान्ते स्वयंदूती तदा भवेत् ॥

यथा--पुष्पमार्गण-मनोरथोद्धता कृष्ण मञ्जुलतया तवानया।
रक्षितास्मि सविकासया पुरो विस्फुरत्सुमनसं कुरुष्व माम्।

इत्यालम्बनविभावाः ॥

१ अथोद्दीपनाः ॥

प्रासादा निष्कुटा वाद्यश्चन्द्रिका नवमल्लिका ।
ऋतवो मन्दवाताश्च बुधै रुद्दीपनाः स्मृताः ॥

२ अथानुभावाः ।

कटाक्षस्मित—दोर्मूल-व्यक्ति भूषणशिंजितं ।
कर्णकण्डूयनं व्याजसंभ्रमाद्यङ्ग-संवृतिः ।
सख्याश्लेषादिकं च स्यादनुभावपदेरितम् ॥

कान्ताके आशय को कान्त को कहती है,तो उसे स्वयं दूती कहते हैं। यथा—हे कृष्ण ! तुम्हारे सामने प्रसन्न मनोहरण कारि के द्वारा पुष्प लाभेच्छु को उपस्थित किया गया है, अतः मुझ को प्रसन्न करो।

इत्य लम्बन विभावाः ॥

अथोद्दीपनाः ।

(१) बुधगण,--प्रासाद, निष्कुट, वाद्य, चन्द्रिका, नवमल्लिका, ऋतु--मन्द समीरण को उद्दीपन कहते हैं।

अथानुभावाः ।

(२) कटाक्ष, स्मित, दोर्मूल प्रकटन, भूषण ध्वनि, कर्णकण्डूयन, व्याज, सम्भ्रम अङ्गावरण, सखी को आलिङ्गन प्रभृति को अनुभाव कहते हैं।

३ अथ सात्त्विकाः ।

अष्टौ स्तम्भादयः सर्वे सात्त्विकाः संमता इह ।
निर्वेदमृत्यपस्मारान्वर्जयित्वा पुरोदिताः
यथार्हं त्रिंशदेव स्युः शृङ्गारे व्यभिचारिणः ।
निजोचितै विभावाद्यैरेवं व्यक्तिमुपागता ।
स्थायी सचेतसां चित्ते रतिः शृङ्गारतां व्रजेत् ।

उदा०—त्वं मुग्धाक्षीत्यादि ।

इति शृङ्गारनिरूपणं ।

१ अथ हास्यं ।

विकृताकृतिवाग्वेषैर्हासश्चित्तस्य विस्तृतिः कथितः ।
उचितैः स विभावाद्यैर्व्यक्तिं नीतः स्मृतो हास्यः ॥

अथ सात्त्विकाः ॥

(१) स्तम्भादि आठ प्रकार को सात्त्विक कहते हैं । निर्वेद, मृति, अपस्मार को वर्जन कर, यथा योग्य रूप से शृङ्गार में त्रिंशत् को व्यभिचारी कहते हैं ।

निज रसोचित विभावादि के द्वारा स्थायीभाव प्रकटित होने से सहृदय के चित्त में शृङ्गार रस का अनुभव होता है । उदा०—त्वं मुग्धाक्षीत्यादि ।

इति शृङ्गारनिरूपणं ।

१ अथ हास्यं ॥

विकृत--आकृति, वाणी, वेष,के द्वारा चित्त विस्तृति को हास कहते हैं, वह निजोचित विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर हास्य रस

यथा-रामोयमस्माकमतोवमोदनः कपि-प्रियाणां गुणरूपचेष्टितैः।
हृद्यै रतुल्यातिशयैः सहानुजः किंत्वस्य नास्मान्सुखयत्यपुच्छता।

२ करुणः ॥

कृष्णं कालियबद्धं तदा विचेष्टं विलोक्य ते गोपाः।
अतिदुःखिता निपेतु विभिन्नमूला इवांघ्रिपाः सर्वे ॥
प्राप्त्याशा विद्यते यत्र करुण स्तत्र संमतः।
इह मर्गादिवाक्येभ्यः सततं विलसत्यसौ ॥

३ रौद्रः ॥

प्रतिकूलतादि-जन्मा चित्तज्वालो भवेत् क्रोधः।
व्यक्तः स विभावाद्यैर्योग्यैरौद्रो रस कथितः ॥

यथा—व्रजाधिपे इत्यादि ॥ (१८ पृष्ठायाम्)

होता है। उदाहरण—
यह तो राम ही है,जो हमारे अतीव आनन्दद है,कपिप्रियों के मनोहर अतिशय गुणरूप चेष्टा के द्वारा अनुज के सहितसका विना पुच्छसे हमे आनन्दित नहीं करेगा ॥

२ करुणः ॥

गोपगण—कृष्ण को कालिय बद्धावस्था में निश्चेष्ट देखकर अति दुःखित हुए थे, और मूल से पृथक् हो जाने से वृक्ष के समान सब गिर पड़े थे। प्राप्त्याशा जहाँ है, वहाँ करुण होता है, वह तो मर्गादि वाक्य के द्वारा सतत विलसित है।

३ रौद्रः ॥

प्रतिकूलतादि के द्वारा उत्पन्न चित्त की ज्वाला को क्रोध कहते

४ वीरः ॥

श्लाघाफले युद्धादौ चित्तासङ्गः स्थिरस्त्वरितः ।
उत्साहः स तु योग्यैर्व्यक्तो वीरो विभावाद्यैः ॥

यथा–तुरग-दनुसुताङ्गग्राव-भेदे दधानः
कुलिशघटितटं कोदण्डविस्फूर्जितानि ।
तदुरुविकटदंष्ट्रोन्मृष्टकेयूर मुहः
प्रथयतु कुशलं वः केशवो वामबाहुः ॥
दानवीरो धर्मवीर श्चोह्यः ॥

५ भयानकः ॥

घोरेक्षणादिभिश्चित्त-चापल्यं भयमुच्यते ।
उचितै स्तैर्विभावाद्यैर्व्यक्तमुक्तो भयानकः ॥

हैं। विभावादि के द्वारा पुष्ट होने से वह रौद्र रस होता है। उदाहरण – व्रजाधिपे इत्यादौ।

४ वीरः ॥

आत्म श्लाघा के फल स्वरूप युद्धादि में आसक्ति रूप उत्साह स्थायी भाव, निजोचित विभावादि द्वारा पुष्ट होने से वीररस होता है। दृष्टान्त—केशव के वाम बाहु तुम सब को मङ्गल प्रदान करे। वह केशीदानवरूप पर्वत भेदन कारी, वज्र के समान केशीदैत्य को विचूर्णन कारी है। दानवीर धर्मवीर का उदाहरण प्रस्तुत करें।

५ भयानकः

भयावह वस्तु दर्शनादि से जो चित्त चञ्चल होता है, उसे भय कहते हैं, निजोचित विभावादि के द्वारा व्यक्त होने से भयानक रस

यथा–आविष्कृतं विश्ववपु र्बकारिणा
निरीक्ष्य दंष्ट्रा-विकटं कपिध्वजः ।
तुषार-शुष्यद्वरनीरजानन
स्त्रस्यन्मना नैव शशाक भाषितुम् ॥

७ बीभत्सः ॥

अहृद्यवस्त्वनुभवाद् जुगुप्सा हृद्विमुहनं ।
उचितैः सा विभावाद्यै र्व्यक्ता बीभत्स उच्यते ।

यथा-घनरुधिरमये त्वचा पिनद्धे पिशित-विमिश्रित
विस्रगन्धभाजि ।
कथमिह रमतां बुधः शरीरे भगवति हन्त रते र्लवेप्युदिते ॥
भयानकेऽथ बीभत्से भगवद्रतिमिश्रणात् ।
भवेदानन्दरूपत्वमिति प्राहु र्मनीषिणः ॥

होता है। उदाहरण— बकारि श्रीकृष्ण विश्व वपु को प्रकट करने से अर्जुन उनके विकट दंष्ट्रा को देखकर भय सन्त्रस्त होकर कुछ भी कह न सके ॥५॥

६ बीभत्सः

अरुचिकर वस्तु के अनुभव से हृदय सङ्कुचित होना जुगुप्सा है। निजोचित विभावादि के द्वारा पुष्ट होने से वह बीभत्स कहलाता है। है। उदाहरण – घनरुधिरमय त्वक् के द्वारा आबद्ध पूति गन्ध युक्त शरीर में विवेकी जन क्यों रत होगा ? यदि भगवान् में लव मात्र प्रीति का उदय हो तो।

भयानक एवं बीभत्स के साथ भगवद्रति का संमिश्रण होने से मनीषिगण उसे आनन्द स्वरूप मानते हैं ॥६॥

७ अद्भुतः ॥

अलौकिकेक्षणाद्युत्था विस्मय श्चित्तविस्तृतिः ।
उचितैः स विभावाद्यैर्व्यक्तिं नीतोऽद्भुतः स्मृतः ॥

यथा—वदने निजबालस्य फुल्लपङ्कजसंनिभे ।
विश्वं सव्रजमालोक्य यशोदा चित्रिता बभौ ॥

८ शमस्थायी भवेच्छांतो निर्वेदस्थायिकः क्वचित् ॥

क्रमेणोदा० ।—

गोविन्दं सुखसिन्धुं चैतन्यघनं हृदि ध्यायन्
अम्भोधिरिवाक्षुभितो मार्कण्डेयो मुनि र्जयति ॥

स्तावका स्तव चतुर्मुखादयो भावकाश्च भगवन्भवादयः ।
सेवकाः शतमखादयः सुरा वासुदेव यदि के तदा वयं ॥

---

७ अद्भुतः

अलौकिक वस्तु दर्शन से उत्थित चित्त विस्तृत को विस्मय कहते हैं। निजोचित विभावादि के द्वारा प्रकाशित होने से वह अद्भुत रस होता है। यथा—फुल्ल पङ्कज के समान कृष्ण के मुख विवर में व्रज के सहित विश्व को देखकर यशोदा चित्र की भांति हो गई थी।

(८) कहीं पर शम स्थायी होकर शान्त रति होती है, और कहीं पर निर्वेद स्थायी होकर शान्त रति होती है। क्रमिक उदाहरण—चैतन्य घन सुखसिन्धु गोविन्द का ध्यान हृदय में करके मार्कण्डेय मुनि निस्तरङ्ग समुद्र के समान विराजित थे।

हे वासुदेव! चतुर्मुख प्रभृति तुम्हे स्तव करते हैं। महादेव प्रभृति भावना करते हैं। इन्द्रादि देवगण तुम्हारे सेवक हैं, इस के सामने हम सब की दशा क्या है ?

१ अथ रसानां विरोधः ।

आद्यः करुणबीभत्स-रौद्रवीर-भयानकैः ।
भयानकेन करुणेन च हास्यो विरोधभाक् ।
हास्योज्वलाभ्यां करुणो भयांकेन च रौद्रकः ।
वीरः शान्तभयांकाभ्यां बीभत्सः शुचिना सह ।
शान्तस्तु वीरशृङ्गाररौद्रहास्य-भयानकैः ।
भयांको हास्यशान्ताभ्यां वीररौद्रोज्ज्वलै स्तथा ॥

२ अथैषां मैत्री ।

वीरस्याद्भुतरौद्राभ्यां सह मैत्री प्रकाशते ।
भयानकस्य बीभत्सेनाद्भुतेन शुचे स्तथा ।

---

१ अथ रसानां विरोधः ।

करुण बीभत्स रौद्र वीर भयानक के साथ शृङ्गार का विरोध है। भयानक एवं करुण के साथ हास्य का विरोध है। हास्य एवं उज्ज्वल के साथ करुण की विरोधिता है। भयानक के सहित रौद्र की विरोधिता है। शान्त भयानक के साथ वीर की विरोधिता है, तथा शृङ्गार के साथ बीभत्स की विरोधिता है। वीर शृङ्गार रौद्र हास्य भयानक के साथ शान्त का, हास्य शान्त के साथ वीर रौद्र उज्ज्वल के साथ भयानक की विरोधिता है ॥१॥

२ अथैषां मैत्री ॥

अद्भुत रौद्र के सहित वीर की मित्रता है, बीभत्स अद्भुत शृङ्गार के साथ भयानक की मित्रता है।

शृङ्गारहास्ययो स्तद्वीर-शृङ्गारयोश्च सा ॥
इति नवरसा निरूपिताः ॥

१ अथ भावः।

देवता–नृपपुत्रादिविषया या रति र्भवेत् ।
स भावो व्यभिचारी चेत् प्राधान्यं प्रतिपद्यते ॥

उदा०— सत्यानन्ताचिन्त्यशक्त्येकपक्षे
सर्वाध्यक्षे भक्तरक्षातिदक्षे ।
श्रीगोविन्दे विश्वसर्गादि-कन्दे
पूर्णानन्दे नित्यमास्तां मति र्नः ॥

विष्णवन्यदेवता–विषया रतिर्भाव एव, विष्णुविषया तु भावश्च रसश्च । देवतात्वादिना कान्तत्वेन च भावकेषु तस्योदयात् । यदाह भगवान्कपिलः ।

उस प्रकार शृङ्गार हास्य का एवं वीर शृङ्गार का मैत्री है ।
इति नवरसा निरूपिताः ॥

१ अथ भावः॥

देवता नृप पुत्रादि विषयक जो रति होती है, वह भाव कहलाते हैं, प्रधान रूप से यदि व्यभिचारी को प्राप्त हो तो, उदाहरण--सत्य अनन्त अचिन्त्य भक्त पक्षपाती सर्वाध्यक्ष, भक्त रक्षण शील, विश्व-सृजन् के मूल कारण एवं पूणानन्द श्रीगोविन्द में हमारी नित्य मति हो ।

विष्णु भिन्न अन्य देवता विषया रति को भाव कहते हैं। विष्णु विषयक होने से भाव, रस भी होता है । देवता रूप में कान्त रूप में

येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टमिति ।
प्रधानीभूतो व्यभिचारी यथा—

चेतो मदीयं चिकुरे निपत्य
मुखाम्बुजामोद-विलासिमुक्ते ।
तस्याः समारूढ़-कुचाद्रिसानु
श्रमेण नाभिसरसि न्यमांक्षीत् ॥

अत्र प्राधान्येन स्मृतेरवभासाद्भावत्वं । यद्यपि "न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः । परस्परकृता सिद्धिरनयो रसभावयो" रित्युक्तेः परम विश्रान्तिस्थानेन रसेन सहितो व्यभिचारी, तथापि करग्रहप्रवृत्तराजभृत्यवत्प्राधान्यमसौ भजते ।

भावना कारि में उसका उदय होता है । कपिल देवने कहा भी है, निज भक्त के मैं प्रिय आत्मा सुत, सखा, गुरु, सुहृद् देव इष्ट हूँ ।

प्रधानी भूत व्यभिचारी का उदाहरण—

मेरा चित्त मुखाम्भोजामोद विलासमुक्तचिकुर में गिरकर कुचाद्रिसानु में आरूढ़ हो गया, क्लान्ति अपनोदन हेतु–नाभि सरोवर में निमज्जित हो गया, यहाँ प्राधान्य से स्मृति का अवभासन होने से भाव हुआ । यद्यपि—रस भाव हीन नहीं होता है, एवं भाव भी रस वर्जित नहीं होता है, उभय की पारस्परिक सिद्धि है, परम विश्रान्ति स्थान रूप रस के सहित वह व्यभिचारी होता है, तथापि कर ग्रहणमें प्रवृत्त राज भृत्य की भांति उसका भी प्राधान्य होता है।

१ अथाभासाः ।

तत्र रसे स्थायिविभावानुभाव वैरूप्यमेवानौचित्यम् । अनेकनेतृ-निष्ठानुभयनिष्ठा-गम्यागता चेद्रति स्तदा स्थायितायां तस्य वैरूप्यं । वैदग्ध्योज्ज्वलयतौल्याभावो विभावो समयातिक्रमग्राम्यधाष्ट्र्यानि त्वनुभावे चेति शृङ्गारेऽनौचित्यं ।

हास्ये गुर्वाद्यालम्बन श्चेत् हासः । वीरे ब्रह्मबधविषयश्चेत् उत्साहः । रौद्रे गुर्वादिगतश्चेत्क्रोधः । भयानके वीरे पुंसि चेद् भीतिः । एव मन्यदुन्नेयं । भावे तु कृत्रिमस्तुति--त्रपादिकमनौचित्यं तच्च वारिवारयोषिद्गतं बोध्यं । लक्ष्याण्यूह्यानि ।

---

१ रसाभासाः ॥

रस एवं भाव अनुचित में प्रवृत्त होने से आभास होता है। रसमें स्थायि विभावानुभाव का वैरूप्य होना ही अनौचित्य है, अनेक नेतृ निष्ठा, उभय निष्ठ न होना, अगम्य गता यदि रति हो तो स्थायिभाव में वैरूप्य होगा। वैदग्धी उज्ज्वल की समता का अभाव युक्त विभाव, समय का अतिक्रम, ग्राम्य, धाष्टर्य प्रभृति अनुभाव में शृङ्गार में अनौचित्य होता है।

हास्य में गुर्वाद्यालम्बन होने से हास,--वीर में ब्रह्मबध विषय होने से उत्साह, रौद्र में गुर्वादि गत यदि क्रोध हो, भयानक, वीर पुरुष में यदि भीति हो, तब आभास होगा, इस उदाहरण का उद्‌भावन करना उचित है। भावमें कृत्रिमस्तुति लज्जादि अनौचित्य है। वह वार वनितागत है। उदाहरण का उट्टङ्कन करें।

१ अथ भावशान्त्यादयः ।

भावस्य शान्तिरुदयः सन्धिः शवलता तथा ॥

क्रमेणोदा०—कान्तं पादान्तगं वीक्ष्य मानिनी विनतानना । अत्रामर्ष-शान्तिः ।

२ अभ्रं नभसि पश्यन्त्या स्तन्व्याः पुलकितं वपुः ॥
अत्र हर्षोदयः ।

३ दृष्ट्वा पतिं सपत्नीं च द्विधेवाभून्मृगेक्षणा ॥
अत्र हर्षोद्वेगयोः सन्धिः ।

४ रुष्टः पति मनो मत्तं खलो दोषलवोक्तिकः ।
मित्रं वेशभरैश्चित्रं कुर्महे किं भणाधुना ॥
अत्र भयचापल्य-शङ्कौत्सुक्यानां शावल्यं ।

---

१ अथ भावशान्त्यादयः ॥

(१)भाव की शान्ति,उदय,सन्धि,शवलता है, क्रमिक उदाहरण--पदतलगत कान्त को देखकर मानिनी विनताननां हुई। यहाँ अमर्ष की शान्ति हुई ॥

(२) आकाश में मेघ को देखकर ललना पुलकिततनु हो गई। यहाँ हर्षका उदय है।

(३) पति एवं सपत्नी को देखकर द्विधाभूत हो गई चञ्चल लोचना। यहाँ हर्षोद्वेग की सन्धि।

(४) पतिरुष्ट मनभी मत्त, खल लोक दोष दर्शनरत, मित्र भी कृत्रिम है, कहो--इस समय क्या करें? यहाँ भय चापल्य, शङ्का औत्सुक्य का मिलन है।

५ एवं काव्यात्मा रसादि व्यंग्यो दर्शितः, तत्प्राणो वस्त्वादि व्यंग्यस्तूत्तमकाव्यभेदवर्णने वक्ष्यते ॥

इति काव्यकौस्तुभे रस-निर्णय-स्तृतीया प्रभा ॥

—※※—

चतुर्थी प्रभा ।

१ अथ रस-धर्मान् गुणान्निरूपयति ॥

रसस्योत्कर्षका धर्मा वर्णादिव्यञ्जिता गुणाः ।
अङ्गिनो रसस्योत्कर्षका धर्मा गुणाः यथात्माना शौर्यादयः ।

(५) एवं काव्यात्मा रसादि व्यङ्ग है, इसका प्रदर्शन हुआ, उस का प्राण वस्तु आदि व्यङ्ग्य का उदाहरण उत्तम काव्य भेद वर्णन के समय कहेंगे ।

इति काव्यकौस्तुभे रस निर्णय तृतीया प्रभा

चतुर्थी प्रभा ।

१ अथ रस=धर्मान् गुणान्निरूपयति ॥

(१) अनन्तर रसधर्म गुण समूह का निरूपण करते हैं । रसका उत्कर्ष सम्पादक वर्ण व्यञ्जित धर्म को गुण कहते हैं, अङ्गिरस का उत्कर्ष सम्पादक धर्म को गुण कहते हैं, जिस प्रकार आत्मा में

वर्णादयस्तु तेषां व्यञ्जकाः । शौर्यादीनामिव देहादयः ।

माधुर्योजः प्रसादाख्या स्त्रय स्ते परिकीर्त्तिताः ।
क्रमेणैषां लक्षणानि व्यञ्जका वर्णादयश्च दर्श्यंते ।

चित्तद्रुतिमयो ह्लादो बुधैर्माधुर्यमुच्यते ।
सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात् ।
स्वांत्ययुक्शिरसो वर्गाष्टुवर्जा रेफणौ लघू ।
सुसमासोऽसमासश्च माधुर्यं घंटना तथा ।
शिरसि स्वपंचमयुक्ताष्टवर्गवर्जा वर्गाः । रेफणकारौ ह्रस्वांताविति वर्णाः ॥

सुसमासो मध्यसमासः असमास ईषत्समासश्चेति समासः । पदान्तरयोगे घटना चालंकृत संगतामित्यादिरूपा ।

शौर्यादि होते हैं वर्णादि उसका व्यञ्जक होते हैं । शौर्यादि के प्रति जिस प्रकार शरीरादि होते हैं ।

वे माधुर्य्य ओजः प्रसाद नाम से तीन प्रकार होते हैं । क्रमिक उदाहरण—बुधगण चित्तद्रावक ह्लाद को माधुर्य्य कहते हैं, संभोग, करुण, विप्रलम्भ शान्त में क्रमश अधिक होता है ।

मूर्द्धिन मस्तके—उपरिभाग में—वर्णानामन्त्यवर्णेन--ङ, ञ, ण, न, म, रूपशेष अक्षर से युक्त, ट, ठ-ड-ढ को छोड़कर अपर ककारादि-वर्ण, अङ्क शङ्क सङ्ग सङ्घ रूप से शब्द, तथा लघु प्रयत्न के द्वारा उच्चारित वर्णान्तर से असंयुक्त है । र, ण, रेफ, मूर्द्धण्य 'ण' कार माधुर्य्य गुण व्यञ्जक है, आवृत्ति— सर्वथा— समास रहित, अथवा अल्प समास विशिष्ट, मधुर, सुकोमल पद घटित सुश्रव्य रचना-शब्द विन्यास--माधुर्य्य गुण व्यञ्जक है ।

सुसमास, मध्य समास, असमास, ईषत् समास को समास शब्द

एता माधुर्य्यस्य व्यञ्जिकाः ।

उदा०—सततं संतनोत्यस्या नितांतन्तांतचेतसः ।
दुरन्ता कान्त-चिन्तेयं हन्त सन्तापसंततिः ॥

२ दीपनं चित्तविस्ताररूपमोजः प्रकीर्त्तितं ।
वीरबीभत्सरौद्रेषु भजत्यधिकतां क्रमात् ।

दीपनं दीप्तिः ।

द्वितीयतुर्य्ययो र्योगः पूर्वाभ्यां रेण तुल्ययोः ।
शषौ टु दीर्घवृत्तिश्च घटनौद्धत्यमोजसि ।

वर्गस्य प्रथमतृतीयाभ्यां सह द्वितीय-चतुर्थयो र्योगः। यथा कक्खटी, रुग्घास इत्यादिः । रेफेण सह व्यञ्जनस्य योगः स चोपर्य्यध उभयत्र च यथा—अर्कः वक्र दुर्ग्रहः ।

से जानना होगा. पदान्तर योगे घटना चालं कुरुसंगतामित्यादिरूपा, यह सब माधुर्य्य के व्यञ्जक हैं । उदा०—

हाय !! कान्त चिन्ता अति दुरन्ता है, सन्ताप सन्तति निरन्तर हृदय में ताप बिस्तार करती रहती है, (१)

(२) चित्त बिस्तार रूप दीप्ति को ओज कहते हैं। वीर, बीभत्स रौद्र में क्रमश अधिक रूप से व्यक्त होता है । दीपन--शब्द का अर्थ दीप्ति है, ।

वर्ग के द्वितीय वर्ण, तथा चतुर्थ वर्ण, का योग, रेफ का योग, श ष ह का प्रयोग, दीर्घ उद्धत घटना का प्रयोग ओज में होता है ।

वर्ग के प्रथम वर्ण एवं तृतीय वर्ण के साथ द्वितीय चतुर्थ वर्णका योग, जैसा—कक्खटी, रुग्घास, रेफ के साथ व्यञ्जन का योग । उसका योग —ऊपरे में हो अथवा नीचे हो । यथा—अर्कः, चक्रः

तुल्ययो र्योगस्तेन तस्यैव यथा मत्तोद्दामादि । शषौ ट ठ ड ढाश्चेति वर्णाः । वृत्तिर्दैर्घ्यं दीर्घसमासः । दृढो गुंफश्चेत्योजसो व्यञ्जकाः ॥

उदा०—उद्वृत्तमत्तदैत्येन्द्र हत्यावित्त-नखोद्भटः ।
दंष्ट्रा कटकटात्कारक्रूरवक्त्रोऽवताद्विभुः ॥

सितामिवाम्बु यश्चित्तं शुष्केधनमिवानलः ।
व्याप्नोति स प्रसादः स्यात्सर्वत्र विहितस्थितिः ।
शब्दाः श्रुतिगता स्तस्य द्योतका वाच्यबोधकाः ।
प्रसादस्य सार्वत्रिकत्वान्न वर्णगतो नियमः ।

उदा०—मनसः परमाणुतां वदन्तः कथमद्यापि न तार्किका स्त्रपन्ते ।

वक्रः दुर्ग्रहः । तुल्य को योग हो, जिस प्रकार मत्तोद्दामादि, श, ष, ट ठ ड ढ वर्ण का प्रयोग अधिक हो, दीर्घ समासा दृढ़ गुंफ, होने से ओज का व्यञ्जक होता है ।

उदा०—उद्वृत्तमत्तदैत्येन्द्र हत्यावित्तनखोद्भटः
दंष्ट्रा कटकटात्कार क्रूरवक्त्रोऽवताद्विभुः ॥

स्वच्छ जलके समान जो चित्त, अनल जिस प्रकार शुष्क इन्धन् में सत्वर व्याप्त होता है, उस प्रकार जो गुण—सत्वर चित्त को व्याप्त कर लेता है, उसे प्रसाद गुण कहते हैं । शब्द श्रवण मात्र से ही अर्थ बोध होने से प्रसाद गुण होता है ।

प्रसाद, समस्त रस में समस्त रचना में समान रूप से रहता है, अतः वर्णगत नियम इस में नहीं है । उदा० मनको परमाणु रूप कहने में नैयायिक गण आज भी लज्जित क्यों नहीं होते हैं, कनकाचल जयिष्णु तरुणीयों का भी उस में सन्निवेश हो जाता है ।

कनकाचलजित्वरस्तनीनां तरुणीनामपि यत्र संनिवेशः।

नवरसोजन्या स्तिस्रोऽवस्थाः सहृदयचेतसि भवन्ति
द्रुति विस्तारो विकाशश्चेति। तत्र शृङ्गारकरुण शान्तेभ्यो
द्रुतिः। वीरबीभत्सरौद्रेभ्यो विस्तारः, हास्याद्
भुतभयानकेभ्यस्तु मुखनेत्रगति-गतो विकाशः।

गौणी शब्दार्थयोश्चापि वृत्तिरेषामुदीरिता। एषां गुणानाम्

इति काव्यकौस्तुभे गुणनिरूपणं

चतुर्थी प्रभा ॥

पंचमी प्रभा।

१ एवं गुणान्निरूप्य बहुवक्तव्यत्वात् काव्यभेदान्तिम-
धर्मत्वाच्च क्रमप्राप्तानप्यलङ्कारान् विहाय रीतिमाह।

नव रस जन्य तीन अवस्था सहृदय के चित्त में होती हैं। द्रुति
शब्द का अर्थ विस्तार एवं विकाश है. शृङ्गार, करुण, शान्त में द्रुति
होती है। वीर बीभत्स रौद्र में विस्तार, हास्य अद्भुत भयानक में-
मुख नेत्र गति गत विकाश होता है।

गुणों की गौणी शब्दार्थ की वृत्ति भी कही गई है ॥

इति काव्यकौस्तुभे गुण निरूपणं नाम

चतुर्थी प्रभा।

पञ्चमी प्रभा।

(१) गुण निरूपण के पश्चात् अलङ्कार का निरूपण करना
आवश्यक था, किन्तु अलङ्कार प्रकरण विस्तृत है, और काव्य भेदमें

वर्णादिघटना रीतिः कथ्यते गुण-हेतुका।
वैदर्भ्यादि-विभेदेन चातुर्विध्यं भजत्यसौ ॥

अङ्ग संस्थानविशेषवद् गुणहेतुको वर्णविन्यासविशेषो रीतिः। सा खलु वैदर्भी गौड़ी पांचाली लाटी चेति चतुर्विधा भवति। आदिना समासः।

क्रमेणासां लक्षणानि—

२ मध्यवृत्तिरवृत्ति र्वा माधुर्यादिगुणान्विता।
वैदर्भी वृत्तिरेतस्याः पाकश्छन्दश्च पोषकृत् ॥

उसका पाठ अन्तिम में ही हुआ है, अतः क्रम प्राप्त होने पर भी उसको छोड़कर रीति का वर्णन करते हैं। उत्कर्ष हेतव. प्रोक्ता गुणालङ्कार रीतयः" इति नाम कीर्त्तन रूप उद्देश क्रमसे आकाङ्क्षित होने से भी सूचीकटाह न्याय से क्रमलङ्घन पूर्वक प्रसङ्ग सङ्गति से रीति का वर्णन करते हैं।

अङ्ग विन्यास विशेष के समान, अर्थात् यथा स्थान में कर चरण प्रभृति अवयवों का सुन्दर विन्यास होने से जिस प्रकार शरीर की शोभा होती है, उस प्रकार शब्दार्थ शरीर रूपी काव्य में वर्णादि की योजना को रीति कहते हैं, रस पोषक होने से ही वह रीति सौन्दर्य्य प्रकाशिका होगी, अर्थात् रसाद्युपकारक पदविन्यास ही रीति है। स्वयं अर्थ करते हैं, अङ्ग संस्थान विशेषवत् गुणहेतुक वर्ण विन्यास विशेष ही रीति है। वह रीति वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली लाटी भेद से चतुर्विध हैं।

विदर्भ, गौड़, पाञ्चाल, लाट, देशीय कविके द्वारा प्रथम प्रयुक्त होने से उक्त नाम से कथित हुई ॥ मूलस्थ वर्णादि, शब्द से समास को जानना होगा ॥१॥

(२) क्रमशः लक्षण समूह को कहते हैं—प्रथमतः वैदर्भी का

वृत्तिः समासः। रसालपाको वृंताकपाकश्चेति पाकद्वयं। तत्राद्य स्तस्याः पुष्टिकृत्। छन्दश्चेन्द्रवज्रा-वसन्ततिलक-रथोद्धतादिकं। उदा०—

विधाय पुष्पावचयं चलन्त्या मञ्जीरनादो मदखञ्जनाक्ष्याः।
मन्दोऽप्यमन्दं हरिमञ्जनाभं कुञ्जेशयं जागरयांचकार॥

पूर्वपूर्वदशायाः परपरचारुतायां रसालपाकः सहृदयैक-संवेद्यः। वैपरीत्ये तु वृन्ताकपाकः।

यथा—आलोकितं कुटिलितेन विलोचनेन
सम्भाषणं च वचसा मनसार्धमर्धम्।

लक्षण करते हैं—माधुर्यादि गुण युक्ता मध्य वृत्ति-आवृत्ति दो, अथवा तीन पदवृत्ति समास विशिष्टा जो पदयोजना है, उसे कविगण वैदर्भी रीति कहते हैं। वृत्ति---समास, पाकदोप्रकार हैं,--रसाल पाक एवं वृन्ताक (बैंगन) पाक। रसाल पाक से मधुरता आती है, वृन्ताक पाक से विरसता होती है। इन्द्रवज्रा-वसन्ततिलक रथोद्धतादि छन्दः रस पोषक होता है।

उदाहरण—जब पुष्प चयन कर मदखञ्जनाक्षी जा रही थी, तब उनका मञ्जीरनाद उत्कट न होने पर भी कुञ्ज में निद्रित अञ्जनाभ श्रीहरि की निद्राभङ्ग करने में समर्थ हुआ। यहाँ छन्दः एवं समस्त पदरचना प्रभृति रसके अनुरूप होने से पक्वाम्र के समान हृदयहारिणी हुई अन्यथा पका हुआ बैंगन के समान नीरस होता।

विपरीत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—कुटिल नयनों से देखना, मन एवं वाणी आधा आधा कहना, हे राधे! लीलामय वपुः तुम हो, तुम्हारी यही प्रकृति है, यह सहज है, अथवा कृत्रिम है, मदन का क्रम है, अथवा मदका।

लीलामयस्य वपुषः प्रकृति स्तवेयं
राधे क्रमो न मदनस्य न वा मदस्य॥

अत्र तुर्य्ये पादे पूर्वः। लीलामयस्य वपुष स्तव राधिकेयं कोऽपि क्रमो तु सहजः किमु कृत्रिमो वेति पाठभेदे तु परः। अत्र वैदर्भ्यां सत्यामपि विरसता तत्पोषक-पाकविरहात्। वैदर्भी गर्भिणीव स्फुरति रसमयी कामसू रुक्मिणीवे" त्यत्र तथाविधया रचनया स्थितापि वैदर्भी न चमत्करोति। तत्पोषक च्छन्दोविरहात्, गौडयनुगुणं ह्येतच्छन्दः॥

३ गौड़ी परुषवर्णा स्याद्दीर्घवृत्तिर्युतौजसा।
रुक्षाक्षरा दीर्घसमासा गुणेनौजसा युक्ता गौडी।
यथा—तुरगदनुसुतांगेत्यादि।

'राधे--क्रमो न मदनस्य नवा मदस्य" इस चतुर्थ पाद में रसावह रसालपाक होने से वैदर्भी रीति हुई, किन्तु तृतीय पाद गत अर्थ से एवं पाठ भेद से उस का विघटन हुआ है। यहाँ वैदर्भी होने से भी विरसता है, रसपोषक सामग्री का अभाव है, "वैदर्भी गर्भिणीव स्फुरति रसमयी कामसू रुक्मिणीव। यहाँ पर वैदर्भी लक्षणा क्रान्त रचना होने पर भी वैदर्भी रस पोषक नहीं है, रस पोषक छन्द नहीं है, यहाँ वैदर्भी पोषक छन्द न होने से यह गौड़ी रीति का पोषक छन्द है॥२॥

(३) परुष वर्ण युक्ता गौड़ी रीति होती है। इस में दीर्घ समास तथा ओज वर्द्धक शब्द विन्यास होता है।

रुक्षाक्षर दीर्घ समास एवं ओज गुण युक्ता गौड़ी रीति होती है। उदाहरण—तुरगदनुसुतांगेत्यादि। द्वितीयोदाहरण—शिखण्डशेखर मयूर पिञ्छ धारी नृत्य पण्डित चरण चालन परायण श्रीकृष्ण

यथा वा-कालियस्य फणरत्नकुट्टिमं कुट्टयन् पदसरोज-घट्टनः।
मङ्गलानि वितनोतु ताण्डवे पण्डितः सविशिखण्डशेखरः।

४ भूय्यनुप्रासभाक् चापि।

अनुप्रास-प्राचुर्य्येऽपि गौडीत्यर्थः। यथा—

गौडी गाढ़ोपगूढ़प्रकट हठघटा गर्वगर्भेव गौरी॥

५ गुणान्तरानुगुणोऽप्यनुप्रासः प्राचुर्य्याद्गौडीमनुबध्नाति।

यथा— दु दु दु दु वाद्यं दुन्दुभीनां

पाञ्चाली तूभयात्मिका।

गौड़ी-वैदर्भ्योरंशाभ्यां पाञ्चाली स्यात्। यथा—

अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीना-
मुदयगिरि-वनाली बालमन्दारपुष्पम्।
विरह-विधुर-कोकद्वन्द्वबन्धु र्विभिन्दन्
कुपित-कापकपाल-क्रोड़ताम्र स्तमांसि॥

कालिय नाग को व्यथित कर जीव मात्र को मङ्गल प्रदान करें॥३॥

(४) अतिशय अनुप्रास होने से भी गौड़ी रीति होता है। उदाहरण – गौड़ी गाढ़ोपगूढ़ प्रकट हठघटागर्व गर्भेव गौरी॥४॥

(५) गुणान्तरानुगुण सम्पन्न अनुप्रास का प्राचुर्य्य से गौड़ी शोभिता होती है। यथा –दु दु दु दु दुन्दुभीओं का वाद्य है। पाञ्चाली उभयात्मिका होती है।

गौड़ी एवं वैदर्भी के अंश द्वारा निर्मिता पाञ्चाली रीति होती है। यथा—पद्मिओं के निद्राभङ्ग कारी उदय गिरि वनाली का का बालमन्दार पुष्प रूप सूर्य्य उदित हो रहा है। वह विरह विधुर कोकद्वन्द्व के बन्धु है, अतः कुपित कपिकपाल क्रोड़ताम्र रूप

कथाप्रायार्था माधुर्य्यप्रायगुणा पाञ्चालीति केचित्।

६ लाटी तु शिथिला वर्णै र्मृदुभि र्लादिभि र्युता॥

यथा—लोलालिमालामिलिता ललिता मालती लता।
जलदा कलिते काले कराले विलयाय मे।

लाटानुप्रासबाहुल्येऽप्येषानुसर्त्तव्या। एवमेवोक्तमन्यैः।

गौडी डम्बरबन्धा स्याद्वैदर्भी ललितक्रमा।
पाञ्चाली मिश्रभावेन लाटी तु मृदुभिः पदैरिति यद्यपि

गुणग्रन्थादियं गतार्था, तथाप्यत्र विशेषावगतये निरूपिता।

इति काव्यकौस्तुभे रीतिनिर्णयः
पञ्चमी प्रभा॥

अन्धकार समूह को अपसारित करते हुए उदित हो रहा है। किसी के मत में कथा के अनुरूप अर्थ सम्पन्न माधुर्य प्राय गुण युक्ता भी पाञ्चाली होती है॥५॥

(६) लादि मृदुल वर्ण समूह युक्ता शिथिला लाटी होती है, उदाहरण—चञ्चल अलिकूल सङ्कुल ललिता मालती लता मेघ मेदुर वर्षाकाल में मुझे द्रवित किया। लाटानुप्रास बाहुल्य से भी यह पाञ्चाली होती है, अपर का कथन भी इस प्रकार है। गौड़ी आड़म्बर पूर्णा होती है। और वैदर्भी ललितक्रमा है। पाञ्चाली उभय के मिश्रण रूप होती है, मृदुपद विन्यास से लाटी यद्यपि गुण ग्रन्थ में अन्तर्भुक्त हो जाती है, तथापि विशेष परिज्ञान हेतु इस का निरूपण किया गया॥६॥

इति काव्य कौस्तुभे रीति निर्णयः
पञ्चमी प्रभा॥

—**—

षष्ठी प्रभा ।

अथ दोषानाह ।

—*—

१ हृदये निविशद्भिर्यैः क्षीयते काव्यचारुता ।
दोषा स्ते कथिताः प्राज्ञैः पदवाक्यार्थ--संस्पृशः ॥

अत्रार्थो व्यङ्ग्योऽपि रसादि र्ग्राह्यः ॥

तत्र पददोषानाह ।

२ दुष्टं श्रुतिकटु व्यर्थं नेयार्थमसमर्थकं ।
अवाचकं त्रिधाश्लीलं संदिग्धच्युतसंस्कृति ॥

षष्ठी प्रभा ।

अथ दोषानाह ।

—*—

(१) रीति निरूपण के अनन्तर दोष समूह का निरूपण करते हैं। श्रवण द्वारा हृदय में प्रविष्ट होकर जिस से काव्य की चारुता बिनष्ट हो जाता है, बुधगण उसे पद वाक्यार्थ गत दोष कहते हैं। यहाँ व्यञ्जना वृत्ति लभ्य अर्थ को भी जानना चाहिये ॥१॥

(२) पदगत दोष को कहते हैं, श्रुति कटु प्रभृति को दोष कहते हैं। व्यर्थ, नेयार्थ, असमर्थक, अवाचक--यह तीन प्रकार होते हैं, अश्लील, सन्दिग्ध, च्युति संस्कृति। ग्राम्य, अप्रतीत, विरुद्धमतिकृत्,

ग्राम्यं स्यादप्रतीतं च विरुद्धमतिकृत्तथा ।
अविमृष्टविधेयांशं क्लिष्टं च पदमुज्जगुः ॥

श्रुतिकट्वादिपदं दुष्टमुज्जगुरिति सम्बन्धः ।

तत्र रुक्षाक्षरं श्रुतिकटुः ।

यथा—स्रष्ट्रा विनिर्मिता तन्वी ।

व्यर्थं यथा–मोदं मे विदधाति च । अत्र चेति व्यर्थम् ।

अविमृष्ट विधेयांश, एवं क्लिष्ट पद दोषावह है।

ये दोष समूह— नित्यानित्य भेद से द्विविध हैं, सर्वथा ही हेयस्वभाव को नित्य दोष कहते हैं। यथा—च्युत संस्कारता, हतवृत्तादि, वे सकल रस में एवं सकल अवस्था में दोषावह हैं। इसका विकल्प नहीं है। रस भेद से अवस्था विशेष से हेयोपादेयोभयस्वभाव युक्त को अनित्य दोष कहते हैं। यथा,—दुःश्रवतादि, वह शृङ्गारादि में हेय हैं, रौद्रादि में उपादेय हैं। अतएव नित्य दोष अनित्य दोष रूप संज्ञा भी होती है। पद गतत्वादि दोष स्वरूप को कहकर संख्या से उसे कहते हैं। द्वन्द्वात् परः श्रूयमाणः शब्द प्रत्यकमभि सम्बध्यते" इस नियम के अनुसार सब के साथ दोष का अन्वय है। उस से दुःश्रवता त्रिविधा अश्लीलता, अनुचितार्था, अप्रयुक्तता, ग्राम्यता, अप्रतीतता, सन्दिग्धता, नेयार्थता, निहतार्थता का लाभ होता है। अवाचकत्व, क्लिष्टत्व, विरुद्धमति कारिता, अविमृष्ट—अप्राधान्य से निर्दिष्ट विधेयांश-प्रधान भाग--जहाँ होता है। वहाँ अविमृष्ट विधेयांशता विधेयाविमर्श होता है। ये त्रयोदश दोष--पद एवं वाक्य-उभयत्र ही होते हैं। कुछ दोष तो पदांश में होते हैं, दुःश्रवता, अश्लीलता, निहतार्थता अवाचकता, नेयार्थता दोष पदांश में होते हैं। निरथकता असमर्थता च्युतसंस्कारता केवल पद में होते हैं।

रुक्षाक्षर को श्रुति कटु कहते हैं। यथा,—स्रष्टाविनिर्मिता तन्वी व्यथ का उदाहरण—मोदं मे विदधाति च। यहाँ 'च'

३ नेयार्थं रुढ़िफलाभ्यां विना लाक्षणिकं । यथा-भाति गोवर्द्धनः पश्य पुष्पवद्भिः कपिध्वजैः । कपिध्वज-शब्देनात्रार्जुनवृक्षा लक्ष्याः ।

४ असमर्थं यथा—कासारं हन्ति गोविन्दः, इत्यादौ हन्त्यादेः सामर्थ्यं नास्ति ।

५ अवाचकं यथा—

मां विधत्तेऽनुकम्पया । अत्र पुष्टौ विधानं न वाचकं ।

व्रीडाजुगुप्सा भङ्गलावबोधित्वात् अश्लीलं त्रिधा । यथा—

भग तव वृहद्भावि मुकुन्द भजनेन विट् ।
सूनो स्ते नैव नष्टस्य पुन र्दृष्टि गमिष्यसि ॥

व्यर्थ है ॥२॥

(२) नेयार्थ का लक्षण करते हैं रुढ़ि प्रयोजन के अभाव से केवल पूरण के निमित्त असामर्थ्य प्रयुक्त है । यह नित्य दोष है, प्रतिप्रसव के अभाव से सर्वथा हेय है । कवि के द्वारा बलपूर्वक प्रतिपादित अर्थ जहाँ लक्ष्य होता है, उसे नेयार्थता कहते हैं । यथा देखो--गोवर्द्धन पर्वत प्रस्फुटित कपिध्वज के द्वारा शोभित है । यहाँ कपिध्वज शब्द से अर्ज्जुन वृक्ष का बोध कराना कविका लक्ष्य है ॥३॥

(४) असमर्थ--का उदाहरण--कासारं हन्ति गोविन्दः, यहाँ हन धातु का प्रयोग हुआ है, हन् धातु का अर्थ,–हिंसा एवं गति है, हिंसार्थ में उसकी प्रसिद्धि है, गमनार्थ में शक्ति नहीं है ॥४॥

(५) अवाचक का दृष्टान्त—मां विधत्ते,--अनुकम्पया. यहाँ पुष्टि अर्थ प्रकाशन में विधत्ते की शक्ति नहीं है । व्रीड़ा जुगुप्सा, अमङ्गल का बोधक होने से अश्लील भी तीन तीन प्रकार होते हैं । उदाहरण-भग तव वृहद् भावि मुकुन्द भजनेनविट् सूनोस्ते नैव नष्टस्य पुनर्दृष्टि

अत्र भगविट् नष्टशब्दाः क्रमाद्व्रीडादि-द्योतकाः ।

६ द्व्यर्थं—संदिग्धं, यथा—प्रयान्ति पक्षिणो नद्यां, अत्र नद्यां सरिति प्रयान्तीति द्यामाकाशं न प्रयान्तीति च प्रतीयते । व्याकरणविरुद्धं च्युतसंस्कृति यथा—रामा बान्धति मानसं ।

ग्राम्यं यथा—सुकटेः स्मरकण्डूति रस्या वर्द्धत्यहर्निशं । अत्र कटिकण्डूति पदे ॥

एकशास्त्रख्यातम् अप्रतीतं यथा—

इद वीतानुमानेन साधितं केन दूष्यतां । केवलान्वय्यनुमानं वीतमुच्यते नैयायिकः ॥

७ विरुद्धमतिकृद्यथा—

सर्वाणीपतिरेवात्र तुष्यत्याशु निजाश्रिते । अत्र सर्वाण्याः

गमिष्यसि । यहाँ "भग" "विग्" "नष्ट" शब्द क्रमशः लज्जादि का व्यञ्जक है ॥५॥

(६) उभयार्थ प्रकाशक को सन्दिग्ध कहते हैं ।

उदाहरण—प्रयान्ति पक्षिणो नद्यां" यहाँ नदी--से जलप्रवाहमय सरित् का बोध होता है । आकाश में गमन की प्रतीति नहीं होती है ।

व्याकरण विरुद्ध को च्युत सस्कृति कहते हैं.---यथा रामा बाधन्ति मानसम् ॥ ग्राम्य का उदाहरण—सुकटेः स्मरकण्डूति रस्यावर्द्धत्यनिशं यहाँ कटि--कण्डूति पद में ग्राम्यता दोष है ।

एकशास्त्र के पारिभाषित शब्द प्रयोग से अप्रतीत दोष होता है, दृष्टान्त—"इदं वीतानुमानेन साधितं केन दूष्यतां" नैयायिकगण केवलान्वयि अनुमान को वीत कहते हैं ॥६॥

(७) विरुद्ध ज्ञान जनक शब्द प्रयोग को विरुद्धमतिकृत् कहते हैं । उदाहरण—सर्वाणीपतिरेवात्र तुष्यत्याशु श्रिते । यहाँ सर्वाणीपति

पत्यन्तरधीजननात्तथा ।

८ अविमृष्टः प्राधान्येनानिर्दिष्टो विधेयोंऽशो यत्र तत्, विधेयांशस्य प्राधान्येनानिर्देशः खलु समासेन न्यग्भावाद्-भवति । तद्यथा—

तव तन्वि कटाक्षोऽयं षष्ठवाणो मनोभुवः ।
प्रविश्य हृदये कृष्णः वृथा दर्पं चकार यत् ।

अत्र वाणस्य षष्ठुत्वं, दर्पस्य वृथात्वं च विधेयं, तत्तथा न प्रतीयते, समासेन गुणीभावात् । तेन षष्ठो वाण इति भर्त्तु र्दर्पं व्यर्थमिति च वाच्यं ।

व्यवहितार्थ---प्रातीतिकं क्लिष्टं यथा---

हरिप्रिया--पितृबधूधारया तुलितं वचः ।

शब्द से सर्वाणी का अपर पति है,–बोध होता है ।

(८) अविमृष्ट दोष–जहाँ विधेयांश का निर्देश प्राधान्य से नहीं हुआ है, इस प्रकार प्रयोग की सम्भावना समासकृतपद से ही होता है । दृष्टान्त—हे तन्वि ! कटाक्ष कन्दर्प का षष्ठुवाण स्वरूप है । हृदय में प्रविष्ट होकर मदन व्यथा प्रदान करता है । किन्तु कृष्ण ने जो दर्प किया है, वह वृथा है ।

यहाँ वाण का षष्ठुत्व, दर्पका वृथात्व ही विधेय है, अर्थात् मुख्य है, किन्तु षष्ठ शब्द के सहित 'वाण' शब्द का समास होने वह गौण हो गया है । मुख्य रूप से प्रतीत नहीं होता है, अतः मुख्यत्व सम्पादन के निमित्त षष्ठ वाण, भर्त्ताका दर्प व्यर्थ है । इस प्रकार कहने से अविमृष्ट विधेय दोष नहीं होगा । व्यवहितार्थ प्रातीतिक क्लिष्ट का उदाहरण—

"हरिप्रिया पितृबधू धारया तुलितं वचः ॥"

अत्र हरिप्रिया श्रीस्तत्पिता समुद्र स्तद्बधूर्गंगा तस्या धारया तुल्यं वाक्यमिति योज्यं । अप्रयुक्त मनुचितार्थं च पदमिह पठन्ति । यथा---ममेष्टदैवतो भाति सोऽयं हलधरानुजः । अत्र दैवत--शब्दः पुंसि न प्रयुज्यते । हलधर-शब्दः कृषिकारित्व-व्यञ्जनादनुचितार्थः । एते केचन दोषाः पदांशे वाक्ये च सम्भवन्तो मृग्याः ॥

अथ वाक्यदोषानाह ।

(१) प्रतिकूलाक्षरं वाक्यं कुसन्धि च विसन्धि च ।
अधिकन्यूनकथितपदमक्रमगर्भिता ॥

हरिप्रिया लक्ष्मी, उनके पिता,–समुद्र, उनकी बधू गङ्गा, उनकी धारा के तुल्य वाक्य है, इस प्रकार योजना है, अप्रयुक्त अनुचितार्थ का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करते हैं । "ममेष्टदैवतो भाति सोऽयं हलधरानुजः । 'दैवत" शब्द का प्रयोग पुरुषोत्तम लिङ्गमें नहीं होता है । हलधर शब्द भी कृषक वाची होने से व्यञ्जना से--अनुचितार्थ हुआ, ये सब दोष पदांश में तथा वाक्य में होते हैं ।८॥

अथ वाक्यदोषानाह ॥

(१) अनन्तर वाक्य दोष का प्रदर्शन करते हैं । जिस वाक्य में जिस प्रकार अक्षर सन्निवेश से रसाधायकता हो उसका विपरीत वर्ण का सन्निवेश करना, कुसन्धि सन्धि से अर्थ बोध में बाधा होती है, विसन्धि--जहाँ सन्धि होने से अर्थ बोध सहसा होता है, वहाँ सन्धि न करना । जिस वाक्य में अधिक पद है, न्यून पद है, कथित पदता । जिस वाक्य मे प्रकर्षता स्खलित हुई है, वह पतत् प्रकर्षता है । सङ्कीर्णता, जिस वाक्य में विसर्ग लुप्त है, एवं आहत है, अर्थात् ओत्व प्राप्त है । जिस वाक्य में अन्वयः मत-अभिमत सम्बन्ध अभवन्

पतत्प्रकर्षं संकीर्णं लुप्ताहतविसर्गकं ।
अभवन्मतयोगं च हतवृत्तं च दोषभाक् ।

प्रतिकूलाक्षरादिवाक्यं दोषभागित्यनुषंगः ।

तत्र प्रतिकूलाक्षरं यथा-नन्दसूनुरमन्दश्री रनन्दत् केशिनं दरन् ।

अत्र वर्णा वीरप्रतिकूलाः ।

(२) कुसन्धि यथा-पटवायाहि रंतव्यं ।

विसन्धि यथा-त्वन्नेत्रे अम्बुजे इमे ।

अधिकपदादीनि त्रीणि यथा—

यान्त्या रविसुतां दृष्टो घनाभश्यामलो युवा ।
करोति सखिभिः केलिं चित्रकेलिपरैः सह ॥

अत्राद्ये पादे मयेति पदं न्यूनं । द्वितीये आभेत्यधिकं, तुर्ये केलीति कथितं च ।

अनुपपद्यमान है, वह अभवन्मत सम्बन्ध वाक्य है । हत वृत्त--छन्दो-भङ्ग जिस वाक्यमें है, वह दोषावह है । प्रतिकूलाक्षरादि युक्त वाक्य दोषावह है, इस प्रकार अर्थ जानना उचित है । वर्णो का प्रकृत रस विरोधी होना ही प्रतिकूल वर्णता है । यथा—नन्द सूनुरमन्दश्री रनन्दत् केशिनं दरन्" यहाँ वीररस का वर्णन है, किन्तु वर्णन में अक्षरों का सन्निवेश शृङ्गाररसोपयोगी है ।।१।।

(२) कुसन्धि पटवायाहि रन्तव्यम् ।
विसन्धि—त्वन्नेत्रे अम्बुजे इमे

अधिक पदादि तीनों के उदाहरण—यान्त्या रविसुतां दृष्टो घनाभश्यामलोयुवा, करोति सखिभिः केलिं चित्रकेलिपरैः सह । प्रथम पाद में-'मया' पद नहीं है, द्वितीय पाद में--"आभा" अधिक है । चतुर्थ पाद में 'केलि' पद अधिक है, कथित भी है ।२।।

(३) अक्रम का उदाहरण—राधाकर्णान्तिनेत्रासौ श्रुत्वेत्यानन्दितो हरि:" इस स्थल में "अत्रेति श्रुत्वा" होने से क्रम होता ।।३।।

(४) वाक्य के मध्य में वाक्य का प्रवेश होने से पतत् प्रकर्ष दोष होता है ।--यथा--'यास्यत्येष शपेतुभ्य वैराग्याद्दरीवने' यहाँ 'शपेतुभ्य" यह वाक्य मध्य में प्रविष्ट हुआ है ।

वाक्यान्तरपदका वाक्यान्तर में प्रविष्ट होने से सङ्कीर्ण दोष होता है,—यथा,—चन्दंमुञ्च विशालाक्षि--मानं पश्य नभोङ्गने । यहाँ नभोङ्गन चन्द्रको देखो । और मानत्याग करो । यह शुद्ध है ।४।

(५) लुप्त विसर्ग का उदाहरण—गतानिशा इमा बाले" आहत

(३) अक्रमं यथा—राधाकर्णान्तनेत्रासौ श्रुत्वेत्यानन्दितो हरिः । अत्रेति श्रुत्वेति स्थिते क्रमः ।

वाक्यमध्ये वाक्यप्रवेशे गर्भितं । यथा—यास्यत्येष शपे तुभ्यं वैराग्याद्दरीवने । अत्र शपे तुभ्यमिति वाक्यं वाक्यान्तः प्रविष्टः ।

(४) पतत्प्रकर्षं यथा—प्रोद्दण्ड-भुजदण्डोऽसौ रामोऽहन् रावणं रणे । अत्रोत्तरत्रानुप्रासप्रकर्षः पतितः ।

वाक्यान्तर-पदानां वाक्यान्तरप्रवेशे संकीर्णं यथा-चन्द्रं मुञ्च विशालाक्षि मानं पश्य नभोङ्गणे । अत्र नभोङ्गणे चन्द्रं पश्य मानं मुञ्चेति युक्तं ।

(५) लुप्तविसर्गं यथा--गता निशा इमा बाले ।

आहतविसर्गं यथा—नरो धीरो वरो गतः । अत्रोत्वं प्राप्ता विसर्गाः ।

असिद्ध्यदिष्टसंबधमभवन्मतयोगं यथा—

या जय श्रीर्मनोजस्य यया विश्वं विभूषितं ।
यां पद्माक्षीं विना प्राणा वृथा मम कुतोऽद्य सा ।

अत्र यच्छब्दनिर्दिष्टानां वाक्यानां मिथो नैरपेक्ष्यात्तदंतस्थेन पद्माक्षी-शब्देन परेषां सम्बधो दुर्घटः । यां विनामी वृथा प्राणाः पद्माक्षी सेति पाठे तु सुघटः सः ।

(६) हतवृत्तं यथा —

इह मुरहरान्यत् किं भाव्यं भवत्पदसेवनात् ।

अत्र हरिणी छन्दस्यस्मिन् षष्ठे वर्णे यति रुचिता । रसयुगहयैरनसौम्रौस्लौ गो यदा हरिणी तदेति तल्लक्षणात् । र इत्यत्र परपद-संधानकृता यतिरश्रव्यत्वेन भज्यते ।

विसर्ग—"नरोधीरो वरोगतः" यहाँ विसर्ग का उत्व हुआ है ।

इष्ट का सम्बन्ध न होने से असवन्मत योग होता है—यथा या जय श्रीर्मनोजस्य यया विश्वं विभूषितं यां पद्माक्षी विना प्राणा वृथा मम कुतोऽद्य यहाँ यच्छब्द द्वारा निर्दिष्ट वाक्यों का परस्पर अपेक्षा शून्य होने से, मध्य वर्त्ति 'पद्माक्षी' शब्द के सहित अन्य का सम्बन्ध होना दुर्घट है । "यां विनामी वृथा प्राणाः "पद्माक्षीसेति पाठ होने पर सम्बन्ध सुघट होता है ।।५।।

(६) हतवृत्ता का दृष्टान्त—यथा इह मुरहरान्यत् किं भाव्यं भवत् पद सेवनात्' यह हरिणी छन्द है । नसमरसलागः षड्वेदै र्हयै र्हरिणीमता । (छन्दः कौस्तुभः १४०) इस के यति--षष्ठ, चतुर्थ, सप्तम वर्ण में है, रस--छै, वेद--चार, अश्व-सात । इहमुरहरान्यत् में षष्ठ अक्षर में प्रथम यति होना आवश्यक था, यह यति र में होता, किन्तु 'र' का सम्बन्ध अपर पद के सहित हुआ । यह श्रुति कटु है । यतिभङ्ग दोष ।

अथार्थदोषानाह ।

(१) अपुष्टकष्टसंदिग्ध--व्याहताश्लील--दुष्क्रमाः ।
प्रकाशितविरुद्धान्यसहचार्य्यनवीकृताः ।।
साकांक्ष-ग्राम्य-निर्हेतु पुनरुक्ता स्तथापरे ।
प्रसिद्धयादि-विरुद्धाद्या अर्था दुष्टाः प्रकीर्त्तिताः ।।

अपुष्टादयोऽर्था दुष्टा इत्यर्थः ।

(२) तत्रापुष्टो यथा—चन्द्रो महति खे भाति लसंति वितता दिवः ।।

अत्र महतीति विशेषणं विशेष्यभूतं खं न पुष्णाति ।।

अथार्थदोषानाह ।

(१) अनन्तर अर्थ दोष कहते हैं—ये अर्थ दोष त्रयोविंशति प्रकार के होते हैं ।—अपुष्टता, दुष्क्रमता, ग्राम्यता, व्याहतता, अश्लीलता, कष्टता, अनवीकृतता, निर्हेतुता, प्रकाशित विरुद्धता, सन्दिग्धत, पुनरुक्तता, ख्याति विरुद्धता, साकाङ्क्षता, सहचरभिन्नता, अस्थान युक्तता, अर्थ का अविशेष से सामान्यता औचित्य में विशेष तदेकदेशपरत्व, अनियम में नियम, उसका विपर्य्यय, विशेष में अविशेष नियम में अनियम, विध्ययुक्तता, अनुवादायुक्तता, तथा निर्मुक्त पुनरुक्तता रूप त्रयोविंशति दोष साहित्य दर्पण कारक मत में है । प्रस्तुत ग्रन्थकार के मत में पञ्चदश दोष स्वीकृत है ।

(२) अपुष्टतादिको अर्थ दोष कहते हैं । अपुष्ट का उदाहरण--अपुष्टत्व—मुख्यानुपकारित्व उद्देश्यानुपयोगित्व, उद्देश्यानुपयोगी को दोष इस लिये कहते हैं कि—उस से सन्निवेश कारण का अनुसन्धान विलम्ब से होने से रस प्रतीत विलम्ब से होता है, अतः यह दोष

(३) कष्टो यथा--योगिनो भिषजो ज्ञाश्च भवन्त्याशयवेदिनः।

अत्राशयशब्देन वासनादीनां बोधत्वात् कष्टता।

(४) संदिग्धो यथा--नितम्बाः सुभ्रुवां सेव्याः किम्बा क्षितिभृतामिह। अत्र शान्तशृङ्गारिणोः को वक्तेत्यनिश्चयात् सन्देहः।

(५) व्याहतो यथा--सीते न चन्द्रिका रम्या यथा त्वं नेत्र-चन्द्रिका।

अत्र यस्य रामस्य चन्द्रिका नानन्द हेतुः स एव सीतायाश्चन्द्रिकात्वमारोपयमिति व्याहतोऽर्थः।

(६) अश्लीलो यथा--कुब्जेयं दुर्भगा यस्मात् कृष्णं

होता है। यह नित्य दोष है, इसका प्रतिप्रसव नहीं है।

यथा--चन्द्रो महति खे भाति लपन्ति वितता दिवः। यहाँ आकाश का विशेषण में 'महति' शब्द है, वह विशेष्य रूप आकाश को पुष्ट नहीं करता है ॥२॥

(३) कष्ट--यथा--योगिनोभिषजोज्ञाश्च भवन्त्याशयवेदिनः। यहाँ आशय शब्द से वासनादि का बोध होने से 'कष्टता' दोष हुआ है।

(४) सन्दिग्ध--नितम्बा सुभ्रुवां सेव्याः किम्बा क्षितिमृतामिह। अत्र शान्त शृङ्गारि के मध्य में वक्ता कौन है ? निश्चय न होने से सन्देह है।

(५) व्याहता--सीते न चन्द्रिका रम्या यथा त्वं नेत्र चन्द्रिका। अत्र यस्य रामस्य चन्द्रिका नानन्द हेतुः स एव सीतायाश्चन्द्रिकात्व-मारोपयतीति व्याहतोऽर्थः जो चन्द्रिका राम का आनन्द दायक नहीं है, उसका आरोप सीता में हुआ है। अतः अर्थ व्याहत है।

(६) अश्लील--कुब्जेयं दुर्भगा यस्मात् कृष्णं रतिमयाचत। यहाँ

रतिमयाचत।

अत्र भग-शब्देन गुह्याङ्ग-प्रतीतेरश्लीलोऽर्थः।

(७) दुष्क्रमो यथा--अश्वं मे देहि राजेन्द्र गजं वा मदसंकुलम्।

अत्र पूर्वं हस्तिन्यभ्यर्थिते क्रमः।

प्रकाशित-विरुद्धो यथा द्रष्टव्यः।

सखि देशोऽसौ चन्द्रो यत्र न दुःखदः। अत्र कान्तोऽन्यो यत्र लभ्यत इति विरुद्धं प्रकाश्यते।

(८) अन्यसहचारी यथा--

वायसाः साधव स्तुल्या दृष्टाः स्वपरपुत्रयोः।

अत्र वायसानामपकर्षात् सहचर-भेदः॥

(९) अनवीकृतो यथा--

सदा चरति खे भानुः सदा वहति मारुतः।

सदा धत्ते भुवं शेषः सदा धीरोऽविकत्थनः॥

"भग" शब्द से गुह्याङ्ग की प्रतीति होने से अश्लील हुआ है।

(७) दुष्क्रम,--अश्वं मे देहि राजेन्द्र गजं वा मद संकुलं। यहाँ प्रथम, हस्ति की प्रार्थना से क्रम होता, किन्तु अश्व की प्रार्थना है। प्रकाशित विरुद्ध का दृष्टान्त, सखि ! देशोऽसौ चन्द्रो यत्र न दुःखदः। यहाँ पर अन्य कान्त का लाभ होता है। इस से विरुद्ध अर्थ का बोध होता है।

(८) अन्य सहचारी--वायसाः साधवस्तुल्या दृष्टाः स्वपर पुत्रयोः यहाँ वायसों के अपकर्ष से सहचर भेद है।

(९) अनवीकृत--सदा चरति खे भानुः सदावहति मारुतः

सदाधत्ते भुवंशेषः सदाधत्तेऽविकत्थनः॥

एकभङ्गोनिर्दिष्टानेकार्थत्वमनवीकृतत्वं । महान्तो ह्यमितक्रमा इति तुर्य्ये-पादे सति नवीकृतत्वं स्यात् ।

(१०) साकांक्ष्यो यथा--मां जीवय वरारोहे । अत्राधर-सुधयेत्याकांक्ष्यते ।

(११) ग्राम्यो यथा--तव भोगाय मत्तनूः। अत्र भक्षणप्रत्ययात् ग्राम्योऽर्थः ।

(१२) निर्हेतु यथा--भुवि शेते नृपो नित्यं कुमारः परिधावति । अत्र प्रत्यहं भूशयने हेतुर्नोक्तः ॥

(३१) पुनरुक्तो यथा--रामस्य प्रेयसी सीता सौन्दर्य्यादति-वल्लभा । अत्र वल्लभापदार्थः पुनरुक्तः ।

एकविध शब्द द्वारा पुनः पुनः अनेकार्थ कथन को अनवीकृत कहते हैं, अतएव अन्यविध शब्दसे अर्थ का अनूतनीकृत से अनवीकृत संज्ञा हुई है । सर्वदा एक शब्द से अर्थ बोध होने से श्रोता विरक्त हो जाता है, और रस प्रकर्षनाश होता है । यह नित्य दोष है । सदा शब्द बहुल प्रयोग से उक्त दोष हुआ है । एकभङ्गी निर्दिष्ट अनेकार्थत्व को अनवीकृत कहते हैं । महान्तो ह्यमितक्रमा इति तुर्य्ये पादे सति नवीकृतत्वं स्यात् ।

(१०) साकाङ्क्षो यथा,-मां जीवय वरारोहे ! अत्र--अधर--सुधयेत्याकाङ्क्षयते ।

(११) ग्राम्यो यथा—तवभोगाय मत्तनूः । यहाँ भक्षण प्रतीति होने से ग्राम्य अर्थ हुआ है ।

(१२) निर्हेतु—यथा--भूविशेते नृपोनित्यं कुमारः परिधावति, अत्र प्रत्यहं भूशयने हेतु र्नोक्तः ।

(१३) पुनरुक्तो यथा—रामस्य प्रेयसी सीता सौन्दर्य्यावतिवल्लभा ।

(१४) प्रसिद्धिविरुद्धो यथा--

शितशूलधरो विष्णु श्चचार समरान्तरे ॥

अत्र विष्णोश्चक्रधारणं प्रसिद्धं, तेन शूलधारणं विरुद्धं । आदिना विद्या विरुद्धो यथा--करजक्षतगण्डेयं विभाति पतिना सह । अत्र गण्डे नखक्षतं कामशास्त्रेण विरुद्धं ।

आद्य-शब्दात् सनियमपरिवृत्तादयः । यथा--

देव त्वं मम वन्द्योऽसि । अत्र त्वमेवेति नियमो वाच्यः ।

(१५) अनियम-परिवृत्तो यथा । चेतस्येव सदा स्फुर । अत्र चेतस्येवेति नियमो न वाच्यः ।

अथ रसदोषानाह ।

(१६) रसस्योक्तिः स्वशब्देन स्थायिसञ्चारिणो स्तथा ।

यहाँ वल्लभा पदार्थ पुनरुक्त है ।

(१४) प्रसिद्धि विरुद्ध— शितशूलधरो विष्णुश्चचार समयान्तर । विष्णु का चक्रधारण प्रसिद्ध है, किन्तु शूल धारण से विरुद्ध प्रतीत है । आदि शब्द से--विद्या विरुद्धको जानना होगा । करजक्षत गण्डेयं विभाति पतिना सह । यहाँ गण्ड स्थल में नखक्षत--काम शास्त्र विरुद्ध है । आद्य शब्द से सनियम परिवृत्तादि को जानना होगा । यथा—देव त्वं मम वन्द्योऽसि, यहाँ त्वमेवेति नियमो वाच्यः ।

(१५) अनियम परिवृत्त— यथा – चेतस्येव सदास्फुर । अत्र चेतस्येवेति नियमोन वाच्यः ।

अथ रसदोषानाह ॥

(१६) रसदोष कहते हैं । रस शब्द द्वारा रस का वर्णन, तथा

भावत्यागश्च नेतॄणां रसे दोषाः स्युरीदृशाः ॥

क्रमेणोदा०—मग्नं दाशरथेश्चेतः शृङ्गारे विधुवीक्षणात् ।

अत्र शृङ्गार-शब्दः । रामं दृष्ट्वा घनश्यामं जानक्या

स्थायि सञ्चारिका वर्णन निज वाचक शब्द से होने से रस दोष होता है । नेतृवर्ग का भाव त्याग भी रसदोष है । क्रमिक उदाहरण-रामचन्द्र का चित्त चन्द्र दर्शन से शृङ्गार में निमग्न हो गया । यहाँ शृङ्गार शब्द प्रयोग से रस दोष हुआ है । घनश्याम राम को देखकर जानकी की रति वर्द्धित हुई थी । रति शब्द का प्रयोग--अत्र रसदोष है । कान्त से चुम्बिता मदिरेक्षणा लज्जिता हुई । लज्जा शब्द का प्रयोग से रस दोष हुआ है ।

वीर रौद्र शृङ्गार शान्त प्रधान धीरोदात्त धीरोद्धत, धीरललित धीरशान्त चतुर्विध नेता हैं, इन सब के स्वभाव को छोड़कर वर्णन से रसदोष होता है । एवं अनुभाव विभाव कष्ट व्यक्ति प्रभृति भी दोष है, उदाहरण समूह का संग्रह करें ।

साहित्य दर्पण के मत में—

रसस्योक्तिः स्वशब्देन स्थायि सञ्चारिणो रपि,
परिपन्थि रसाङ्गस्य विभावादेः परिग्रहः ।
आक्षेप कल्पितः कृच्छ्रादनुभाव विभावयोः
अकाण्डे प्रथनच्छेदौ तथादीप्ति पुनः पुनः ।
अङ्गिनोऽननुसन्धान मनङ्गस्य च कीर्त्तनम्
अतिविस्तृति रङ्गस्य प्रकृतीनां विपर्य्ययः ।
अस्थानौचित्य मन्यच्च दोषा रसगतामताः ॥

रसस्योक्तिः—स्व शब्देन रसस्योक्तिरेको दोषः । स पुन द्विविधः, रसशब्देन रसस्योक्तिः, शृङ्गारादि शब्देन रसस्योक्तिश्चेति । स्थायि सञ्चारिणो भावयोरपि स्व शब्देनोक्तिरित्यन्वयः । तेन स्वशब्देन स्थायिभावस्योक्तिः, स्वशब्देन सञ्चारिभावस्योक्ति श्चेति द्वौ ।

रतिरेधत । अत्र रति शब्दः । लज्जां दधार कान्तेन चुम्बिता मदिरेक्षणा । अत्र लज्जा-शब्दः । वीररौद्रशृङ्गारशान्तप्रधाना

परिपन्थी विरोधी यो रसस्तस्य अङ्गम् अङ्गस्वरूपो जो विभावादि स्तस्य परिग्रह उपादानम् । कृच्छ्रात् कष्टात् अनुभाव विभावयो राक्षेपः प्रतीतिः कल्पितः । अकाण्डे अनवसरे रसस्य प्रथनं विस्तारः, तथाच्छेदो भङ्गश्च, तथा रसस्य पुनः पुनर्दीप्तिरुद्बोधनम् । अङ्गिनो प्रधान रसस्य अननुसन्धानम्-अनुद्बोधनम् । अनङ्गस्य--अङ्गत्वम प्राप्तस्य रसस्य कीर्त्तनम् । अङ्गस्य अङ्गरूपरसस्य अतिविस्तृति रत्यन्त बाहुल्यकरणम् । प्रकृतीनां नायकादीनां तत् स्वभावानाञ्च विपर्य्ययः, अन्यथा करणम् । अस्य अनौचित्य दोषान्तर्भावेऽपि पृथगुपन्यास स्तन्मध्ये प्राधान्य ज्ञापनार्थं गोवृष न्यायात्" अथ अन्यद् अन्यप्रकार मनौचित्यञ्चेति दोषा रसगता मताः, तेन रसस्य स्व शब्द वाच्यत्वम्, स्थायिनः स्वशब्द वाच्यत्वम् । सञ्चारिणः स्वशब्द वाच्यत्वम्, विरोधि रसाङ्ग ग्रहणं, कष्टाक्षिप्तानुभावत्वं कष्टाक्षिप्त--विभावत्वम्, अकाण्डे रसग्रहणम् । अकाण्डे रसच्छेदः पुनः पुनारसो, दीप्तिः, अङ्गि रसाननुसन्धानम्, अनङ्गरस कीर्त्तनम् । अङ्गरसाति विस्तृतिः प्रकृति विपर्य्ययः, अनौचित्यं चतुर्दश रसदोषाज्ञेयाः ।

सूक्ष्मवसनावृतः कामिनी कुचकलस इव व्यञ्जनावृत्तिगम्यः किञ्चिदायासेनैवानुभूयमानो विनायासेनानुभूयमानो रसः सुतरामेव मधुरायते, स्फीतालोक मध्यवर्त्ती निर्मुक्त परिस्फुटं स इव च साक्षादुच्यमानो विनायासानुभूयमानो रसश्चमत्कारिता विहीन इव प्रति भाति, इति रसस्य प्रकर्ष नाशकत्वादस्य दोषत्वम् ।

क्रमेण उदाहरणानि –

रसस्य स्वशब्दो रसशब्दः शृङ्गारादि शब्दश्च--
रसो नः कोऽप्यजायत । शृङ्गारे मग्न मन्तरम् ॥

स्थायिभावस्य स्व शब्दवाच्यत्वम्--अजायत रतिः । जाता--लज्जावती । 'ज्ञात्वा यौवन मस्थिरम्" अत्र यौवनास्थैर्य्यनिवेदनं

धीरोदात्त-धीरोद्धत-धीरललित-धीरशान्ता श्चत्वारो नेतारस्तेषां स्वभावान् विहाय वर्णनं च दोषः । एवमनुभाव विभाव कष्टव्यक्त्यादयश्च दोषाः । लक्ष्याण्युह्यानि । दोषान्तराणि चोक्तेषु ।

इति काव्यकौस्तुभे दोष–निर्णयः

षष्ठी प्रभा ॥

शृङ्गाररसस्य परिपन्थिनां शान्तरसस्याङ्गं, शान्तस्येव च विभाव इति शृङ्गारे तत् परिग्रहो न युक्तः ॥

धावलयति शिशिर-रोचिषि भुवमतलं लोक लोचनानन्दे ईषत् क्षिप्त कटाक्षा-स्मेरमुखी सा निरीक्षतां तन्वी" अत्र रसस्योद्दीपना-लम्बन विभावावनुभावपर्य्यवसायिनौस्थिताविति कष्ट कल्पना । "परिहरति रतिं मतिं लुनीते" अत्र रतिपरि हारादीनां करुणादावपि सम्भवात् कामिनी रूपी विभावः कृच्छ्रादाक्षेप्यः । अकाण्डे प्रथनं यथा—सङ्गरे काले दुर्य्योधनस्य भानुमत्यासमं शृङ्गार वर्णनम् ।

छेदो यथा –वीर चरिते राघवभार्गवेयो द्वाराधिरूढो 'संग्रामे "कङ्कण मोचनाय गच्छामि'' इति राघवस्योक्तिः । पुनः पुनर्दीप्ति-कुमार सम्भवे रति विलापे ।

अङ्गिनो अननुसन्धानं—यथा रत्नावल्यां वाभ्रव्यागमने सागरिकाया विस्मृतिः ॥

अनङ्गस्य कीर्त्तनं यथा—कर्पूरमञ्जर्य्यां राजनायिकयोः कृतं वसन्तस्य वर्णनमनादृत्य बन्दिवर्णितस्य प्रशंसनम् ॥ अङ्गस्य अति वस्तृतिः—किराते सुराङ्गना विलासादिः । प्रकृतयो--दिव्या अदिव्या दिव्यादिव्याश्चेति–तेषां प्रकृति विपर्य्ययः, यथा धीरोदात्तस्य रामस्य धीरोद्धतवत् छद्मना नालीबन्धन कुमार सम्भवे— उत्तम दैवतयोः पार्वती परमेश्वरयोः सम्भोग शृङ्गार वर्णनम्" इदं पित्रोः

सप्तमी प्रभा ॥

—**—

(१) एवं काव्यस्य गुणरीति-दूषणानि प्रदर्शितानि । अथास्योत्तमादि-भेदान्निरूपयति । तत्र रसादिर्व्यंग्यः काव्यस्यात्मा वस्त्वादिर्व्यंग्यस्तु तस्य प्राण इति यत्प्रागुक्तं तत् प्रदर्शयितुमुत्तम काव्यभेदान्प्रवर्त्तयति ।

वाच्यातिचारुणि व्यङ्ग्ये तत्काव्यं प्रोक्तमुत्तमम् ।

वाच्याद् व्यङ्ग्येऽतिचमत्कारिणि सति तत् पूर्वोक्तं काव्य मुत्तमम् । ध्वनि-रुत्तमकाव्यं स्यात्तथा व्यङ्ग्यो रसादिकः ।

सम्भोग वर्णनमिवात्यन्तमनुचितम् ।

अन्यदनौचित्यं--देशकालादीनामन्यथा यद्वर्णनम् । तथा सति काव्यस्यासत्यता प्रति भासेन विनेयानां उन्मुखीकारासम्भवः ॥

इति काव्यकौस्तुभे दोषनिर्णयः

षष्ठी प्रभा ॥

—**—

सप्तमी प्रभा ॥

—**—

(१) काव्य के गुण-रीति दूषण समूह का प्रदर्शन हुआ, सम्प्रति काव्य के उत्तमत्वादि का भेद निरूपण करते हैं । रसादि व्यङ्ग ही काव्य का आत्मा है, वस्त्वादि व्यङ्ग ही उसका प्राण है, इस प्रकार

ध्वन्यतेऽस्मिन्ननेन वेति व्युत्पत्त्या तदुत्तमं काव्यं ध्वनिरुक्तः।
ध्वन्यतेऽसाविति व्युत्पत्त्या तु रसादिव्यङ्ग्योऽपि ध्वनिः।
ध्वने रुत्तमकाव्यस्य द्वौ भेदाविह विश्रुतौ।

(२) एकः स्यादभिधामूलो लक्षणामूलकोऽपरः।

कथन पूर्व ग्रन्थ में हुआ है, उसका सोदाहरण उत्तम काव्यगत भेद का वर्णन करते हैं।—वाच्यार्थ से मनोरम अर्थ का व्यञ्जना वृत्ति द्वारा लाभ होता है, अतः व्यञ्जनावृत्ति प्रधान काव्य ही उत्तम काव्य है। "वाच्यातिचारुणि व्यंगे तत्काव्यं प्रोक्तमुत्तमम्" वाच्यार्थ से व्यङ्ग्यार्थ में यदि रसाधायकत्व हो तो वह व्यञ्जना प्रधान काव्य उत्तम काव्य होगा, ध्वनि ही उत्तम काव्य है, उस प्रकार रसादि भी व्यङ्ग्य ही है। ध्वन्यते अस्मिन् अधिकरण अर्थ में ध्वनि शब्दे--धातु के उत्तर औणादिक इक् प्रत्येय होता है। इस प्रकार करण वाच्य से भी ध्वनि शब्द निष्पन्न होता है। ध्वन्यते असौ" इस व्युत्पत्ति से रसादि व्यङ्ग्य भी ध्वनि होती है ॥१॥

(२) ध्वनि युक्त उत्तम काव्य के दो भेद होते हैं, प्रथमतः, अभिधामूलक है,

द्वितीय,—लक्षणामूलक है,

ध्वनिः
- अभिधामूला
  - अबाध्यवाच्यः
    - असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः
    - संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः
- लक्षणामूला
  - बाध्यवाच्यः
    - शब्दार्थोभयशक्त्युत्थः

आद्यस्त्वबाध्यवाच्यः स्याद्बाध्यवाच्यः परः स्मृतः॥
आद्योऽभिधामूलो ध्वनिरबाध्यो वाच्यो यत्र तादृशः स्यात्। अत्र वाच्यः स्वं प्रकाशयन्नेव व्यङ्ग्यं प्रकाशयति घटादिमिव दीपः। परस्तु लक्षणामूलः सतु बाध्यवाच्यः।

(३) ध्वनेरबाध्यवाच्यस्य भवेद् भेदद्वयं पुनः।
असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रम स्तथा॥

अभिधामूलो ध्वनि द्विविधः। एकोऽसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः, परस्तु लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रम इति। तयोरादिमं-दर्शयति—

(४) अर्थो यत्र भवेद् व्यङ्ग्यो रसभावादिरक्रमः।
असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो ध्वनिः स विनिगद्यते॥

उक्तस्वरूपोऽसंलक्ष्यक्रमो रसादिरर्थो यत्र व्यङ्ग्योभवेत्

आद्य,—अभिधामूलो ध्वनि, अबाध्य वाच्य होगा, वाच्य अपने को प्रकाश करके व्यङ्ग्य को प्रकाश करता है, दीप- अपने को एवं घटादि को जिस प्रकार प्रकाश करता है। किन्तु लक्षणामूल,—बाध्यवाच्य है, ॥२॥

(३) अबाध्यवाच्य ध्वनि के दो भेद होते हैं, असंलक्ष्य क्रमव्यङ्ग्य, एवं संलक्ष्य क्रमव्यङ्ग्य, । अभिधामूलक ध्वनि दो प्रकार हैं, एक असंलक्ष्य क्रमव्यङ्ग्य, अपर लक्ष्य क्रमव्यङ्ग्य, उस में से प्रथम का उदाहरण, ॥३॥

(४) जहाँ पर अर्थ--व्यङ्ग्य होता है, वह असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि है, रस भावादि अक्रम व्यङ्ग्य है। उक्त प्रकार असंलक्ष्यक्रम रसादि जिस व्यङ्ग्य का विषय होता है— वह ध्वनि--असंलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्य होगा, व्यङ्ग्य प्रतीति के प्रति—विभावादि हेतु यद्यपि हैं,—इससे क्रमसुस्पष्ट होता है, तथापि, उत्पलशतपत्रभेदनन्याय से क्रम

स ध्वनिरसंलक्ष्य क्रमव्यङ्ग्यः स्यात् । व्यङ्ग्यप्रतीते विभावादि-हेतुकत्वाद्यद्यपि अस्ति क्रम स्तथाप्यसावुत्पलपत्र-शतवेधवन्नसंलक्ष्यते, लाघवादतोऽसंलक्ष्यक्रमः सः।

उदा०—त्वं मुग्धाक्षीत्यादीनि ।

(५) पदवाक्य-प्रबन्धेषु पदांशरचनासु च ।
वर्णेषु च भजत्येष सुव्यक्तत्वं रसध्वनिः ॥

अथान्तिमं दर्शयति ।

(६) व्यङ्ग्ये च शब्दादि-शक्त्युत्थे सत्यनुस्वानसंनिभे ।
शब्दार्थोभयशक्त्युत्थो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमो ध्वनिः ॥

घण्टादौ हन्यमाने मुख्यशब्दानन्तरं यथाऽन्यः सूक्ष्म-शब्दोऽनुध्वनिनानाभ्युदेति तद्वद्व्यङ्ग्य श्चेत् क्रमलक्ष्यः स्यात्तर्हि ध्वनिलक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमाख्यो भवेत् । व्यङ्ग्यस्य शब्दार्थोभयशक्त्युत्थत्वात् स ध्वनिस्त्रिभेदः शब्दशक्तिभू र्र्थशक्तिभूरुभयशक्तिभूश्चेति ।

की प्रतीति नहीं होती है, अतः लाघव से वह असंलक्ष्य क्रम होता है, उदा०—मुग्धाक्षी" इत्यादि ।।३।।

(५) पदवाक्य, प्रबन्ध, पदांश, रचना एवं वर्ण में सुव्यक्ति रूप से रसध्वनि होती है ।।५।।

(६) अन्तिम का प्रदर्शन करते हैं—
शब्दार्थ शक्त्युत्थ प्रवाहवत् होने से--शब्दार्थोभय शक्त्युत्थ लक्ष्य क्रमव्यङ्ग्य ध्वनि है ।-घण्टानाद करने से जिस प्रकार मुख्य शब्द के अनन्तर सूक्ष्म शब्द, अनुध्वनि रूप से होता है, तद्वत् व्यङ्ग्य यदि क्रमलक्ष्य होता है, तब वह ध्वनि,—लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्याख्य होती है,

(७) तेषामाद्यमाह—वस्त्वलंकृतिरूपत्वाद्व्यङ्ग्यस्याद्यो द्विधा मतः ।

यत्र शब्दादेव वस्त्वलङ्कारौ व्यङ्ग्यौ स्याताम्, स शब्दशक्तिभूर्द्विभेदः । क्रमेणोदाहरणम्—पुष्पमार्गण मनोरथोद्धतेत्यादि अत्र त्वामतिसुन्दरं पश्यन्त्यहं स्मरेण पीड़िता यथाप्रसन्नचित्तास्याम्, तथा विधेहीति वस्तुशब्दादेव भासते । कलाभिनिभृत इत्यादि । अत्रोपमालङ्कारः शब्दादेव ।

(८) अथ द्वितीयः । वस्त्वलंकृतिरूपोऽर्थो व्यञ्जकः

व्यङ्ग्य—शब्दार्थ उभय शक्त्युत्थ होने से ध्वनि भी तीन प्रकार होगी, शब्द शक्त्युत्थ, अर्थ शक्त्युत्थ, उभयशक्त्युत्थ ।।६।।

(७)शब्द शक्त्युद्भव ध्वनिके दो भेद हैं । व्यङ्ग्य वस्तु रूप होने के कारण संलक्ष्य क्रमध्वनि द्विधा विभक्त होता है । शब्द शक्ति मूलक वस्तु ध्वनि, एवं शब्द शक्ति मूलक अलङ्कार ध्वनि ।

जहाँ शब्दसे ही वस्तु अलङ्कार व्यञ्जित होते हैं-वह शब्द शक्ति मूलक के दो भेद हैं । क्रमशः उदाहरण यह है—"पुष्पमार्गण मनोरथोद्धता" यहाँ तुम को अतिसुन्दर देखकर मैं कन्दर्प शर पीड़िता हूँ, जिस से मैं प्रसन्न चित्त हो जाऊँ, वैसा करो ।

अपर उदाहरण—
पथिक ! नात्र स्रस्तरमस्ति मनाक् प्रस्तरस्थले गोष्ठे उन्नत पयोधरं प्रेक्ष्य पुनर्यदि वससि तद्वस" हे पथिक ! प्रस्तर स्थल गोष्ठ में आसन नहीं है, उन्नत मेघ को देखकर यदि बैठना चाहो तो बैठो । यहाँ स्रस्तरादि शब्द शक्ति के द्वारा यदि उपभोग सक्षम हो, तो यहाँ ठहरो—इस प्रकार ध्वनित हुआ ।

अलङ्कार रूप का उदाहरण—कलाभि निभृत' यहाँ उपमालङ्कार शब्द से ही व्यक्त हुआ है ।

सम्भवो स्वतः ।

वक्तृप्रौढ़ोक्तिमात्राद्वा सिद्ध स्तेन चतुर्विधः ।।

एकैको वस्त्वलङ्कारौ स यस्माद्व्यंजयत्यतः ।

तद्गामी ध्वनिरेषः स्यादर्थशक्त्युद्भवोऽष्टधा ।।

---

(८) वस्तु अलङ्कृति रूप व्यञ्जक अर्थको स्वतः सम्भवी करते हैं।

'वस्तु वालङ्कृति र्वेति द्विधार्थः सम्भवी स्वतः कवेः प्रौढ़िक्ति सिद्धो वा तन्निबद्धस्य वेतिषट् । षड् भिस्तै र्व्यंजमानस्तु वस्त्वलङ्कार रूपकः । अर्थ शक्त्युद्भवो व्यङ्ग्यो यादि द्वादश भेदताम्' ।

सम्प्रदि अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि का विभजन करते हैं—

वस्तु अलङ्कार भिन्न पदार्थ अलङ्कृति अलङ्कार ।

१ स्वतः सम्भविना वस्तुना वस्तुध्वनिः

२ स्वतः ,, ,, अलङ्कारध्वनिः

३ स्वतः सम्भविना अलङ्कारेण वस्तुध्वनिः

४ स्वतः सम्भविना अलङ्कारेण अलङ्कारध्वनिः

५ कवि प्रौढ़िक्ति सिद्धेन वस्तुना वस्तु ध्वनिः

६ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन वस्तुना अलङ्कारध्वनिः

७ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन अलङ्कारेण वस्तु ध्वनिः ।

८ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन अलङ्कारेण अलङ्कार ध्वनिः,

ये—अष्टविध हैं ।

१० कवि निबद्ध जन प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन वस्तुना वस्तु ध्वनिः ।

११ कवि निबद्ध जन प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन वस्तुना अलङ्कार ध्वनिः ।

१२ कवि निबद्ध जन प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन अलङ्कारेण वस्तु ध्वनिः ।

१३ कवि निबद्ध जन प्रौढ़ोक्ति सिद्धेन अलङ्कारेण अलङ्कार ध्वनिः ।

इस प्रकार अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि के द्वादश भेद हैं ।

— ※ —

अथ शक्तिभूर्ध्वनिरष्टविधः

(१) तथाहि अर्थोऽपि ध्वनौ व्यञ्जकः, स च स्वतःसम्भवी लोकेऽपि दृष्टः तस्मिन्नदृष्टोऽपि वक्तुः प्रतिभामात्रात् सिद्धश्चेति । द्विविधोऽपि वस्त्वलङ्काररूपत्वाच्चतुर्विधः सन्नेकैको वस्त्वलङ्कारौ यद्व्यंजयत्यतस्तद्व्यञ्जको ध्वनिरष्टविधः ।

क्रमेणोदा०—द्रौपद्याः कुलवध्वा दु शासन-दुष्टवेष्टितादपि यः ।

कुरुसंसदि गुरुपुरतो ररक्ष लज्जां स नो हरिः पायात् ।

अथ शक्तिभूर्ध्वनिरष्टविधः ।

(१) अनन्तर शक्ति से उद्भूत ध्वनि का वर्णन करते हैं, ये अष्ट विध होते हैं ।

ध्वनि में अर्थ भी व्यञ्जक होता है । स्वतः स्वम्भवी का अर्थ करते हैं । औचित्य के कारण अयोग्य होने पर भी अन्तर एवं बाहर भी सम्भव पर रूप से ही मान्यता है, एवं यथा श्रुत शब्दार्थ से सुस्पष्ट बोध जिस का होता है, उस को सब लो 'सम्भव' कहते हैं । इस प्रकार मानने के कारण उसका स्वतः सम्भवी कहते हैं । जिस की वास्तविकता नहीं है, किन्तु कवि प्रतिभा से अर्थात् निरङ्कुश कल्पना से ही वस्तु सिद्धि होती है । उसको प्रौढ़ोक्ति सिद्ध कहते हैं । इस प्रकार वस्तु अलङ्कार भेद से वह अष्ट विध हैं । क्रमशः उदाहरण-

जो श्रीकृष्ण—कौरव सभा में गुरुजन के समक्ष में दुष्ट दुःशासन वेष्टित कुलवधू द्रोपदी की लज्जा रक्षा किये थे, वह श्रीकृष्ण हरि—हम सब की रक्षा करें ।

यहाँ पर निज भक्त लाधव को हरि तिलमात्र भी सहन नहीं करते

अत्र निजभक्तलाघवं तिलमात्रमपि हरि नं सहते इति वस्तु वस्तुना व्यज्यते ।

मम क्षमस्वालि निजस्य दोषं
कृपाप्रपोषं कुरुदेवि भद्रे ।
वक्रालकाः कान्तमुखाब्जरुढ़ाः
शोभां तवामी कलयन्तु कांचित् ।

(२) अत्र विपरीतरतिमाचरन्त्य स्तव क्षुद्रकुन्तला ललाट लग्नाः सन्तः फुल्लारविन्द-प्रसक्ता भृङ्गा इव भास्यंतीति वस्तुनोपमा ।

गञ्जनान्नपि बिभेषि गुरूणां खञ्जनाक्षि यमुनामधुनागाः
अञ्जनाभ इह कुञ्जर एकः कञ्जनालदलभञ्जनकारी ॥

हैं । यही वस्तु के द्वारा वस्तु व्यञ्जित हुई है ।

"मम क्षमस्वालिनिजस्य दोषं कृपा प्रपोषं कुरुदेवि भद्रे ।
वक्रालकाः कान्तमुखाब्जरूढ़ाः शोभांतवामी कलयन्तु काञ्चित्"

हे सखि ! हे देवि भद्रे ! मेरा दोष क्षमा करो और कृपा करो, कान्त मुखाब्जा तुम्हारे वक्रअलक समूह तुम्हारी किसी शोभा को कह रहे हैं ।

(२) यहाँ विपरीत रति विहार से तुम्हारे क्षुद्र कुन्तल समूह ललाट लग्न होने के कारण—फुल्लारविन्द में प्रसक्त भृङ्ग के समान प्रतीत होते हैं । यह वस्तूपमा है ।

गञ्जनान्नहि बिभेषि गुरूणां खञ्जनाक्षि यमुनामधुनागाः ।
अञ्जनाभ इह कुञ्जर एकः कञ्जनाल दलभञ्जनकारी ॥

हे खञ्जनाक्षि ! गुरुगण की गञ्जना से तुम भीत नहीं हो, इस

अत्राधुनेत्यकाण्डेऽपि यदगा स्तेन स्नातुं नागाः, किन्तु कृष्णांगसंगायैवेति काव्यलिङ्गालकारस्तेन त्वं गुरूणां गञ्जनान्न बिभेषीति, तस्मात्तव न भयमपि तु तत्सङ्ग विरहादेवेति वस्तु । एवं कुञ्जर इति कृष्णाह्वयापह्नवा-दपह्नुति रलङ्कारस्तेन कृष्णकुञ्जरयोरुपमा चेति । एषु चतुर्विधोऽर्थः स्वतः सम्भवी ।

चलन्ति चरणादीनि भानव्या यदि भावतः ।
पतन्ति पृथुला स्तर्हि सौन्दर्य्यामृत-विन्दवः ॥

(३) अत्र स्वाभाविकात्पदादि-स्पन्दनादेवं माधुर्य्यवृष्टि रतौ लोकोत्तरेयमिति वस्तुना रासलास्यविधौ वा कीदृक् तद्-वृष्टिरिति वस्तु ।

समय यमुना को मत जाओ, कञ्जनालदल भञ्जनकारी अञ्जनाभ एक कुञ्जर यहाँ है ।

यहाँ असमय में भी जो जाना है, इस से स्नान हेतु जाना उचित नहीं है । किन्तु कृष्णाङ्ग सङ्ग हेतु जाना है, यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है, अतः तुम तो गुरुजन की गञ्जना से भीत नहीं हो, अतएव तुम्हारे में उस से भय है ही नहीं, किन्तु कृष्ण सङ्ग विरह से ही भय है, यह वस्तु व्यञ्जित है । इस प्रकार "कुञ्ज" शब्द से कृष्ण नाम गोपन हेतु अपह्नुति अलङ्कार हुआ है. इस से कृष्ण कुञ्जर की उपमा हुई है । इस में चतुर्विध अर्थ--स्वतः सम्भवी है ।

"चलन्ति चरणादीनि भानव्या यदि भावतः ।
पतन्ति पृथुलास्तर्हि सौन्दर्य्यामृत विन्दवः ॥"

भानुनन्दिनी के चरण चालन यदि भाव से होता है तो वहाँ विपुल सौन्दर्य्यामृत विन्दु समूह निपतित होते हैं ।

निजं मुखमनाच्छाद्य लीलाकमलकोरकं ।
राधे किमु कराङ्गुल्या विकाशयितुमीहसे ।।

अत्र वस्तुना रूपकं । त्वन्मुखं चन्द्रात्मकमिति ।

गाढ़मालिगितु कान्ते पर्य्यन्तमुपसर्पति ।
निर्याति हृदयान्मानस्तन्व्याः पोडनभीरिव ।।

अत्रोत्प्रेक्षया प्रत्यालिङ्गनादि दानं वस्तु ।

किं वर्ण्यं तव गोविन्द सेयं शारद्-चन्द्रिका ।
यत्कीर्त्ति भामिनी-भाले कस्तूरीतिलकीयति ।

---

(३) यहाँ स्वाभाविक चरण संचालन से ही यदि माधुर्य्य वृष्टि होती है तो यह निश्चय ही अलौकिक है, अतएव रासलास्य समय में किस प्रकार अमृत वृष्टि होगी यह सहज ही अनुमेय है । यहाँ वस्तु के द्वारा वस्तु ध्वनि है ।

"निज मुखमनाच्छाद्य लीलाकमलकोरकम् ।
राधे किमु कराङ्गुल्या विकाशयितुमीहसे ।।

हे राधे ! निज मुख को आच्छादित न करके ही कराङ्गुलि के द्वारा लोला कमल कोरक को क्या विकसित करना चाहती हो ?

यहाँ वस्तु के द्वारा रूपक व्यञ्जित हुआ है, तुम्हारा मुख चन्द्रात्मक है ।

"गाढ़मालिङ्गितु कान्ते पर्य्यन्तमुपसर्पति ।
निर्याति हृदयान्मानस्तन्व्याः पोड़नभीरिव ।।

कान्त प्रगाढ़ आलिङ्गनहेतु सम्मुखमें उपस्थित होने पर नायिका के हृदय से पीड़न भीति के समान मान भी पलायन करता ।

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा प्रत्यालिङ्गनादि दान रूप वस्तु व्यञ्जित है ।

"किं वर्ण्यं तव गोविन्द सेयं शारद्--चन्द्रिका ।
यत्कीर्त्ति भामिनी--भाले कस्तूरीतिलकीयति ।

अत्र त्वत्कीर्त्तौ सत्यां किमर्थमियं कौमुदीति प्रतीपमुपमया एषु व्यञ्जकोऽर्थो वक्तुः प्रतिभया निर्मितः तदेवमष्टधा ॥

एक एव द्विशक्त्युत्थो

व्यङ्ग्याद्युत्थे सति ध्वनेरेक एव भेदः ।

यथा,— निःशेष-तापसंहर्त्ता जगज्जीवनदायकः ।

मुदिरो मुरवैरी च न भवेत्कस्य वल्लभः ।

अत्र शब्दार्थयोः शक्त्या घनकृष्णयोरुपमा व्यज्यते । तदेवमभिधामूलो ध्वनि द्वादशविधः प्रोक्तः । विवक्षितान्यपरवाच्योयमुच्यते ।

हे गोविन्द ! तुम्हारी कीर्त्ति का वर्णन क्या करे । यह वही शारद चन्द्रिका है, जिस की कीर्त्ति भामिनी के ललाटमें कस्तूरी तिलकवत् शोभित है ।

यहाँ तुम्हारी कीर्त्ति विद्यमान होने पर कौमुदी की क्या आवश्यकता है ? यहाँ उपमा के द्वारा प्रतीप व्यञ्जित हुआ है । यहाँ व्यञ्जक अर्थ वक्ता की प्रतिभा के द्वारा निर्मित है । इस रीति से अष्ट प्रकार भेद प्रदर्शित हुआ । शब्दार्थ शक्ति से उत्थित एक प्रकार है । अर्थात् शक्तिसे उद्भव व्यङ्ग्य के द्वारा एक ध्वनि का भेद होता है ।

उदाहरण—निःशेष ताप सहर्त्ता जगज्जीवन दायकः ।

मुदिरो मुरवैरी च न भवेत् कस्य वल्लभः ॥"

निःशेष ताप अपनोदन कारी जगत् को जीवन--जल--दायक मुदिर--मेघ, एवं मुरवैरी कृष्ण किस का प्रिय नहीं होगा ?

यहाँ शब्दार्थ— उभय शक्ति से घन एवं कृष्ण की उपमा व्यञ्जित हुई है । अतएव--अभिधामूल ध्वनि द्वादश विधः हैं । विवक्षित अन्य पर वाच्य का वर्णन करते हैं ।

४ अथ लक्षणामूलो दर्श्यते ।

अर्थान्तरोपसंक्रान्तः सर्वथा च तिरस्कृतः ।
वाच्यः स्याद्बाध्यवाच्यस्य तेनासौ द्विविधः स्मृतः ॥

बाध्यवाच्यो ध्वनि द्विविधः । अर्थान्तरोपसंक्रान्तवाच्योऽत्यन्ततिरस्कृत वाच्यश्चेति । यत्र वाच्योऽर्थः स्वयमनुपयुक्तः स्वविशेषरूपेऽर्थान्तरे परिणमते स प्रथमः । यत्र त्वत्यन्तानुपपन्नः सन् स्वविपरीतेनार्थान्तरेण परिणमते सद्वितीयः । क्रमेणोदा०—

तस्यैव वाणी वाणी स्यात्कृष्णं यः परिकीर्त्तयेत् ।

अथ लक्षणामूलो दर्श्यते ।

(४) अनन्तर लक्षणामूलक ध्वनि को प्रदर्शित करते हैं, अर्थान्तर उपसंक्रान्त एवं अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य भेद से द्विविध ध्वनि भेद का वर्णन करते हैं ।

अर्थान्तरोपसंक्रान्तः सर्वथा च तिरस्कृतः ।
वाच्यः स्याद्बाध्यवाच्यस्य तेनासौ द्विविधः स्मृतः ॥

लक्षणा मूलक अविवक्षित वाच्य ध्वनि दो प्रकार हैं । अर्थान्तर संक्रमित वाच्य–एवं अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य । कारिकोक्त बाध्य शब्द का अर्थ वाच्य है, अतः वह दो प्रकार हैं । अर्थान्तरोपसंक्रान्त वाच्य, अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य । जहाँ वाच्य--अर्थ–स्वयं अनुपयुक्त होने के कारण--स्वविशेष रूप अर्थान्तर में संक्रमित होता है, अर्थात परिणत होता है–वह प्रथम ध्वनि है । और जहाँ निज विषय में अत्यन्त अनुपपन्न होकर निज विपरीत विषय में परिणत होता है । किन्तु अर्थान्तर के द्वारा नहीं वह द्वितीय है । क्रमिक उदाहरण—

अत्र द्वितीयो वाणीशब्दः पुनरुक्तिभयात् साधारणवाणीरूपेऽर्थे बाधितः सन् साफल्यादिगुणविशिष्टम् वाणी-रूपमर्थं बोधयति । व्रजपतिमतिसुन्दराङ्गमित्यादि ॥ अत्र भगवद्दर्शननिषेधरूपो वाच्योर्थोऽनुपपन्नः सन् स्वविपरीत-तद्विधि-रूपतया पर्य्यवस्यतीति द्वेधा बाध्यवाच्यः अयमविवक्षितवाच्यः कथ्यते शुद्धसंकर-संसृष्टि-भेदाद्बहुविधोऽप्ययं । पदवाक्य-प्रबन्धादिगतत्वेनापि तादृशः । तदेवमसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्य ध्वनेर्निरूपणेनेह काव्यात्मा रसादिर्व्यङ्ग्यो दर्शितः । लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमादेर्ध्वनेर्निरूपणेनतु काव्यप्राणोवस्त्वादिव्यङ्ग्यो निर्दिष्टम् ।

इति काव्यकौस्तुभे ध्वनिभेदनिर्णयः सप्तमी प्रभा ॥

"तस्यैव वाणी वाणी स्यात्कृष्णं यः परिकीर्त्तयेत् ।

यह मत अर्थान्तर संक्रमित ध्वनि का यह उदाहरण है । उसकी वाणी ही वाणी है, जो कृष्णका वर्णन करती है । यहाँ द्वितीय वाणी शब्द पुनरुक्ति भय से साधारण वाणीरूप अर्थ में बाधित होने पर वह साफल्यादि गुण विशिष्ट वाणी रूप अर्थ को बोध कराती व्रजपतिमति सुन्दराङ्ग मित्यादि । यहाँ भगवद् दर्शन निषेध रूप वाच्य अर्थ-- अनुपपन्न होकर निज विपरीत दर्शन रूप विधि रूप में पर्यवसित होता है—इस रीति से बाध्य वाच्य द्विविध हैं । इस को अविवक्षित वाच्य कहते हैं । शुद्ध, संकर, संसृष्टि भेद से यह अनेकविध हैं । पद वाक्य, प्रबन्धादि गत होने पर भी वह अनेकविध होते हैं । अतएव असंलक्ष्य क्रमव्यङ्ग ध्वनि का निरूपण से ही काव्य की आत्मा रसादि व्यङ्ग्य है, यह दर्शाया गया है । लक्ष्य व्यङ्ग्य ध्वनि का निरूपण के द्वारा काव्य को प्राण स्वरूप वस्तु प्रभृति भी व्यङ्ग्य हैं,

यह निर्दिष्ट हुआ।

इति काव्य कौस्तुभ में ध्वनि भेद निर्णय
सप्तमी प्रभा।

अष्टमी प्रभा।

अथ मध्यमकाव्यमाह ॥

—※—

(१) वाच्यादचमत्कारिणि काव्यं मध्यममुदीर्यते।

व्यङ्ग्ये वाच्यादचारुणि सति तत्पूर्वोक्त काव्यं मध्यम-मुच्यते। तच्चासुन्दरमस्फुटमगूढमितराङ्गं वाच्यासिद्धयङ्गम्। तच्च व्यङ्ग्यं।

अष्टमी प्रभा।

अथ मध्यमकाव्यमाह।

—※—

अनन्तर मध्यम काव्य का लक्षण कहते हैं।

(१) वाच्यादचमत्कारिणि—काव्यं मध्यममुच्यते॥

मुख्यावृत्ति से व्यञ्जना वृत्ति वर्णित कविकृति में यदि चमत्कारिता न हो तो वह मध्यम काव्य है। अर्थात् व्यङ्ग्य-व्यञ्जना वृत्ति लभ्य कविकृति अर्थ में यदि वाच्यार्थ से मनोहरता न हो तो उस काव्य को मध्यम काव्य कहते हैं। कारण वह वाच्यसिद्ध अर्थ से व्यञ्जना वृत्ति लभ्य अर्थ में असुन्दर, अस्फुट, अगूढ़ाङ्ग है, सुतरां वह मध्यम काव्य है। यहाँ तच्च शब्द से व्यङ्ग्य को जानना होगा।

(२) तत्रासुन्दरं यथा—

आगतो निशि मदीयमन्दिरं कुन्ददन्ति किल कोऽपि तस्करः।
निद्रिता न्यपजहार चक्षुषी पूरयन्मम स नीलकान्तिभिः।

अत्र कृष्णानुरागादनिद्राहमिति व्यङ्ग्यम्, तच्च वाच्यापेक्षया न चारु।

(३) अस्फुटं यथा—

देव्यः सवीक्ष्य गोविन्दं धृतचक्रं कुतूहलात्।
परिष्कुर्वन्ति गात्राणि वासोऽलङ्कार-चन्दनैः॥

अत्र भगवच्चक्रेण निहता वीराः पतयो नः स्युरिति तान् वरीतुं ताः स्वगात्राणि मण्डयन्तीति व्यङ्ग्यमस्फुटम्।

(२) असुन्दर का दृष्टान्त उपस्थित करते हैं।

"आगतो निशि मदीयमन्दिरं कुन्ददन्ति किल कोऽपि तस्करः।
निद्रितान्यपजहार चक्षुषी पूरयन्मम स नीलकान्तिभिः॥

हे कुन्ददन्ति! रात्र काल में एक तस्कर मेरा मन्दिर में आया था, उसने नीलकान्ति के द्वारा मेरे नयनों से निद्रा को अपहरण कर लिया। यहाँ कृष्णानुराग से मैं अनिद्रिता रही, यह ही व्यङ्ग्य लभ्य अर्थ है, किन्तु वह अर्थ वाच्य लभ्य अर्थ की अपेक्षा मनोहर नहीं है।

(३) अस्फुट का निदर्शन प्रस्तुत करते हैं—

"देव्यः संवीक्ष्य गोविन्दं धृतचक्रं कुतूहलात्।
परिष्कुर्वन्ति गात्राणि वासोऽलङ्कार-चन्दनैः॥

देवीगण—कुतूहलवश गोविन्द को चक्र धारण करते देखकर वसन भूषण अलङ्कार एवं चन्दन के द्वारा निज निज अङ्ग को विभूषित करने लगीं।

(४) अगूढं यथा—

उत्कीर्णानीत्यादि । अत्र पिबन्तीति सादरावलोको लक्ष्य स्तस्य गाढ़ासक्ति र्व्यंङ्ग्या, स च वाच्यवत् प्रकाशादगूढ़ैव ।

(५) इतराङ्गम् यथा—

कान्तश्रवोंते स्वनतेत्युदीर्य्यपादाङ्गुलीयानि पदाङ्गुलीषु ।
समर्पयन्तीं सुमुखो वयस्याम् लीलाम्बुजेन प्रजहार तन्वी ॥

अत्र हास्यस्य शृङ्गारोऽङ्गम् ।

भगवत् चक्र के द्वारा निहत वीरवृन्द हमारे पति हो, इस प्रकार मानकर उन सब का वरण करने के निमित्त निज निज अङ्ग को भूषित करने लगीं, यह जो व्यङ्ग्यार्थ है, वह अस्फुट है ।

(४) अगूढ़ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

"उत्कीर्णानीत्यादि" यहाँ पान कर रही हैं, यहाँ पिबन्ति कहने का तात्पर्य्य सादर अवलोकन में है । और इस में ही गाढ़ आसक्ति दिखायी गयी है, किन्तु वह वाक्यवत् प्रकाशित होने के कारण--यह वाक्य के समान प्रकाशित हुआ । अतः अगूढ़ है ।

(५) इतरांग को उदाहरण के द्वारा दर्शाते हैं—

कान्तश्रवोंते स्वनतेत्युदीर्य्य पादाङ्गुलीयानि पदाङ्गुलीषु ।
समर्पयन्तीं सुमुखी वयस्यां लीलाम्बुजेन प्रजहार तन्वी ॥

तुम्हारी ध्वनि कान्त के श्रुति मधुर है, इस प्रकार कहने पर ललना निज पदाङ्गुलि समूह को निज अपर पादाङ्गुलि के ऊपर स्थापन करने लगी । यह देखकर सुमुखी तन्वी सखी लीलाम्बुज के द्वारा उसको प्रहार किया ।

यहाँ हास्य रस का अङ्ग शृङ्गार हुआ है ।

(६) वाच्यसिद्धयङ्गम् यथा—

निषीदाच्युत गच्छामि किमत्र तव वीक्षया ।
इत्यामन्त्रण-भावज्ञः, सस्वजे युवतिं हरिः ॥

अत्राच्युतेत्यादि-पदव्यङ्ग्यमामन्त्रणेत्यादिवाच्यसिद्धेरङ्गं तदुपपादकत्वात् । एव मन्येऽपि भेदा बोध्याः ॥

इति काव्यकौस्तुभे मध्यमकाव्यनिर्णयो अष्टमी प्रभा ॥

—※—

---

(६) वाच्य सिद्धयङ्ग का वर्णन करते हैं—

निषीदाच्युत गच्छामि किमत्र तव वीक्षया ।
इत्यामन्त्रण-भावज्ञः सस्वजे युवतिं हरिः ॥

हे अच्युत ! यहाँ अवस्थान करो, मैं जा रही हूँ, तुम्हारे दर्शन से यहाँ क्या लाभ है ? यह सुनकर आमन्त्रण भावज्ञ हरिने उस युवति को आलिङ्गन किया । यहाँ अच्युत इत्यादि पद व्यङ्ग्य अर्थ का लाभ आमन्त्रण इत्यादि पद के वाच्यार्थ के द्वारा सिद्ध होने पर वह उस का अङ्गस्थानीय हुआ । इस प्रकार अन्या भेद समूह का उदाहरण को जानना चाहिये ।

इति काव्य कौस्तुभे मध्यम काव्य निर्णयोऽष्टमी प्रभा ॥

—※—

नवमी प्रभा ।

अथ कनिष्ठकाव्यमाह ॥

(१) अव्यङ्ग्यम् तु कनिष्ठम् स्यात्काव्यम् शब्दार्थ-विचित्रम् ।

अस्फुटव्यङ्ग्यरहितम् काव्यम् कनिष्ठम् । तच्च शब्द-अलङ्कारयोगाच्छब्दचित्रम् । अर्थालङ्कारयोगात्तर्थचित्रमिति द्विविधम् ।

अथालङ्काराणां लक्षणं ॥

(२) शब्दार्थवर्त्तिनः सन्तं रसमुत्कर्षयन्ति ये ।
तेऽलङ्कारा यथात्मानं देहस्थाः कङ्कणादयः ॥

नवमी प्रभा ।

अथ कनिष्ठकाव्यमाह ।

(१) अनन्तर कनिष्ठ काव्य का वर्णन करते हैं—
अव्यङ्ग्यं तु कनिष्ठं स्यात् काव्यं शब्दार्थ विचित्रम् ॥"

व्यञ्जना वृत्ति लभ्य अर्थ विहीन शब्दार्थ वैचित्री युक्त काव्य को कनिष्ठ काव्य कहते हैं । प्रकाश्य रूप से व्यङ्ग्य रहित काव्य हि कनिष्ठ काव्य है । शब्दालङ्कार के योग से वह विचित्र होता है, एवं अर्थालङ्कार के योग से अर्थ चित्र भी होता है ।

अथालङ्काराणां लक्षणं ।

(२) शब्दार्थ अनुवर्त्ती होकर जो रसको उत्कर्ष मण्डित करता है—वह शब्दालङ्कार है । जिस प्रकार शरीर में कङ्कण प्रभृति शरीर

यथा कुण्डलादयः शरीरशोभातिशायिनः शरीरिणमुपकुर्व्वन्ति, तथानुप्रासोपमादयः शब्दार्थ-शोभातिशायिनः सम्भविनं रसमुपकुर्वन्तीत्यलङ्कारास्ते । तेषु शब्दालङ्कारानाह ।

(३) वर्णसाम्यमनुप्रासः पूर्वसंस्कार-बोधकृत् ।

असंयुक्तसंयुक्तरूपस्यानेकस्य व्यञ्जनस्य सकृत्साम्यं छेकानुप्रासः, असंयुक्त-संयुक्तरूपस्यानेकस्य च व्यञ्जनस्यासकृत्साम्यं वृत्त्यनुप्रासः क्रमेणोदाहरणम्—

जहार हरिणाक्षीयं कुन्देन्दु-मधुरैः स्मितैः ।
कुण्डलोज्ज्वलगण्डश्री हृदयं विदयं मम ।

शोभा सम्पादक होते हैं—उस प्रकार काव्य शरीर की शोभा वृद्धि कारी शब्दालङ्कार है ।

जिस प्रकार कुण्डलादि, शरीर शोभा सम्पादन करके शरीरी को उपकृत करते हैं, उस प्रकार अनुप्रास उपमा प्रभृति शब्दार्थ की शोभा को विस्तार कर रस को उपकृत करते हैं । अतः इस को अलङ्कार करते हैं । उस के मध्यमें शब्दालङ्कार का वर्णन करते हैं ।

(३) वर्ण साम्यमनुप्रासः पूर्वसंस्कार बोधकृत् ।
वर्ण साम्य को अनुप्रास कहते हैं,जो प्राकृत संस्कार का परिचायक है ।

असंयुक्त एवं संयुक्त रूप अनेक व्यञ्जन का सकृत् साम्य होने पर छेकानुप्रास होता है । असंयुक्त एवं संयुक्त रूप अनेक व्यञ्जन का असकृत् साम्य होने पर वृत्त्यनुप्रास होता है ।

क्रमिक उदाहरण इस प्रकार है—

"जहार हरिणाक्षीयं कुन्देन्दु-मधुरैः स्मितैः ।
कुण्डलोज्ज्वलगण्डश्री हृदयं विदयं मम ॥

कुमार कचभारस्ते सारः संप्रति चेतसि ।
विभग्नशरवन्मग्नो लग्नोऽप्येतत् किमद्भुतम् ॥

शब्दसाम्यं च सः प्रोक्तो भेदे तात्पर्य्यमात्रतः ।
शब्दानां शब्दस्य च साम्यं लाटानुप्रासः ॥

शब्दार्थयोरभेदेऽपि तात्पर्य्यमात्राद्भेदे सतीति यमकाद्भेदः, क्रमेणोदा०—

कुमार कचभारस्ते सारः संप्रति चेतसि ।
विभग्नशरवन्मग्नो लग्नोऽप्येतत् किमद्भुतम् ॥

कुण्डलों के द्वारा उज्ज्वल गण्डस्थोयुक्त इस हरिणाक्षीने कुन्देन्दु मधुर स्मित के द्वारा मेरा हृदय अपहरण किया है । तुम्हारे नवीन केश पाश समूह सम्प्रति विभग्न शर के समान चित्त में मग्न होकर अवस्थित है, यह कैसा आश्चर्य्य कर है ?

छेकानुप्रास एवं वृत्यानुप्रास का उक्त उदाहरण है ।

"शब्दसाम्यं च सः प्रोक्तो भेदे तात्पर्य्यमात्रतः ।
शब्दानां शब्दस्य च साम्यं लाटानुप्रासः ॥

भेद में तात्पर्य्य हेतु जहाँ शब्दार्थ की समता होती है, उसे लाटानुप्रास कहते हैं—लक्षणान्तर यह है—

शब्दार्थयोः पौणरुक्त्यं भवेत्तात्पर्य्य मात्रतः लाटानुप्रास इत्युक्तः ।

वक्ता के कथनानुसार जहाँ शब्दार्थ की पुनरुक्ति होती है--उसे लाटानुप्रास कहते हैं । उदाहरण—

"स्मेर राजीव नयने । नयने किं निमीलतः । पश्य निर्जित कन्दर्पं कन्दर्प विभ्रतं हरिम् ॥"

शब्दार्थ का अभेद होने पर भी तात्पर्य्य मात्र से भेद होने पर यमक से यह भिन्न हुआ । क्रम पूर्वक उदाहरण—

नार्चितो येन गोविन्द स्तस्य तीर्थाटनेन किम् ।
अर्च्चितो येन गोविन्द स्तस्य तीर्थाटनेन किम् ॥

अत्र भगवद्विमुखस्य तीर्थाटनादपि न किञ्चित्फलं, तत्संमुखस्य तु तेन विनापि तत्फलमस्तीति तात्पर्य्यं भिद्यते ।

तारुण्योल्लसिते पुंसि तरुणी वत शर्करा
शर्करा क्व नु माधुर्य्यमीदृशं भजतेतराम् ॥

इह प्रथमं शर्करापदं विधेयपरं, द्वितीयं त्वनुवादपरं ।

(४) भिन्नार्था संभवत्यर्थे स्वरव्यञ्जन-संहतिः ।
क्रमेण तेन चेद्गच्छेदावृत्ति यमकं तदा ॥

"नार्चितो येन गोविन्द स्तस्य तीर्थाटनेन किम् ।
अर्च्चितो येन गोविन्द स्तस्य तीर्थाटनेन किम् ॥

यहाँपर भगवद्विमुख का तीर्थ पर्य्यटन निष्फल है, किन्तु भगवद् उन्मुख को तीर्थ पर्य्यटन के विना भी तीर्थपर्य्यटन का फल लाभ होता है । इस प्रकार तात्पर्य्य प्रकट है ।

नार्च्चितो, येन, गोविन्द स्तस्य तीर्थाटनेन किम् ।
अर्च्चितो येन, गोविन्द स्तस्य तीर्थाटनेन किम् ॥

उक्त समान शब्द समूह का वर्णन हुआ ।

"तारुण्योल्लसिते पुंसि तरुणी वत शर्करा ।
शर्करा क्व नु माधुर्य्यमीदृशं भजतेतरां ॥

यहाँ पर प्रथम शर्करा पद विधेय पर है, द्वितीय शर्करा पद अनुवाद पर है । अनुप्रास पञ्चविध हैं । छेक, वृत्ति, श्रुति, अन्त्य एवं लाटानुप्रास ।

(४) यमकालङ्कार का वर्णन करते हैं—

यद्यर्थः सम्भवेत्तदा द्वौ वर्णसंधौ भिन्नार्थकौ, यदि न संभवेत्तदा द्वावपि व्यर्थौ । एकतरार्थवत्त्वे तु सार्थव्यर्थौ चेति भूरिभेदं यमकं ।

उदा०—सुरसार्थ-भूषितपदं ब्रह्मादिभिरधिकभक्तिसंनम्रैः ।
सुरसार्थ-भूषितपदैः स्तवैः स्तुतः केशिहा जयति ॥

अत्र द्वौ सार्थौ ।

भिन्नार्था सम्भवत्यर्थे स्वरव्यञ्जन संहतिः ।
क्रमेण तेन चेद्गच्छेदावृत्ति यमकं तदा ॥

यदि अर्थ का सम्भव हो तो दो वर्ण सङ्घ भिन्नार्थक होते हैं । यदि भिन्नार्थक का सम्भव न हो तो दोनों ही व्यर्थ हैं । एक प्रकार अर्थवान् होने से सार्थ व्यर्थ होते रहते हैं,इस प्रकार अनेक भेद यमक के होते हैं । लक्षणान्तर यह है ।

"सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वर व्यञ्जन सन्तते: ।
क्रमेण तेनैवावृत्ति र्यमकं विनिगद्यते ॥"

स्वर व्यञ्जन समूह के भिन्न अर्थ होने पर भी पूर्व उच्चारण क्रमसे उसका पुनरुच्चारण हेतु यमक कहते हैं । यहाँ दोनों पदों की सार्थकता होती है, कहीं एकपद निरर्थक होता है, कहीं तो दोनों पद निरर्थक होते है । इस को सूचित करने के निमित्त 'सत्यर्थे' पद का प्रयोग किया गया है । क्रम पूर्वक पद की पुनरावृत्ति होना अभीप्सित है । दमो मोद स्थल में क्रम नहीं है, अतः यमकालङ्कार नहीं हुआ है । किन्तु वृत्त्यनुप्रास है । पद-श्लोक--पादका कुछ अंश, श्लोकार्द्ध, पादार्द्ध की आवृत्ति से यमक होता है, और इसके भेद भी अनेक होते हैं—उदाहरण यह है—

"सुरसार्थ--भूषितपदं ब्रह्मादिभिरधिकभक्तिसंनम्रैः ।
सुरसार्थ--भूषितपदैः स्तवैः स्तुतः केशिहा जयति ॥

कुसुमराजिविराजिविभूषणेत्यादौ तु द्वावपि व्यर्थौ ॥

आयाता शरदाहो शरदाहो मान्मथः प्रखरः।
सरति सरः कलहंसी कलहं सीमन्तिनी त्यजति ॥

अत्र सार्थौ च सार्थव्यर्थौ चेति ॥२॥

(५) पौनरुक्त्यावभास श्चेदर्थस्यापाततो भवेत्।
पुनरुक्तवदाभास स्तदा स्याद्भिन्नशब्दगः॥

सुरवृन्द के हितकारी रूप में प्रसिद्ध अधिक भक्ति नम्र ब्रह्मादि के द्वारा सुरसा अर्थ युक्त पदान्वित पद समन्वित स्तव के द्वारा स्तुत केशिहा श्रीकृष्ण जय युक्त हो रहे हैं। 'यहाँ सुरसार्थ भूषित पदैः'' उभय पदावृत्ति सार्थक है किन्तु कुसुमराजि विराजि विभूषण' यहाँ पदद्वय ही निरर्थक हैं।

"आगता शरदाहो शरदाहो मान्मथः प्रखरः।
सरति सरः कलहंसो कलहंसीमन्तिनी जयति॥"

अहो प्रखर मान्मथ शरदाहो शरदा आरहा है, कलहंसो सरोवर को जा रही है एवं सीमन्तिनी कलह को जय करती है। यहाँ शरदा हो शरदा हो, सरति सरः सार्थक है, कलह हंसी कलहंसी मन्तिनी सार्थक निरर्थक है।

(५) पौनरुक्त्यावभास श्चेदर्थस्यापाततो भवेत्।
पुनरुक्तवदाभास स्तदा स्याद्भिन्नशब्दगः॥
"आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भाषणं।
पुनरुक्त वदाभासः सभिन्नाकार शब्दगः॥

जिस में शब्द भिन्न हो, और अर्थ एक प्रकार होने से पुनरुक्त के समान प्रतीति होती है—उसको पुनरुक्तवदाभास कहते हैं।

उदाहरण—भुजङ्ग कुण्डली व्यक्त शशि शुभ्रांशु शीतगुः।
जगन्त्यपि सदा पायादव्याच्चेतोहरः शिवः॥"

विभिन्नाकार-सभङ्गाभङ्ग-शब्दनिष्ठः सः । उदाहरणम्
अबलास्त्रीरिपुः कृष्णाद् बुधात्सौम्यान्न शंकते ॥२॥

(६) श्लेषो यदि पदैः श्लिष्टै रनेकोऽर्थोऽभिधीयते ।
वर्णादिश्लेषणादेष तदभावाच्च सम्भवेत् ॥

अत्रभुजङ्ग कुण्डलादि शब्दानां आपात मात्रेण सर्पाद्यर्थतया पौनरुक्त्य प्रतिभासनं । पर्य्यवसाने तु भुजङ्ग रूप कुण्डल विद्यते यस्येत्याद्यन्यार्थत्वम् । पायात्–अव्यात्'' अत्र क्रिया गतोऽयमलङ्कारः। पायाविपद्स्यापायादिति पर्य्यवसानात् '' भुजङ्ग कुण्डलीति शब्दयो: प्रथम शब्दस्यैव परिवृत्ति सहत्वं । हरः शिव इति द्वितीयस्यैव परिवृत्ति सहत्वम् । शशी शुभ्रांश्विति द्वयोरपि । 'भाति सदा न त्याग ' इति न द्वयोरपीति शब्द परिवृत्ति सहत्वासहत्वाभ्यामःयोभया लङ्कारात्वम् ।

भुजङ्ग कुण्डली, चन्द्रमा--कर्पूर के समान धवल वर्ण मनोहर शिव, विपत्ति से मेरी रक्षा सदा करें, यहाँ आपात मात्र से भुजङ्ग कुण्डली शब्द द्वारा 'सर्प' अर्थ होने से पुनरुक्त का भान होता है। अर्थानुसन्धान से भुजङ्ग रूप कुण्डल है जिनका, इस प्रकार अर्थ बोध होता है । 'पायाद् अव्यात' यहाँ क्रिया गत अलङ्कार है, अपाय से रक्षा करें, यह अर्थ है। भुजङ्ग कुण्डली स्थल मे प्रथम भुजङ्ग शब्द का परिवर्त्तन हो सकता है । हरः शब्द: स्थल में शिव शब्द का परिवर्त्तन सहत्व है। 'शशि शुभ्रांशु' यहाँ दोनों का ही परिवर्त्तन सहत्व है। ' भाति न सदान--त्यागः यहाँ भी उभय की परिवर्त्तन योग्यता है, इस प्रकार परिवर्त्तन सहत्व एवं असहत्व से ही उस में शब्दार्थ अलङ्कार प्राप्त हुआ।

विभिन्नाकार सभङ्ग अभङ्ग शब्द निष्ठ ही पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार है।

उदाहरण—''अबला स्त्रीरिपुः कृष्णाद् बुधात् सौम्यान्न शङ्कते ।

यथा—विधौ विरुद्धे हरितः प्रसादं नोपभुंजते ।। अत्र विधावित्युकारे-कारयोः श्लेषणं । हरित इति विभक्त्योः ।

दयितासि ममेत्यासीत्सीता-राधवयोर्वचः ।।

अत्र दयितेति प्रत्यययोः ।

वृद्धि ते दधते बुद्धि विधुमोदा यथाब्धयः ।। अत्र दधत इति प्रकृत्यो-र्वचनयोश्च । विधुमोदा इति लिङ्गयोश्च ।

चमूरु वसति भाति मथुरैषा यथाटवी ।। अत्र चमूविति पदयोः ।

वर्णादिश्लेषणाभावेऽपि यथा–

---

(६) "श्लेषो यदि पदैः श्लिष्टैरनेकोऽर्थोऽभिधीयते ।
वर्णादिश्लेषणादेष तदभावाच्च सम्भवेत् ।।

श्लिष्ट पद के द्वारा यदि अनेक अर्थ का बोध होता है, तो श्लेष कहते हैं । वर्णादि श्लेष के द्वारा एवं वर्णादि अश्लेष के द्वारा यह श्लेषालङ्कार होता है ।

"श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष उच्यते ।
वर्ण प्रत्यय लिङ्गानां प्रकृत्योः पदयोरपि ।
श्लेषाद्विभक्तिः वचन भाषाणामष्टधाचसः ।।"

अनेकार्थ युक्त शब्दों के प्रयोग से जब एकवार उच्चारण से ही अनेकार्थ का बोध होता है, तो उसे श्लेष कहते हैं । ये श्लेष अष्ट विध हैं । वर्ण श्लेष, प्रत्यय श्लेष, लिङ्ग श्लेष, प्रकृति श्लेष, पद श्लेष, विभक्ति श्लेष, वचन श्लेष, एवं भाषाश्लेष । क्रमशः उदाहरण यह है—श्रीराधा के प्रति सखी की उक्ति—

"अनुकूले विधौ वज्या सद्य एव प्रपद्यताम् ।
प्रतिकूले विधावद्य याति सा ते विनंक्ष्यति ।।

विधि अनुकूल होने पर अभिसार मङ्गलमय होगा, प्रतिकूल

भूभृग्नितम्ब-संसर्गान्महिषी मुदिता बभौ ।

अत्र प्रकरणादिभिरभिधानियमनाभावादर्थ द्वयं वाच्यम् । तत्रैकोऽभिधया बोध्यः, परस्तु तत्सदृशया निरूढलक्षणयेति । एष शब्दश्लेषः सभङ्गाभङ्गतया द्विविधः प्रागुक्तलक्ष्येष्ववगन्तव्यः । नन्वभङ्गोऽर्थश्लेषः स्यादर्थयोस्तत्र श्लेषणात् ।

विधि होने से वृज्या अर्थात् गमन विफल होगा, यहाँ विधौ--विधु--विधि इ--उ कार का एकरूप होने से श्लेष हुआ है, पूर्वार्द्ध में विधि शब्द से दैव का बोध होता है उत्तरार्द्ध में विधु शब्दसे चन्द्र का बोध होता है । "किरणा हरिणाङ्कस्य दक्षिणश्च समीरणः ।
रामाणां श्लिष्ट कृष्णानां सर्व एव सुधाकिरः ।।"

चन्द्र किरण मलय समीरण श्रीकृष्णालिङ्गित ललना के पक्ष में अमृत है । श्लिष्टः—कृष्णो यानि स्तासां, सुधाकिर इत्यत्र किरण विशेषणत्वात् बहुत्वं, समीरण विशेषणत्वादेकत्वम् ।

यहाँ 'सुधाकिर'—क्विप्—-प्रत्यय का श्लेष है. सुधां किरन्तीति सुधाकिर' कृ विक्षेपे' इति कृधातोः क्विप् प्रत्ययान्तात् प्रथमाया बहु वचनम् । किं वा बहु वचन एक वचन का रूप सुधाकिर, एक प्रकार होने से वचन श्लेष भी हुआ ।

लिङ्ग श्लेष का उदाहरण—

"विकसन्नेत्रनीलाब्जे तथा तस्याः स्तनद्वयी ।
हारिणी गोपिकाकान्त तुभ्यं दत्तां सदा मुदम् ।।"

हे गोपिका कान्त ! विकसित नेत्र नीलाब्ज एवं वक्षोजद्वय हार से शोभित होकर तुम्हें सदा आनन्दित कर रहे हैं, हारिणीत्यस्य अब्ज विशेषणत्वे नपुंसकत्वं, द्वयी इत्यस्य विशेषणं स्त्री लिङ्गत्वं वचन श्लेषस्तु 'दत्तां हारिणी' इत्युभयत्र ।

प्रकृति श्लेष का दृष्टान्त—

मेवं । अर्थभेदे शब्दभेदस्वीकारात् । तस्माद्यत्र शब्दपरिवृत्तौ

"अयं शस्त्राणि भुजया शास्त्राणि तु रसज्ञया ।
नन्दनस्तव हे नन्द ! वक्षति स्म कपालकः ॥"

हे नन्द ! तुम्हारे नन्दन--भुज के द्वारा अस्त्र का प्रकाश, एवं रसना के द्वारा शास्त्र का प्रकाश करते हैं, कपालकः स्वान् भक्तान् यहाँ 'वह' धातु एवं वच धातु से वक्ष्यति पद निष्पन्न होकर श्लेष हुआ है ।

"हरिदिक् पराङ्मुखतया स्खलतः पतनं भवेद खलस्याप्यलम् ।
स्खलनं सदा जल निधौ सवितुः स्थिति कृन्नपाददशशत्यपि सा"

हरि विमुख होने से सब ओर से पतन होता है, सूर्य्य जलराशि में प्रविष्ट होने से दशशत किरण सूर्य्य को पतन से बचाने के निमित्त असमर्थ होती हैं । यहाँ हरि पाद शब्द के द्वारा श्लेष है, श्लेषेण हरेरिन्द्रस्य पादः– किरण वाची च ।

"रसयन् माधवरसं कृष्णकर्मा सुरादृतः
भक्तसर्वजनः कर्णभवान् परम वैष्णवः ॥"

सुरादृत कृष्ण कर्माजन--माधव की सेवा में रत होकर भक्त एवं परम भक्त होता है । यहाँ पदभङ्ग प्रकृति समास के वैलक्षण्य से पद श्लेष हुआ है, किन्तु प्रकृति श्लेष नहीं है, माधवो वसन्तः, श्लेषेण मधुदैत्यस्य अपत्यं माधवः, कृष्ण कर्म्मा—श्लेषेण--मलिन कर्म्मा । सुरा--देवाः । श्लेषेण--मदिरा, परम वैष्णवः, श्लेषेण परं अवैष्णावः ।

"खगेन हरिचक्रेण व्याकुली भावमीयुषाम् ।
दैत्य शंवल जातीनां ददृशे ततिराहवे ॥

युद्ध स्थल में गरुड़ एवं चक्र के आक्रमण से दैत्यगण व्याकुल हो गए थे । खगेन—हरि चक्रेण--आकाश गामिनरं चक्रेण--श्लेषेण, चक्र वाकाख्य पक्षिणा, आहवे युद्धे, यहाँपर चक्रेण शब्द श्लिष्ट होने कारण एवं एक विभक्ति होने से प्रकृति श्लेष हुआ । अन्यथा सर्वत्र

श्लेषत्वं भज्यते स शब्दश्लेषः। यथा विधावित्यादिकः। यत्र

पद श्लेष प्रसङ्ग ही होगा।

विभक्ति श्लेष का उदाहरण—

"हर सर्वस्य दुःखानि भव भवस्य सौख्यदः।
यतस्त्वं शिवतां यातः स्वर्धुनी जल सेवया॥"

सब के दुःख हरण करो, और सुखद हो, कारण, गङ्गाजल के सम्पर्क से तुम तो शिव हो गये हो। यह भङ्ग-अभङ्ग श्लेष है, श्लेष से शिव की स्तुति होगी, यहाँ हर-पक्ष में-शिव का सम्बोधन, पक्ष में 'भव' धातु का (तिङ् विभक्ति) रूप है, इस प्रकार 'भव' शब्द का भी दो स्वरूप हैं, यह भेद प्रकृति प्रत्यय श्लेष में पर्य्यवसित होने से भी सुबन्त तिङन्त होकर अतिशय चमत्कार होगा।

भाषा श्लेष का उदाहरण—

"न उप उमरा अध्यमूहं र अलंकभी
इगोह मे हिअअम्। किन्तु सदाहीस्वरं वञ्च इहा रन्तरे कादुम्॥

यहाँ संस्कृत प्राकृत भाषा में श्लेष है। यह श्लेष--सभङ्ग एवं अभङ्ग रूप से द्विविध हैं। शब्द विश्लषण निष्पन्न सभङ्ग है। शब्द सारूप्य से अनेकार्थ का प्रकाशक होने पर अभङ्ग होता है। सभङ्ग अभङ्ग उभय रूप को उभयात्मक कहते हैं। वाक्य के किसी अंश में सभङ्ग किसी अंश में अभङ्ग होता है। पद श्लेष, विभक्ति श्लेष भाषा श्लेष रूप से यह तीन प्रकार होते हैं, वर्ण श्लेषादि पञ्चकेवल अभङ्ग रूप में ही होते हैं, अतः वर्ण श्लेषादि पञ्च, पद श्लेष तीन, विभक्ति श्लेष तीन, भाषाश्लेष तीन, समुदाय के जोड़ से चतुर्दश प्रकार होते हैं। उदाहरण—

"येन ध्वस्त मनो भवेन बलिजित् कायः पुरा स्त्रीकृतो
योऽप्युद्वृत्त भुजङ्ग हारवलयो गङ्गां च योऽधारयत्।
यस्याहुः शशिमच्छिरो हर इतिस्तुत्यं च नामामराः
पायात् स स्वयमन्धकक्षय कर स्त्वां सर्वदोमाधवः॥"

तन्न भज्यते स त्वर्थं श्लेषः ॥ यथा--सन्तापहर्त्ता हरि

"हरि हर" उभयात्मक यह आशीर्वाद श्लोक है। इस में सभङ्गादि भेदत्रय का उदाहरण हैं। चरण प्रहार से जिन्होंने शकटासुर को विनष्ट किया, जिन्होंने वामन रूप से बलि को जीता, अमृत परिवेशन हेतु जिन्होंने मोहिनी रूप धारण किया, अधासुर को जिन्होंने मारा, गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया, कृष्ण रूप से, कूर्म रूप से पृथिवी की रक्षा की, राहु का शिरश्छेदन किया, एवं कूटनीति से प्रभास तीर्थ में यदुबंशीयों को विनष्ट किया, सर्वाभीष्टद लक्ष्मी पति माधव नारायण आप सब की रक्षा करें।

शिव पक्ष में—

जिन्होंने कामदेव को विनष्ट किया, त्रिपुरासुर विनाश के समय बलि विजयी नारायण के शरीर के शरीर को भी अस्त्र के द्वारा आक्रमण किया, जो सर्प के हार वलय धारण करते हैं, मस्तक में गङ्गा को धारण करते हैं, अमरगण, शशिशेखर नाम से जिन की स्तुति करते हैं, अन्धक नामक असुर विनाश कारी उमाधव पार्वती पति महादेव तुम सब की रक्षा करें।

माधव पक्ष में—सर्व दाता माधव तुम सब की रक्षा करें, ध्वस्त शब्द से सौन्दर्य्य का प्रकाश हुआ है। मोहिनी रूपको स्त्रीवेश कहते हैं, कालिय दमन के समय भुजङ्ग के द्वारा परिवेष्टित हुये थे, रवसे-वंशी ध्वनि से सब को द्रवित करते हैं, अधारयत् शब्द से अवास्थापयत् जानना होगा, राहु का शिरहरण कारी, अन्धक वंश में निवास कारी उमाधव के पक्ष में त्रिपुरनाशन समय में बलिजित् विष्णु शरीर को अस्त्र का विषय बनाया, जिनके शिर में चन्द्रमा विराजित है, हर—यह स्तवनीय नाम है, यहाँ 'येन' इत्यादि में सभङ्ग श्लेष है, "अन्धक" इत्यादि में अभङ्ग श्लेष हैं, दोनों का अवस्थान एकत्र सम्भव होने से सभङ्ग अभङ्गात्मक हुआ है।

ग्रन्थोक्त लक्षणोदाहरण की सङ्गति करते हैं—उदाहरण—

रम्बुदश्चेति ॥४॥

हाराद्याकारहेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते ।

"विधौ विरुद्धे हरितः प्रसादं नोप भुञ्जते"

यहाँ 'विधौ' शब्द में 'उकार' इकार का श्लेषण है। "हरितः" स्थल में विभक्ति का श्लेष है।

"दयितासि ममेत्यासीत् सीता--राधवयोर्वचः"

यहाँ दयिता में प्रत्यय का श्लेष है। 'वृद्धि' ते वधते बुद्धि विधुमोवा यथाब्धयः" यहाँ 'दधते' प्रकृत वचन का श्लेष है। विधु मोवा' एवं लिङ्ग का श्लेष है। "चमूरु वसति भाति मधुरेषा यथाटवी" यहाँ 'चमूरु' पद में श्लेष है। वर्णादि में श्लेष न होने पर भी श्लेष का उदाहरण यह है—

"भूभृन्नितम्ब संसर्गान्महिषी मुदिता बभौ ॥

यहाँ प्रकरणादि के द्वारा अभिधा सार्थक न होने से दो अर्थ करना उचित है। उस में एक तो अभिधा के द्वारा बोध होता है। उस में एक तो अभिधा के द्वारा बोध होता है। किन्तु उस के सदृश होने के कारण—निरूढ़ लक्षणा के द्वारा अपर अर्थ होता है।

यह शब्द श्लेष—सभङ्गाभङ्ग भेद से द्विविध हैं अभङ्ग। अर्थ श्लेष ही होना चाहिये, उभय अर्थ का बोध वहाँ होता है। उभय अर्थ का ही यहाँ श्लेष है ? उत्तर में कहते हैं—"मैवं' इस प्रकार कहना ठीक नहीं है। अर्थ भेद हेतु शब्द भेद, स्वीकृत है। अतएव जहाँ शब्द का परिवर्त्तन से श्लेष विनष्ट होता है–वहाँ शब्द श्लेष है। जिस प्रकार "विधौ" में है। इस प्रकार—विधि, विधु उकार युक्त के द्वारा अर्थ द्वय होते हैं। जहाँ पृथक् नहीं होता है--वहाँ अर्थ श्लेष होता है।

उदाहरण—"सन्ताप हर्ता हरिरम्बुदश्च"

यहाँ सन्ताप हरण कारी हरि एवं मेघ है।

(७) हारबन्धो यथा—कुरु तरुणि रुषं नोपताप-प्रपन्ने
भज निजविजनं तारहारस्फुरन्ती ।
स्तनकनकनगौ शातपातप्रतप्तां
तनुमनु तनुतां भावशाल्वयवत्ताम् ॥

खड्गबन्धो यथा—

वीणावाणी सुन्दरीवृन्दमुख्या ख्याता सद्भिर्लक्षणैः कुञ्जदेवी ।
वीक्षांचक्रे माधवं भावसारा रासोल्लासात्कापि तं फुल्लनीवी ॥

कपाटबन्धो यथा—

स्मराघनाशि भासुरं जराभरातिसादनं ।
मुरारिनाम भावरं परावरात्म साधनं ॥

---

(७) हारादि आकार में वर्ण समूह का सन्निवेश होने पर हारबन्ध अलङ्कार होता है। उदाहरण—

'कुरु तरुणि रुषं नोपताप प्रपन्ने
भज निजविजनं तारहारस्फुरन्ती ।
स्तनकनकनगौ शातपातप्रतप्तां
तनुमनु तनुतां भावशाबल्यवत्ताम् ॥

खड्ग के आकार में श्लोकों के वर्णों का सन्निवेश होने से खड्ग बन्ध होता है।

वीणावाणी सुन्दरीवृन्दमुख्या ख्याता सद्भिर्लक्षणैः कुञ्जदेवी ।
वीक्षांचक्रे माधवं भावसारा रासोल्लासात्कापि तं फुल्लनीवी ॥

कपाट बन्ध का उदाहरण—

''स्मराघनाशि भासुरं जराभरातिसादनं ।
मुरारिनाम भावरं परावरात्म-साधनं ॥

एष गोमूत्रिकाश्वगतिश्च ।

चक्रबन्धो यथा—गन्धाकृष्टगुरून्मदालिनि वने हारप्रभातिप्लुतं
संपुष्णन्तमुपस्कृताध्वनि यमीवीचिश्रियो रञ्जकं ।
सद्यस्तुंगितविभ्रमं सुनिभृते शीतानिलैः सौख्यदे
देवं नागभुजं सदा रसमयं तं नौमि कञ्चिन्मुदे ॥

स्तव्यकवि-नामगर्भं चक्रं ।

मुरारिनाम, अति तेजस्वी परावरात्म साधन है, एवं कन्दर्प रूप अघ विनाशि तेजस्वी चक्रसदृश है, तथा जरा प्रभृति विनाशक है ।

यह गोमूत्रिकाबन्ध एवं अश्वगतिका भी दृष्टान्त है ।

चक्र बन्ध का उदाहरण यह है ।

"गन्धाकृष्टगुरून्मदालिनि वने हारप्रभातिप्लुतं
सपुष्णन्तमुपस्कृताध्वनि यमीवीचिश्रियो रञ्जकम् ।
सद्यस्तुंगितविभ्रमं सुनिभृते शीतानिलैः सौख्यदे
देवं नागभुजं सदा रसमयं तं नौमि कञ्चिन्मुदे ॥

अनिर्वचनीय आनन्द लाभ हेतु गन्ध के द्वारा समाकृष्ट अलिवृन्द समन्वित वन में सुमार्जित मार्ग को पुष्ट कारी एवं यमुना तरङ्ग शोभा को वर्द्धन कारी रसमय नागभुज देव को प्रणाम करता हूँ, जो सुखमय शीतानिल युक्त निभृत कानन में रसाविष्ट हैं ।

यह स्तव्य कविनाम गर्भ चक्रबन्ध है । पद्म बन्ध का सलक्षण उदाहरण— पद्माद्याकार हेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते ।

अत्र तथाविध लिपि सन्निवेश चमत्कार विधायितामपि वर्णानां तथाविध श्रोत्राकाश समवाय विशेष वशेन चमत्कार विधायिभि र्वर्णैरभेदेनोपचाराच्छब्दालङ्कारत्वं । एते च बन्धाः श्रीरसामृत सिन्धु कारिभिर्निर्म्मित वर्णक्रम उदाहरिष्यन्ते—तत्र पद्म बन्धो यथा—

कलवाक्य सदालोक कलोदार मिलावक ।

पद्मबन्धो यथा—कलवाक्य सदालोक कलोदार मिलावक ।
कवलाद्याद्भुतानूक कनुताभीरबालक ॥५॥

कवलाद्याद् भुतानूक कनूताभीर बालक ॥

वर्णों के सन्निवेश से पद्मादि के आकार की वर्णना होने से चित्रनामक अलङ्कार होता है । आदि शब्द से खड्ग मुरज, चक्र गोमूत्रिक, महापद्मबन्ध, सर्प बन्ध, प्रतिलोमानुलोम्यसम, सर्वतोभद्र को जानना होगा ।

पद्मादि आकार से लिपि का सन्निवेश से चित्त आनन्दित होने पर भी वर्ण श्रवण से भी हृदय आनन्दित होता है, अतः वर्ण के सहित अभेद उपचार से यह शब्दालङ्कार कहलाता है, प्रस्तुत बन्ध का उदाहरण श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें है । उससे प्रस्तुत करते हैं—

कविः साक्षात् कृतिं प्रार्थयते—कलेति, हे आभीर बालक ! श्रीनन्दगोप सूनो त्वं मिल, प्रत्यक्षीभव । हे कल वाक्य मधुर भाषिन् हे सदालोक ! सत् साधुष्वालोको यस्य । कलाभि वैदग्धीभि रुदार हे अवक रक्षक ! कवलाद्यै र्दध्योदन ग्रासवेत्रवेणु विषाणै रद्भुताश्रियर्य रूपः हे अनूक ! अनुगतः उः शिवोयं, शेषादिभाषेति सूगात् कप् । हे कनुत, केन—ब्रह्मणा स्तुतेत्यर्थः ।

एवमुक्तं ब्रह्मणा, "नौमिडद्यते वपुषे तड़िदम्बराय
गुञ्जा वतंस परिपिञ्छलसन् मुखाय
वन्य स्रजे कवल वेत्र विषाण वेणु
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ इति

भागवतीय प्रथम स्कन्धाष्टमाध्यये "पृथयेत्थं कलपदैः परिनूताखिलोदयः" इत्यत्र टीकायां नू स्तुतावित्यस्मात् परिनुत इति वक्तव्ये दीर्घ च्छन्दोऽनुरोधेव इति तद्वदत्र ।

यह पद्मबन्ध है । हे मधुर भाषिन् ! हे सज्जन गोचर हे विदग्ध क्रीड़ापर ! हे सर्वरक्षक ! हे आभीर बालक हे श्रीकृष्ण ! दध्योदनादि

(८) वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामन्योऽर्थो यदि कथ्यते ॥

क्रमेणोदा०—राधे त्वं कुपिता त्वमेव कुपिता स्रष्टासि भूमे र्यतो
माता त्वं जगतां त्वमेव जगतां माता न विज्ञोऽ परः ।
देवि त्वं परिहास-केलिकलहे ऽनन्ता त्वमेवेत्यसौ
स्मेरो वल्लवसुन्दरीमवनमन् शौरिः श्रियं वः क्रियात् ।

के द्वारा तुम्हारी अनुगत हैं, एवं ब्रह्मा भी तुम्हारा स्तव किए हैं। सम्प्रति तुम मेरे नयनों के निकट उपस्थित होओ।

(८) वक्रोक्ति का लक्षण करते हैं—

वक्रोक्तिः श्लेष काकुभ्यामन्योऽर्थो यदि कल्पते"

श्लेष एवं काकु के द्वारा यदि अन्य अर्थ का बोध होता है तो--उसे वक्रोक्ति अलङ्कार कहते हैं—

"अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद् यदि ।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्ति स्ततोद्विधा ।

द्विधा—श्लेष वक्रोक्तिः काकु वक्रोक्तिरिति । क्रमशः उदाहरण--

"राधे त्वं कुपिता त्वमेव कुपिता स्रष्टासि भूमे र्यतो
माता त्वं जगतां त्वमेव जगतां माता न विज्ञोऽपरः ।
देवि त्वं परिहास-केलिकलहे ऽनन्ता त्वमेवेत्यसौ
स्मेरो वल्लवसुन्दरीमवनमन् शौरिः श्रियं वः क्रियात् ॥

प्रथम वक्ता के वाक्यो को प्रथम श्रोता अन्यार्थमान लेने से वक्रोक्ति होती है। यह श्लेष से तथा विकृतस्वर से उच्चारित होने से वक्रोक्ति नामक अलङ्कार होता है। (१) श्लेष वक्रोक्ति (२) काकु वक्रोक्ति भेदसे यह द्विविध हैं।

श्रीराधा के सहित श्रीकृष्ण वाक्य यह है—हे राधे! तुम कुपिता हो, मैं नहीं—तुम कुपिता हो अर्थात् धरणी के पिता हो, कारण भूमि के सृजन कर्त्ता तुम्हीं हो, तुम तो जगत् की माता हो,

अत्र कुपितेति सभङ्गेन श्लेषेण मातेति त्वभङ्गेन ॥

यथा वा—भवित्री रम्भोरु त्रिदशवदनग्लानिरधुना
स ते रामः स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।
इयं यास्यत्युच्चै विपदमधुना वानरचमू
र्लंघिष्टेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात् पठ पुनः ॥
अतसीकुसुमश्यामं शतसीमन्तिनी-वृतं ।
सतृष्णं कृष्णमालोक्य हृदयं न विद्रूयते ॥

नहीं, मैं जगन्माता नहीं हूँ! तुम्हीं जगत् पालक हो, अपर नहीं।

हे देवि! तुम तो परिहास केलि कलह में अनन्त हो, नहीं--तुम्हारा नाम ही अनन्त है। इस प्रकार वाक्यालाप में स्मित मुख व्रजसुन्दरी वृन्द को सम्मान प्रदान कारी शौरि--कृष्ण तुम सब को मङ्गल प्रदान करें।

यहाँ "कुपिता" शब्द में सभङ्ग श्लेष है, 'माता' शब्द में अभङ्ग श्लेष है।

अपर उदाहरण—

"भवित्री रम्भोरु त्रिदश वदन ग्लानि रधुना
स ते रामः स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः
इयं यास्यत्युच्चै र्विपदमधुना वानरचमू
र्लंघिष्टेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात् पठ पुनः ॥

हे रम्भोरु! अधुना देवगण ग्लानि प्राप्त करेंगे। लक्ष्मण सहायक वह तुम्हारे राम--समराङ्गन में स्थिर नहीं रह सकता, वानर गण भी विपद् ग्रस्त हो जायेंगे। इस वाक्य के द्वितीय चरण के षष्ठ अक्षर के पश्चात् प्रयुक्त 'न' कार को लोप करके पाठ करने से "लक्ष्मण सख राम युद्ध जयी होंगे—एवं अन्यान्य पदों का अर्थ इस के अनुकूल में होगा।

अत्रैकया निषेधेऽर्थे प्रयुक्तो नञ् परया तु विधौ घटितः।६।

(९) भाषाणां श्लेषणं यत्र तद्भाषासमकं मतं ॥

एकविधैः शब्दैः विविधा भाषा यदि निबध्यन्ते, तदा भाषासमकं नाम।

उदा०—मञ्जुलमणिमंजिरे कलगम्भीरे विहार-सरसीतीरे।
विरसासि केलिकीरे किमालि धीरे च गन्धसारसमीरे॥

"अतसी कुसुमश्यामं शतसीमन्तिनी वृतम्।
सतृष्णं कृष्णमालोक्य हृदयं न विदूयते॥"

शतसीमन्तिनी वृत—

अतसी कुसुम के सदृश श्याम वर्ण—स तृष्ण श्रीकृष्ण को देखकर हृदय दुःखी नहीं होता है।

यहाँ एक ही निषेधार्थक 'न' कार का प्रयोग से प्रतीत होता है कि—हृदय व्यथित होता है। भावार्थ से अर्थात् काकु से यह बोध हुआ है।

(९) भाषासम अलङ्कार का लक्षण करते हैं—

भाषाणां श्लेषणं यत्र तद् भाषासमकं मतम्।

एकविध शब्द समूह के द्वारा विविध भाषा का बोध होने से भाषासम अलङ्कार कहते हैं। श्रीराधा के प्रति सखी की उक्ति—

"मञ्जुलमणिमञ्जिरे कलगम्भीरे विहार--सरसीतीरे।
विरसासि केलिकीरे किमालि धीरे च गन्धसारसमीरे॥

यहाँ संस्कृत, प्राकृत, शौर सेनी, प्राची, अबन्ती नागर अपभ्रंश में शब्द प्रयोग एक प्रकार ही होता है। श्लोकार्थ—हे आलि! सखि! अस्फुट ध्वनि युक्त शब्दायमान मणिमय नूपुर के प्रति केलि सरोवर के तट के प्रति, क्रीड़ोपकरण शुक के प्रति, मन्द मन्द प्रवाहित चन्दन स्पर्शि समीरण के प्रति—क्या तुम अनुराग शून्या

अत्र संस्कृतप्राकृत-शौरसेनी-प्राच्यवन्त्यादिभिरेकविधः श्लेषः ॥७॥

(१०) च्योतयित्वाक्षरं किञ्चिद्दत्वा चान्यत् प्रकाश्यते।
अन्योऽर्थो यत्र तत् प्राहु श्चुचतदत्ताक्षरं बुधाः॥

यथा—कूजन्ति कोकिलाः साले यौवने फुल्लमम्बुजम्।
किं करोतु कुरङ्गाक्षी वदनेन निपीड़िता॥

अत्र रसाल इति वक्तव्ये साल इति रश्च्युतः। वन इत्यत्र यौवन इति यौर्दत्तः। वदनेति मे च्युते वश्च॥ यथा वा—

हो गई हो? जहाँपर विविध भाषाओं के शब्द में एकता होती है। इस प्रकार शब्द युक्त रचना को भाषासम अलङ्कार कहते हैं। मञ्जुल मणिमञ्जीरे कल गम्भीरे, विहार सरसी तीरे विरसासि केलिकोरे, किमालि धोरे—गन्धसार समीरे, शब्द समूह उक्त भाषा समूह में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

(१०) च्युत दत्ताक्षर अलङ्कार का वर्णन करते हैं—

च्योतयित्वाक्षरं किंचिद्दत्वा चान्यत् प्रकाश्यते।
अन्योऽर्थो यत्र तत् प्राहु श्चुचतदत्ताक्षरं बुधाः॥

अक्षर का प्रयोग न करके अथवा प्रयोग करके जहाँ अन्य अर्थ का प्रकाश किया जाता है, जहाँ च्युत दत्ताक्षर अलङ्कार होता है।

"कूजन्ति कोकिलाः साले यौवने फुल्लमम्बुजम्।
किं करोतु कुरङ्गाक्षी वदनेन निपीड़िता॥

यहाँ 'रसाल' कहना उचित था, किन्तु 'साल' कहा गया है। एवं 'वने' कहना था, किन्तु 'यौवने' कहा गया है।

'वदनेन' यहाँ 'ने' कहना उचित था, एवं 'व:' कार का प्रयोग भी नहीं हुआ है। अपर उदाहरण—

पूर्णचन्द्रमुखी रम्या यामिनी निर्मलाम्बरा ।
करोति कस्य न स्वांतमेकान्तमदनोत्तरं ॥

अत्र ये च्युते के दत्ते कामिनीति ॥८॥

(११) अन्योर्थो विस्फुटं यत्र बिन्द्वादि-प्रच्युतावपि ।
प्रतीयते विदः प्राहुस्तद्बिन्दुचुचतकादिकं ॥

यथा—सुन्दरि बिन्दुच्युतके तव नैपुण्यं बभूव पुण्येन !
शशिमुखि वशीकृताऽभूद्वंशी मम यत्त्वया त्वरया ॥

अत्र त्वदधीना मे वंशीति स्फुटमपरोऽर्थः ॥

"पूर्ण चन्द्रमुखी रम्या यामिनी निर्म्मलाम्बरा ।
करोति कस्य न स्वान्तमेकान्तमदनोत्तरम् ॥"

पूर्णचन्द्र मुखी रम्या निर्म्मलाम्बरा यामिनी किसके चित्त को एकान्त मदनोन्मत्त नहीं करती है ? यहाँ "यामिनी" पदस्थित 'य' कार अपसारण कर 'ककार सन्निवेश से कामिनी पद होगा । एवं प्रसङ्ग सङ्गति भी होगी ।

(११) बिन्दुच्युत का वर्णन करते हैं—
"अन्योऽर्थो विस्फुटं यत्र बिन्द्वादि-प्रच्युतावपि ।
प्रतीयते विदः प्राहुस्तद्बिन्दुच्युतकादिकम् ॥"

बिन्दु प्रभृति न होने पर भी यदि अन्यार्थ का बोध होता है तो—उसे बिन्दुच्युत अलङ्कार कहते हैं ।

उदाहरण—"सुन्दरि बिन्दु च्युतके तव नैपुण्यं बभूव पुण्येन ।
शशिमुखि वशीकृताऽभूद्वंशी मम यत्त्वया त्वरया ॥

हे शशिमुखि सुन्दरि ! बिन्दु न होने पर भी पुण्य से तुम्हारा नैपुण्य होगा ही, कारण, तुमने आशु मेरी बंशी को आयत्त में किया । यहाँ तुम्हारी अधीना मेरी वंशी है, इस प्रकार अपर अर्थ

मन्द्रैः कलापिनामेते पक्षिणां धरणीरुहाः ।
विरुतैः स्वागतानीव वारिवाहाय तन्वते ॥

इह मन्द्रैरिति विसर्गे च्युते मन्द्रैःकलापिनामिति । एवं वर्णच्युतकादिकमूह्यं ॥९॥

(१२) न लक्ष्यते स्फुटं यत्र पदसन्धान-कौशलात् ।
क्रियादि मदपि प्राज्ञैः क्रियागुप्तादि तत् स्मृतम् ॥

यथा—पाण्डवानां सभामध्ये दुर्योधन उपागतः ।
तस्मै गां च सुवर्णं च सर्वाण्याभरणानि च ॥

सुस्पष्ट है ।

मन्द्रैः कलापिनामेते पक्षिणां धरणीरुहाः ।
विरुतैः स्वागतानीव वारिवाहाय तन्वते ॥

मयूरों की मन्द्र ध्वनि से एवं पक्षिवृन्द के शब्द के द्वारा मानो तरु समूह मेघ समूह को स्वागत कर रहे हैं । यहाँ पर 'मन्द्रैः' मन्द्र शब्द के उत्तर में स्थित विसर्ग लोप होने से मन्द्रैकलापिनाम्" शब्द निष्पन्न होगा । इस प्रकार वर्णच्युतकादि का उदाहरण भी प्रस्तुत करना चाहिये ।

(१२) क्रिया गुप्ति का लक्षण करते हैं—
"न लक्ष्यते स्फुटं यत्र पदसन्धान कौशलात् ।
क्रियादि मदपि प्राज्ञैः क्रियागुप्तादि तत् स्मृतम् ।

जहाँ सुस्पष्ट रूप से क्रियादि का बोध नहीं होता है, किन्तु पद के अनुसन्धान कौशल से बोध होता है, विज्ञ व्यक्ति वृन्द के मत में यह क्रिया गुप्ति अलङ्कार है ।

उदाहरण—"पाण्डवानां सभामध्ये दुर्योधन उपागतः ।
तस्मै गां च सुवर्णं च सर्वाण्याभरणानि च ॥

अत्रादुरिति क्रियाया गुप्तिः ॥

वटवृक्षो महानेष मार्गमाक्रम्य तिष्ठति ।
तावत्त्वया न गन्तव्यं यावन्नान्यत्र गच्छति ॥

हे वटो एष महावृक्ष इति सन्धि-सम्बोधनयोः ।

माधवस्य पुरोऽप्यासां साध्वीनां व्रजसुभ्रुवाम् ।
राजते वदने तन्वी नापि स्वप्रियचेतसां ॥

अत्र मेति कर्त्तुः ।

साकं सखीभिरागत्य काननेऽस्मिन् दिने दिने ।
उत्काप्युत्काय मे राति राधा वामतया वत ॥

अत्राकमिति कर्मणः ।

यहाँ 'अदुः' क्रिया का प्रयोग नहीं हुआ है ।

"वटवृक्षो महानेष मार्गमाक्रम्य तिष्ठति ।
तावत्त्वया न गन्तव्यं यावन्नान्यत्र गच्छति ।

यहाँपर हे वटो, एष महान् वृक्ष-इस प्रकार सन्धि एवं सम्बोधन विलुप्त है ।

माधवस्य पुरोऽप्यासां साध्वीनां व्रजसुभ्रुवाम् ।
राजते वदने तन्वी नापि स्वप्रियचेतसाम् ॥

पतिव्रता व्रजललना वृन्द के चित्त जिस प्रकार माधव के निकट में प्रफुल्ल होती हैं, उस प्रकार प्रसन्न निज प्रिय वर्ग के समीप में नहीं होती हैं । यहाँ मेति कर्त्ता का गोपन है ।

"साकं सखीभिरागत्य काननेऽस्मिन् दिने दिने ।
उत्काप्युत्काय मे राति राधा वामतया वत ॥

यहाँ कर्म्म गुप्ति है ।

पूतिपङ्कमयेत्यर्थं कासारे दुःखिता अमी ।
दुर्वारा मानसाहंसा गमिष्यन्ति घनागमे ॥"

पूतिपङ्कमयेत्यर्थं कासारे दुःखिता अमी ।
दुर्वारा मानसं हंसा गमिष्यन्ति घनागमे ॥

अत्र दुर्वारेति करणस्य । एवं सम्प्रदानादेरूह्या गुप्तिः ।

एते शब्दालङ्काराः ॥

अथार्थालङ्काराः ।

१ । उपमा तूभयोः साम्यं वाच्यं वाक्यैकगम् भवेत् ।

द्वयोः सादृश्यमुपमा भवेत् । तत्सादृश्यं यदि वाच्यमेक-वाक्यगतं च स्यात् । रूपकादौ सादृश्यं व्यङ्ग्यम् । अनन्वये

दुर्गन्धमय कर्दम में हंस समूह विलष्ट हैं । वर्षा होने पर वे मानस सरोवर को चले जायेंगे । यहाँ करण गुप्ति है, इस प्रकार सम्प्रदान गुप्ति प्रभृति का उदाहरण अनुसन्धेय है ।

एते शब्दालङ्कारा. ॥

अथ-अर्थालङ्काराः

(१) अर्थालङ्कार का वर्णन करते हैं ।

"उपमा तूभयोः साम्यं वाच्यं वाक्यैकगं भवेत् ।"

शब्दालङ्कार वर्णन के पश्चात् अर्थालङ्कार का वर्णन--अवसर सङ्गति से करते हैं । प्रचुर प्रयोग, एवं चमत्काराधिक्य होने के कारण एवं सादृश्य मूलक अलङ्कारों का उपजीव्य होने से अर्थात् प्राधान्य रूप से आश्रयणीय होने से इसका कथन प्रथम करते हैं ।

"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्ये उपमाद्वयोः"

एकस्यैव सादृश्यम् । उपमेयोपमायां वाक्यद्वयमतरताभ्योऽस्या भेदः । तां विभजति—

पूर्णा चेदुपमेयादि-चतुष्कं शाब्दमीक्ष्यते ॥

उपमेयं मुखादि उपमानं पद्मादि साधर्म्यं गुण-क्रियाकृतं माधुर्य्यविकाशादि क्वचिच्छब्दमात्रकृतं च। तद्वाचकस्तु यथेवादिः । एषु चतुर्षु शब्दोपात्तेषु पूर्णोपमोच्यते ।

वक्ष्यमाणेषु रूपकादिषु साम्यस्य व्यङ्ग्यत्वम् । व्यतिरेके वैधर्म्मस्याप्युक्तिः । उपमेयोपमायां वाक्यद्वयम् । अनन्वये चैकस्यव साम्योक्तिः । इति तेभ्योऽस्याभेदो ज्ञापयिष्यते ॥"

उपमान उपमेय का समान धर्म विवक्षित होने से उपमालङ्कार होता है । वक्ष्यमाण रूपक प्रभृति में चन्द्रादि में साम्य की प्रतीति व्यञ्जनावृत्ति से होती है । उपमा में साम्य की प्रतीति इवादि शब्द से वाच्य होती है । व्यतिरेक अलङ्कार में वैधर्म्य की भी उक्ति होती है, उपमेयोपमा लङ्कार में 'कमलेवमति मतिरिव कमला—वाक्यद्वय होते हैं । अनन्वय अलङ्कार में "राजीवमिवराजीवम्"

एकमात्र पदार्थ की साम्योक्ति होती है । इस रीति से रूपकादि अलङ्कारों से उपमा अलङ्कार का भेद स्थापित हुआ ।

उपमा का भेद प्रदर्शन करते हैं—

पूर्णाचेदुपमेयादि चतुष्कं शाब्दमीक्ष्यते ।

वह उपमा पूर्णा एवं लुप्ता भेद से द्विविध हैं—उपमान उपमेय गत साधारण धर्म वाचक पद, सादृश्य बोधक पद, एव उपमान उपमेय वाचक पद का प्रयोग होने से वह पूर्णा उपमा होती है ।

उपमेय मुखादि, उपमान--पद्मादि, साधर्म्य—गुण क्रियाकृत माधुर्य्य विकाशादि, कहीं पर शब्द मात्र कृत होता है । उस के वाचक पद—इव प्रभृति होते हैं । इनचारों का उल्लेख शब्द से होने

श्रौती यथादिभि र्योगादिवार्थवतिना च सा ।

आर्थी समादिभिर्योगात्तुल्यार्थवतिना तथा ॥

यथेववेवार्थवतयो यत्र श्रुता एव साधर्म्यं बोधयन्ति सा श्रौती । समतुल्य सदृशादितुल्यार्थवतिभि र्यत्रार्थात् साधर्म्यस्य बोधः सा त्वार्थी ।

से पूर्णा उपमा कहते हैं ।

"श्रौती यथादिभि र्योगादिवार्थवतिना च सा ।

आर्थी समादिभिर्योगात्तुल्यार्थवतिना तथा ॥

इयं पुनः श्रौती यथेव वा शब्दा इवार्थो वा वतिर्यदि ।

आर्थी तुल्य समानाद्या स्तुल्यार्थो यत्र वा वतिः ॥

पूर्णोपमा में—यथा, इव,वा शब्द, एवं उपमानान्तर में प्रयुक्त तुल्यादि पद का प्रयोग हो, एव श्रवण समकाल में ही उपमान उपमेयगत सादृश्य का बाध होता हो, तो, श्रौती उपमा होती है, इस प्रकार तस्य, इव, इवार्थ में विहित वति प्रत्यय का प्रयोग होने से श्रौती उपमा होती है ।

तुल्यादि शब्द प्रयोग का दृष्टान्त—'कमलेन तुल्यं मुखम्' आदि शब्द से समान, सदृश प्रभृति शब्द को जानना होगा । 'कमलेन तुल्यं मुखम्' यहाँ उपमेय मुख में साम्य का विश्राम उपमेय मुख में होता है । 'कमलं हरिमुखस्य तुल्यम्' यहाँ उपमान में साम्य का विश्राम है । 'कमलं हरिमुखञ्च तुल्यम्' यहाँ उपमानोपमेय दोनों में समताका विश्राम होता है । अर्थानुसन्धान से ही साम्यका प्रतिपादन होता है । सम, तुल्य, सदृशादि तुल्यार्थ शब्द का प्रयोग होने से ही आर्थी उपमा होती है । इस प्रकार 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' सूत्रसे वतिप्रत्यय होता है, 'ब्राह्मणेन तुल्यमधीते ब्राह्मणवदधीते क्षत्रियः, यहाँ तुल्यार्थ विहित वति प्रत्ययका प्रयोग से आर्थी उपमा होती है ।

द्वेधा वाक्ये समासे च तद्धिते चेति षड् विधा ।
वाक्यगा समासगा तद्धितगा च श्रौती तथार्थी चेति षोढ़ा पूर्णोपमा । क्रमेणोदा०—

वचोमृतं यथा स्वादु कुम्भाविव कुचौ पृथू ।
गन्ध श्चन्दनवन्मोदी तव किं बहु वर्णये ।।

अत्र क्रमेण श्रौतीत्रयं । कुम्भाविवेति समासः । चन्दनवदिति षष्ठ्यन्तादिवार्थे वतिः ।

श्रौती आर्थी पूर्णोपमाका भेद प्रदर्शन करते हैं—
"द्वेधा वाक्ये, समासे च तद्धिते चेति षड् विधा"
वाक्य, समास, एवं तद्धित गत श्रौती आर्थी पूर्णोपमाषड् विधा हैं । "द्वे तद्धिते समासेऽथ वाक्ये' द्वे श्रौतार्थी च"
तद्धित समास, वाक्ये भेद से तीन तीन प्रकार श्रौती आर्थी उपमा होती हैं ।
क्रमशः उदाहरण—
"वचोमृतं यथा स्वादु कुम्भाविव कुचौपृथु ।
गन्ध श्चन्दनवन्मोदी तव किं बहु वर्णये ।।
वाणी अमृत के समान स्वादु है, कुम्भवत् कुच द्वय स्थूल है । तुम्हारी चन्दन के तुल्य आमोदी गन्ध है—अधिक वर्णन तुम्हारा और क्या करें ।
इस विषय में श्रीकृष्ण वाक्य यह है—
"सौरभमम्भोरुहवन्मुखस्य कुम्भाविव स्तनौपीनौ ।
हृदयं मदयति वदनं तव शरदिन्दुर्यथा राधे ।।"
हे राधे ! तुम्हारे मुख का सौरभ कमल के समान है । कुम्भ के समान स्तनद्वय स्थूल हैं, शरत् कालीन चन्द्रमा के समान तुम्हारे वदन मुझ को आनन्दित करता है । प्रथम वाक्य में सामान्य धर्म्म

अब्जेनास्यं समं फुल्लं कुन्दाभम् स्मितमुज्ज्वलं ।
देव पीयूषवत्तस्या मोदनोऽधरपल्लवः ।
अत्र क्रमेणार्थोत्रयं, पीयूषवदिति तुल्यार्थे वतिः ।

सौरभ है, उपमान अम्भोरुह है, मुख–उपमेय है वति प्रत्यय–उपमा का प्रकाशक है। यह पूर्णोपमा है, तत्र तस्य, इव, इवार्थ में वति प्रत्यय होने से तद्धितगत श्रौती है।

द्वितीय वाक्य में "कुम्भाविव स्तनौ पीनौ" यहाँ 'इवेन समासो विभक्त्य लोपश्च' सूत्र से समास होने से समासगता श्रौती पूर्णोपमा है। द्वितीयार्द्ध में वाक्य रूप होने के कारण यथा शब्द श्रौतीपर होने से वाक्यगता श्रौती पूर्णोपमा है।

इस ग्रन्थोक्त श्लोक में क्रम पूर्वक श्रौतीत्रय का उदाहरण है, "कुम्भाविव" स्थल में समास है, 'चन्दनवद्' वाक्य में षष्ठ्यन्त के उत्तर इवार्थ में वति प्रत्यय है। त्रिविध आर्थी का उदाहरण—

अब्जेनास्यं समं फुल्लं कुन्दाभं स्मितमुज्ज्वलम् ।
देव पीयूषवत्तस्या मोदनोऽधर पल्लवः ॥

हे देव! कमल के तुल्य उसका मुख, फुल्ल कुन्द के समान उज्ज्वल हास्य पीयूष के समान उसका अधर पल्लव मोदन है। यहाँ क्रमपूर्वक आर्थोत्रय है, पीयूष पद में तुल्यार्थ में वति प्रत्यय हुआ है।

इसी प्रकार "मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिकोमलपाणिः माधव मृगनेत्राभ्यां सदृशी चपले च लोचने तस्याः। यह त्रिविध आर्थी का उदाहरण है।

सखाने कहा—हे माधव! राधा का अधर—सुधा के समान मधुर,–पुष्प के समान कोमल, मृगनयन के तुल्य लोचनद्वय हैं, यहाँ सुधावत्–तद्धितगा आर्थी पूर्णा है, पल्लव तुल्या समासगा आर्थी पूर्णा है, मृगनेत्राभ्यां सदृशी -वाक्यगा आर्थी पूर्णा है। अपर दृष्टान्त

बाला प्रकटितटीका संहतिरिव पाणिनीय-सूत्राणां ।
चेतोवृत्तिरिवासौ निरुपम-जङ्घालता विभाति पुरः ॥

अत्र शब्दमात्रसाम्ये श्रौतीयं श्लेषोपमेत्युच्यते ।

अथ लुप्ता—

लुप्ताष्टधोपमेयादेरेकद्वित्रचग्रहाद्भवेत् ।

उपमेयादीनां चतुर्णां मध्ये एकस्य द्वयो स्त्रयाणां वा वाचकेऽगृहीते लुप्तोपमा । सा च वाचकलुप्ता धर्मलुप्ता धर्मवाचकलुप्ता वाचकोपमेयलुप्ता उपमानलुप्ता वाचक-उपमानलुप्ता धर्मोपमानलुप्ता धर्मोपमेयवाचकलुप्ता चेत्यष्टधा ।

यथा—अभ्रश्यामोऽब्जतुल्यास्यो विधूयन्हृदये मम ।

"बाला प्रकटितटीका संहतिरिव पाणिनीय--सूत्राणाम् ।
चेतोवृत्तिरिवासौ निरुपम--जङ्घालता विभाति पुरः ॥

वह प्रकटितटीका बाला पाणिनीय सूत्रों की संहति के समान एवं चित्तवृत्ति के समान तथा निरुपम पदचारी के समान सम्मुख में प्रकाशित है ।

यहाँ शब्द मात्र साम्य से श्रौती श्लेषोपमा है ।

पूर्णाषोढ़ा प्रकीर्तिता" पूर्णोपमा षड् विध हैं । अनन्तर लुप्तोपमा का वर्णन करते हैं—

लुप्ताष्टधोपमेयादेरेकद्वित्रचग्रहाद्भवेत् ।

उपमेयादि के चारों के मध्य में एक, दो, वा तीन का वाचक शब्द अगृहीत होने पर लुप्तोपमा होती है । वह वाचक लुप्ता, धर्म लुप्ता, धर्म वाचक लुप्ता, वाचकोपमेयलुप्ता उपमान लुप्ता, वाचकोपमान लुप्ता धर्मोपमानलुप्ता धर्मोपमेयवाचक लुप्ता ये आठ प्रकार हैं ।

उदाहरण—"अभ्रश्यामोऽब्जतुल्यास्यो विधूयन्हृदये मम ।

दृष्टः कृष्णातटे कृष्णो भक्तानां कल्पपादपः ॥

अत्राभ्रश्याम इति वाचकस्यैव शब्दस्य लोपः। अब्जतुल्यास्य इति धर्मलोपः। कल्पपादप इति धर्मवाचकलोपः। विधूयन्निति वाचकोपमेयलोपः। आत्मानं विधुमिवाचरन्-नित्यात्मन उपमेयस्य सहोपमावाचकेन लोपात्। 'यत्पादाभ्यां समं क्वापि मनोज्ञं नैव वीक्ष्यते। एष चित्तहरः कृष्णो भाग्येनैवोपलभ्यते। पूर्वार्द्धे उपमानस्य लोपः। परार्द्धे तु वाचकोप-मानयोः ॥

नास्ति यत्सदृशं क्वापि नापि तुल्यं यदाख्यया।
हरिणीनयना राधा तमाधावति केशवं ॥

दृष्टः कृष्णातटे कृष्णो भक्तानां कल्पपादपः ॥

कृष्णातट में भक्त कल्पपादप श्रीकृष्ण को देखा, वह मेघश्याम–वर्ण है, एवं उसका कमल के तुल्य वदन है, उसने मेरा हृदय को आलोड़ित किया।

उक्त श्लोक में उत "अभ्रश्याम" पद में वाचक 'इव' शब्द का लोप है, 'अब्जतुल्य आस्य यहाँ धर्मलोप है।

'कल्पपादप' यहाँ धर्म वाचक लोप है, 'विधूयन्निति' वाचकोपमेय लोप है, 'आत्मान विधुमिवाचरन्नित्यात्मन उपमेयस्य सहोपमा वाचकेन लोपात् ॥ यहाँ उपमावाचक के सहित उपमेय का लोप है।

"यत् पादाभ्यां समं क्वापि मनोज्ञं नैव वीक्ष्यते।
एष चित्तहरः कृष्णोभाग्येनैवोपलभ्यते"

यहाँ पूर्वार्द्ध में उपमान का लोप है, परार्द्ध में वाचक एवं उपमेय का लोप, है।

"नास्ति यत् सदृशं क्वापि नापि तुल्यं यदाख्यया।
हरिणी नयना राधा तमाधावति केशवम् ॥

अत्र पूर्वार्द्धे धर्मोपमानयो र्लोपः। परार्द्धे तु धर्मोपमेय-

---

जिसके समान कोई नहीं है, जिसके तुल्य नामसे भी कोई नहीं है, वह हरिणी नयना राधा केशव में आसक्त है। यहाँ पूर्वार्द्ध में धर्मोपमान का लोप है, परार्द्ध में धर्मोपमेय वाचक का लोप है। हरिणी के नयन के समान मनोज्ञ नयन है, जिसके--वह राधा।

लुप्तोपमा का भेद इस प्रकार है—

पूर्णावद् धर्म लोपे सा विना श्रोतीन्तु तद्धिते॥"

सा लुप्तोपमा धर्मस्य साधारण गुण क्रिया रूपस्य लोपे पूर्णावदिति पूर्वोक्तरीत्या षट् प्रकाराः। किन्त्वत्र तद्धिते श्रौत्यसम्भवात् पञ्च-प्रकाराः।

साधारण गुण क्रियारूप, उपमान उपमेय गत साधारण धर्म का लोप होने से तद्धित गता, समास गता, वाक्य गता, रूपसे श्रौती-- आर्थी षड्विध होगी। किन्तु तद्धित में श्रौती असम्भव होने से श्रौती द्विविधा हैं, आर्थी त्रिविधा क्रमसे पञ्चविधा लुप्तोपमा होगी। षष्ठी सप्तमी विभक्त्यन्त में वति प्रत्यय होता है, प्रत्यय भी सामान्य धर्म की अपेक्षा से होता है। सामान्य धर्मका प्रयोजन होने से षष्ठी सप्तमी विभक्ति नहीं होगी, अतः समास गता वाक्यगता द्विविधा श्रौती होगी।

उदाहरण— मुख मिन्दु यथाराधे ! पल्लवेन समः करः।

वाणी सुधेव विम्बाभमोष्ठं धिग् वज्रवन्मनः"

हे राधे ! मुख इन्दु के समान, कर, पल्लव के समान, वाणी-सुधा के तुल्य ओष्ठ--विम्बफल तुल्य है, किन्तु वज्र तुल्य मन को धिक्कार है। इन्दुर्यथा—वाक्यगा– श्रौती लुप्ता, 'पल्लवेन समः' वाक्यगा आर्थी लुप्ता, सुधेव– समासगता श्रौती लुप्ता है, पल्लवेन समः—वाक्यगा आर्थी लुप्ता है, सुधेव, समास गता श्रौती लुप्ता है, विम्बाभम्– समासगा आर्थी लुप्ता है।

वज्रवत्—तद्धितगा आर्थी लुप्ता है।

लुप्तोपमा का विभाजन प्रकारान्तर से करते हैं—

वाचकानां। हरिण्या नयने इव मनोज्ञे नयने यस्याः सेति।

"आधार कर्म्म विहिते द्विविधे च कयचि कयङि।
कर्म कर्त्तोर्णमुलि च स्यादेवं पञ्चधापुनः।

धर्म लोपे लुप्तेत्यनुषज्यते। कयच् कयङ्, णमुलः कलाप मते यिन्नायि नमः। क्रमेण यथा—

"अन्तः पुरीयसि वने तनुजीयसि त्वम्।
पाल्यं जनं गिरि सुताप्यनु जायते ते।
दृष्टः प्रजाति स्मृत द्यु ति दर्श मिन्द्र
सञ्चार यत्र भुवि सञ्चरति व्रजेन्द्रौ॥

अधिकरण कारक—कर्म कारक के उत्तर विहित कयच् द्विविध होने से लुप्तोपमा भी द्विविधा होती हैं, कयङ् प्रत्यय में एक प्रकार, कर्म्म कर्त्तृ में नमुल कर्म में कर्त्ता में नमुल होने पर प्रत्येक एक एक प्रकार होकर समुदाय से लुप्तोपमा पाँच प्रकार होती हैं। "धर्मलोपे लुप्ता सा" पूर्व वाक्य के साथ सम्बन्ध है, कयङ णमुलः पाणिनि के मतमे। कलाप के मत में—'यिन्नायिणमः' प्रत्यय है।

एक ही पद्य में उक्त पञ्चविध लुप्तोपमा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

वने अन्तः पुरीयसि--आधार में कयच्। तेनुजीयसि' त्वं--कर्म्म में कयच्, अनुजायते—कयङ्, अमृत द्यु ति दर्शं—कर्म्म में णमूल, सञ्चारं कर्त्तृक में नमुल है।

सुख पूर्वक विहार हेतु अन्तः पुरीयास पद का प्रयोग हुआ है, तनुजीयसीत्यत्र स्नेह निर्भरता का तथा साधारण धमंका लोप है। इस प्रकार अन्यत्र भी अनुसन्धान करना चाहिये। यहाँ यथापि तथा तुल्यादि शब्द न होने से श्रौती नहीं होगी। अतः धर्म का लोप होने से दश प्रकार लुप्तोपमा हैं।

उपमान का लोप होने से भी लुप्तोपमा होती है, उपमान का कथन न होने से वाक्य गत रूप से एवं समास गत रूप से दो प्रकार

लुप्तोपम होती हैं। उपमान पद का प्रयोग न होने से उस के उत्तर प्रयोज्य इवादि शब्द का प्रयोग नहीं होगा, अतः श्रौती भेद सामान्य का भेद होना सम्भव नहीं है, चन्द्र पद का प्रयोग न होने से केवल 'इवमुखम्' से बोध नहीं होता है।

आर्थी के मध्य में केवल वाक्यगत समास गत लुप्तोपमा दो प्रकार होंगी। लक्ष्म्या मुखेन तुल्यं रम्यं नास्ते नवा नयन सदृशी यहाँ मुख नयन प्रतिनिधि वस्त्वनन्तर गम्यमान होने से उपमान का लोप है, यहाँ 'मुखेन तुल्यम्'' मुखं यथेदम् नयन सदृशं'' 'दृगिव' इस पाठ से श्रौती की सम्भावना है, इस से दोनों के भेद में श्रौती आर्थी भेद से चार प्रकार होना सम्भव होने पर भी प्राचीन रीति से दो प्रकार ही कहा गया है। औपम्य वाचक, सादृश्य वाचक 'इवादि' शब्द का लोप से समास में क्विप् प्रत्यय से दो प्रकार लुप्तोपमा होगी

"औपम्य वाचिनो लोपे समासे क्विपि च द्विधा"

क्रमेण यथा—राधया मुख विम्बं राकापीयूषर्हिमविद्योति'' कोकिलति श्रुति मधुरं गायत् पञ्चम विशेष मेकान्ते''

राधा का मुखविम्ब पूर्णिमा के चन्द्र के समान प्रकाश होता है, श्रुति मधुर पञ्चम स्वरालाप के द्वारा कोकिल के समान आचरण करता है, यहाँ 'कोकिलति' स्थलमें औपम्य वाचि क्विप् का लोप है। उपमा धर्म का भी लोप है, ऐसा नहीं. 'गायत्'--इस से प्रकाशित हुआ है।

"द्विधासमा से वाक्ये च लोपे धर्मोपमानयो:।"

एक एक का लोप से लुप्तोपमा का वर्णन कर दो दो के लोप से जो लुप्तोपमा होती है, उसको कहते हैं—

सामान्य धर्म एवं उपमान का लोप होने से अर्थात् युगपत् उभय का अप्रयोग से समास में वाक्य में द्विधा लुप्ता उपमा होगी। उदाहरण "लक्ष्म्या मुखेन तुल्य रम्यं नास्ते नयन सदृशम्'' यहाँ सामान्य धर्म का तथा उपमान का अप्रयोग से वाक्य गता लुप्तोपमा

है। "नवा नयन सदृशम्' 'रम्यं' सामान्य धर्म का प्रयोग होने से उपमान का भी प्रयोग न होने से सदृश शब्द के साथ नयन शब्द का समास होने से लुप्तोपमा हुई है।

"क्विप् समासगतः द्वेधा धर्मवादि विलेपने ॥

यथा 'बिधवति मुखं रमायाः' अत्र विधवतीति मनोरमत्व क्विपो लोंपः। 'मुखाब्जमस्या इति' पाठे समासगा" सामान्य धर्म इवादि सादृश्य वाचक शब्द का युगपत् अप्रयोग से क्विप् प्रत्ययगता, समास गता द्विधा लुप्तोपमा होती हैं।

उदाहरण—'विधवति मुखं रमायाः" यहाँ विधवति मनोरमत्व क्विप् का लोप है, 'मुखाब्जमस्याः" इस प्रकार पाठः से समास गता लुप्तोपमा है।

"उपमयेस्य लोपे तु स्यादेका प्रत्यये क्यचि"

यथा—"वतेय त्रिक्रमआलोक बिकस्वर बिलोचनः।
चक्रेणोद् दण्ड दो दण्डः सहस्रायुधीयति ॥

उपमेय का लोप से कर्म का लोप होने से लुप्तोपमा होती है, उपमेय का अप्रयोग से क्यच प्रत्यय से एक प्रकार लुप्तोपमा होगी दृष्टान्त—दिति तनयों का विक्रम को देखकर उत्फुल्ल नयन हरि, केवल चक्र से ही उनके भुजद्वय-सहस्र आयुध का कार्य्य किये थे। यहाँ शस्त्रायुधमिवात्मानमाचरतीति बाक्यमें उपमेयस्य आत्मनोलोपः

"धर्मोपमेय लोपेऽन्या।"

धर्म सामान्य धर्म एवं उपमेय का युगपत् अप्रयोग से अपरा एक विधा लुप्तोपमा होगी।

उदाहरण—यशसि प्रसरति कृष्णात् क्षीरोदयन्ति सिन्धवः सर्वे, "यहाँ क्षीरोदमिव आत्मानमाचरन्ति इति उपमेय आत्मा, साधारण धर्म शुक्लता लुप्ता है।

"त्रि लोपेतु समासगा"

सम्प्रति उपमान, उपमेय, सामान्यधर्म के मध्य में यथा सम्भव

लोप होने से लुप्तोपमा होगी। उपमान, सादृश्य वाचक शब्द साधारण धर्म का लोप होने से--अर्थात् प्रयोग न होने से समास गता अन्या एक प्रकार लुप्तोपमा होगी।

उदाहरण—"सा मृग लोचना" यदा मृगस्य लोचने इव चञ्चले लोचने यस्या इति समास में उपमा तत् प्रतिपादक साधारण धर्म्मो पमेयाया लोप:"

अत: उपमा का भेद सप्त विंशति हैं। पूर्णा—षड् विधा, लुप्ता एक विंशति विधात समष्टि से--विंशति प्रकार लुप्तोपमा हैं।

नाम		उदाहरण-
श्रौतो ३—तद्धित गता	१	सौरभमम्भोरुहवन्मुखस्य"
समास गता	१	कुम्भाविव स्तनौपीनौ
वाक्यगता	१	हृदयं मदयति वदनं तव शरदिन्दु यथा राधे !
पूर्णोपमा ६		
आर्थी ३—तद्धितगता	१	मधुरः सुधावदधर:।
समासगता	१	पल्लव तुल्योऽति पेशलपाणि:
वाक्यगता	१	चकित मृगलोचनाभ्यां सदृशी चपले च लोचने तस्या:।
लुप्तोपमा २१-श्रौती २		समासगता १ वाच: सुधाइव।
		वाक्यगता १ औष्ठस्ते विम्बतुल्यः
		वाक्यगता १ पाणि: पल्लवेनसम:
प्रत्यये ५		क्यचि २ आधारात् क्यचि १ अन्त:पुरीयसि वनेषु
		कर्म्मण: क्वचि १ पौरं जनं सुतीयसि
		कयङि १ कर्त्तु: कयङि १ श्रीस्तव रमणीयते
		णमुलि १ अमृतद्यु तिदर्शं दृष्ट:।
		कर्त्तरि णमुणि १ इन्द्रसञ्चार सञ्चरसि
उपमान लोपे २		वाकचगता १ तस्याम् खेनसदृशं रम्यं नास्ते
		समासगता १ नवानयन तुल्यं रम्यम्

इवादि लोपे २ समास गता १ सुधाकर मनोहर वदनम् ।
क्विप् प्रत्ययगता १ कोकिलति श्रुति मधुरं गायत्
पञ्चम विशेषमेकान्ते

सामान्यधर्म उपमानञ्च

एतयोरुभयोर्लोपे २ समासगता १ नवा नयन सदृशं
वाक्यगता १ लक्ष्म्या मुखेन तुल्यं रम्यं नास्ते

सामान्य धर्म इवादिश्च

एतयोरुभयोर्लोपे २ क्विप् प्रत्ययगता १ विधवति मुखंरमायाः
समासगता १ मुखाब्जमस्याः

उपमेयलोपे क्यचि १ कर्म्मणि क्यचि १ विकस्वर विलोचनः
सहस्त्रायुधीयति ।

सामान्यधर्म उपमेयञ्च

एतयोरुभयोर्लोपे १ कर्म्मणि क्यचि १ क्षीरोदयन्ति सागराः

उपमानं, इत्यादि सामान्य
धर्मश्च, एषां सर्व लोपे १ समासगता १ साराधा मृगलोचना
तेनोपमाया भेदाः स्युः सप्तविंशति सख्यकाः
"एकरूपः क्वचित् क्वापि भिन्नः साधारणो गुणः ।
भिन्ने बिम्बानुबिम्बत्वं शब्दमात्रेण वा भिदा ।

साधारण धर्म लोप से एवं अलुप्त साधारण धर्म से उपमा दो प्रकार होगी । उसमें से अलुप्त साधारण धर्मके मध्य में विशेष कुछ कहते हैं, कहीं पर साधारण धर्म एक प्रकार होता है. वस्तुत एक प्रकार नहीं, कहीं पर वस्तुतः उक्त प्रकार भेद युक्त है । भिन्न वस्तु में बिम्बानुबिम्ब भाव होता है । दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब मुख से भिन्न होकर भी अभिन्न होता है, इस प्रकार उपमान उपमेय गत धर्म का वस्तुतभेद होता है, किन्तु सौसादृश्य हेतु अभेद होता है, शब्द से ही भेद होता है, वस्तुत भेद नहीं है ।

एकदेश विवर्तिनी उपमा भी है ।

"एकदेश विवर्त्तिन्युपमा वाच्यत्व गम्यते । भवेतां यत्र साम्यस्य ।

मालोपमा यदेकस्योपमानं भूरि वीक्ष्यते ॥ यथा—

कुमुद्वतीव शीतांशोः केतकीव मनोभुवः ।
नलिनीव रवेरासीन्मनोज्ञा राधिका हरेः ॥

यहाँपर साम्य का बोध अभिधा से व्यञ्जना से होता है। सादृश्य का बोध भी अभिधा व्यञ्जना से होता—वहाँ एकदेश विवर्त्तिनी नामिका उपमालङ्कार होता है। एकदेश में साम्य का वाच्यत्व भाग में विवर्त्तन होता है, दृष्टान्त—नेत्र रूप उत्पलों के द्वारा पद्मस्य वदन से स्तन रूप चक्रवाकके द्वारा यमुना शोभित है। यहाँ उत्पलादि के सहित नेत्रादि का सादृश्य शब्दतः लभ्या है, यमुना में अङ्गना का सादृश्य, व्यञ्जना से लभ्य है।

यह उक्ति श्रीराधा के प्रति श्रीकृष्ण की है, मालोपमा का वर्णन करते हैं—

मालोपमा यदेकस्योपमानं भूरि वीक्ष्यते ॥ अथवा—
मालोपमा यदेकस्मिन् उपमानं भवेद्बहु ”

एक के अनेक उपमान होने से मालोपमालङ्कार होता है।

उदाहरण—“कुमुद्वतीव शीतांशोः केतकीव मनोभुवः ।
नलिनीव रवेरासीन्मनोज्ञा राधिका हरेः ॥

शीतांशु की कुमुद्वती के तुल्य, कन्दर्प की केतकी के सदृश, सूर्य्य की नलिनी के समान श्रीहरि की राधिका मनोज्ञा थी। द्वितीय का उदाहरण—पौर्णमासी के प्रति वृन्दा की उक्ति--

वारिजेनेव सरसी शशिनेव निशीथिनी ।
मधुनेव वन श्रेणी कृष्ण सङ्गेन सा बभौ,'सा--राधा।

श्रीकृष्ण के सङ्ग से इस प्रकार शोभिता हुई, जिस प्रकार कमल से सरोवर शोभित होता है, रात्रि चन्द्र से शोभिता होती है। वसन्त काल से वनश्रेणी जिस प्रकार शोभिता होती है।

यथोद्‌र्ध्वमुपमेयस्योपमानत्व-प्रकल्पनं ।
यत्र स्यात्तां रसाभिज्ञा वदन्ति रसनोपमां ॥

यथा— चन्द्रायते शुक्लरुचापि हंसो
हंसायते चारुगतेन कान्ता ।
कान्तायते स्पर्शसुखेन वारि
वारीयते स्वच्छतया विहारः ॥१॥

एकस्यैवोपमेयत्वोपमानत्वमनन्वयः ।
एकवाक्यगतमिति शेषः । यथा—

सिन्धुः सिन्धुरिव ज्यायानिन्दुरिन्दुरिवोज्ज्वलः ॥२॥

रसनोपमा

यथोद्‌र्ध्वमुपमेयस्योपमानत्व--प्रकल्पनं ।
यत्र स्यात्तां रसाभिज्ञा वदन्ति रसनोपमां ॥

उपमेय उपमान के समान प्रतीत होने से रसनोपमा होती है।
"चन्द्रायते शुक्लरुचापि हंसो हंसायते चारुगतेन राधा ।
राधायते स्पर्शसुखेन वारि वारीयते स्वच्छतया विहारः ॥

हंस शुभ्र कान्ति से चन्द्र के समान प्रतीत होता है। मनोज्ञ गमन लीला से श्रीराधा--हंस गमनी होती है, जल, स्पर्श सुख से राधा के समान प्रतीत होता है, विहार स्वच्छता हेतु वारि के समान प्रतिभात होता है। अनन्वय अलङ्कार—

एकस्यैवोपमेयत्वोपमानत्वमनन्वयः ।
उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः ।

एक वाक्य गत होने से ही उक्त अलङ्कार होगा। दृष्टान्त—

सिन्धुः सिन्धुरिव ज्यायानिन्दुरिन्दुरिवोज्ज्वलः ।

एक पदार्थ युगपत् उपमान उपमेय भाव को प्राप्त करने से

पर्य्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमोच्यते ।
तदुपमेयत्वमुपमानत्वं च यद्युभयो: क्रमेण स्याद्वाक्याभ्यां तदोपमेयोपमा । यथा—

अनन्वय अलङ्कार होता है । सिन्धु सिन्धु के समान श्रेष्ठ है । एवं चन्द्र, चन्द्र के समान उज्ज्वल है । अथवा—

"कृष्ण: कृष्ण इवादीपि राधा राधेव तत्रचेत् ।
तदा तयोर्लक्षणं वा केन कुर्य्याद् विलक्षणम् ।

कृष्ण—कृष्ण के समान प्रकाशित है, राधा भी राधा के समान शोभित है, तब दोनों का विलक्षण लक्षण किस से किया जाय !

"अत्र कृष्ण राधयोरनन्य सदृशत्व प्रतिपादनायोपमेयोपमान भावो विवक्षित: । कृष्ण: गोविन्दवद् भातीत्युक्तौ

लाटानुप्रासाद्विविक्तत्वं स्यात् । किन्त्वत्रौचित्यादेक एव शब्द प्रयोक्तुं योग्य:" "अनन्वये च शब्दैक्यमौचित्यादानुषङ्गिकम्
लाटानुप्रास एतस्मिन् साक्षादेव प्रयोजकम् ।।"

यहाँ श्रीराधा कृष्ण का अनन्य सदृशत्व प्रतिपादन से उपमेयोपमाभाव ही विवक्षित हुआ है, कृष्ण गोविन्द के समान प्रकाशित हैं, इस प्रकार कथन मे लाटानु प्रास से भिन्न प्रतीत होता है, किन्तु यहाँ औचित्य के कारण, एक शब्द को रखना ही ठीक है, कहा भी है, अनन्वय अलङ्कार में शब्द का अभिन्न आनुपूर्विक होना नियत नहीं है, किन्तु लाटानुप्रास में शब्दैक्य होना सर्वथा नियत है, अन्यथा लाटानुप्रास अलङ्कार नहीं होगा ।

उपमेयोपमालङ्कार—"पर्य्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमोच्यते ।
पर्य्यायेण द्वयोरेतदुपमेयोपमा मता । पर्य्यायेण—व्यत्ययेन ।
एतदुपमानोपमेयत्वम् । अर्थात् वाक्यद्वये"

पर्य्याय क्रमसे उपमान उपमेय परस्पर उपमेय उपमान होते हैं, तो—उपमेयोपमालङ्कार होगा । पर्य्याय शब्द से व्यत्यय, पार-

श्रीरिव श्रीश वाणी ते वाणीव श्रीर्मनोरमा ॥३॥
प्रतिवस्तूपमैकस्मिन्साधर्म्ये वाक्ययोः स्थिते ॥ यथा—

राधया माधवो भाति माधवेनैव राधिका।
रजन्या राजते चन्द्र श्चन्द्रेणेह रजन्यपि । अत्रोभयत्र

वर्त्तन को जानना होगा, यह उपमान उपमेय, अर्थात् वाक्यद्वय में यह अलङ्कार होगा । पूर्व वाक्य का उपमान उत्तर वाक्य का उपमेय होगा । उदाहरण—

'श्रीरिव श्रीश वाणी ते वाणीव श्री र्मनोरमा ॥३॥

हे श्रीश: तुम्हारी वाणी श्री के समान है, एवं श्री वाणी के समान मनोरमा है । अथवा—

श्रीराधिकानन्य समान सत्य सौमाधुर्य्य सम्पत्तिरिवाघविद्विषः"
माधुर्य्य सम्पत्तिरपीयमुच्चकैः श्रीराधिकेवानुपमा विराजते ॥"

'अत्र राधिकाघविद्विषमाधुर्य्य सम्पदोः सदृशंवस्त्वन्तरं नास्तीति गम्यते ॥

श्रीराधिका श्रीकृष्ण की माधुर्य्य सम्पत्ति के समान अपर वस्तु है ही नहीं । श्रीराधिका की अनन्य समान सत्य सौमाधुर्य्य सम्पत्ति है, श्रीकृष्ण की माधुर्य्य सम्पत्ति भी राधिका की सम्पत्ति के समान है ।

प्रतिवस्तूपमा--प्रतिवस्तूपमैकस्मिन्साधर्म्ये वाक्ययोः स्थिते ॥

वाक्यद्वय में अर्थात् उपमान उपमेय में एक साधर्म्य होने से प्रति वस्तु उपमालङ्कार होता है । दृष्टान्त--

"राधया माधवो भाति माधवेनैव राधिका ।

रजन्या राजते चन्द्रश्चन्द्रेणेह रजन्यपि ॥' यहाँ उपमान उपमयोभयत्र दीप्ति रूप धर्म्म का कथन शब्द भेद से हुआ है, इस प्रकार वैधर्म्य के द्वारा भी उक्तालङ्कार होता है ।

दीप्तिरूपो धर्मः शब्दभेदेनोपात्तः। वैधर्म्येण चेयं दृश्यते॥

चकोर्य्य एव चतुरा श्चन्द्रिकाचामकर्मणि।
विनावन्तो न निपुणाः सुदृशो रतनर्मणि॥

मालारूपा यथा—

राधा के द्वारा माधव प्रकाशित हैं, एवं माधव के द्वारा श्रीराधिका प्रकाशित है। रजनी में चन्द्र शोभित होता है, एवं चन्द्र के द्वारा रजनी शोभिता होती है।

उक्त है,—"प्रतिवस्तूपमा साम्याद् वाक्ययो र्गम्यमानयोः एकोऽपि धर्म्मः सामान्य यत्र निर्दिश्यते पृथक्।

गुण क्रिया रूप धर्म एक होने पर भी भिन्न आनुपूर्वीक रूपसे कहा जाता, वह प्रति वस्तूपालङ्कार होता है, प्रतिवस्तु--प्रति पदार्थ ही उपमा--सादृश्य है, अतः प्रतिवस्तूपमा है। दृष्टान्त—

"श्रीराधयानन्य समोद्‌दूर्ध्वया हृतं
मनो हरे र्धावति नापराङ्गनाम्
सरोजिनी सन्मधुलम्पटः मुदा
वल्लीं परः प्राञ्चति किं मधुव्रतः।

अत्र धावन प्राञ्चन क्रिययोरेकार्थतैव पौनरुक्त्यनिरासाय भिन्न वाचकतया निर्दिष्टा।

असमोद्‌र्ध्व राधा से हरिका मन हरण हुआ। वह मन अपर अङ्गना के प्रति धावित नहीं होता है। सदा सरोजिनी का उत्तम मधु में सदा लम्पट मधुप क्या अवर वल्ली के और जा सकता है? यहाँ धावन क्रिया एवं प्राञ्चन क्रिया की एकार्थता है, पुनरुक्त नहीं है, अतः भिन्न शब्द से उक्त है। वैधर्म्यका उदाहरण—

चकोर्य्य एव चतुरा श्चन्द्रिकाचामकर्मणि।
विनावन्तो न निपुणाः सुदृशो रतनर्मणि॥

विमल एव रविर्विशदः शशी प्रकृतिशोभन एव हि दर्पणः।
शिवगिरिः शिवहाससहोदरः सहजसुन्दर एव हि सज्जनः॥

दृष्टान्तो यत्सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनं।
सधर्मस्येति पूर्वतोऽस्य भेदः। यथा—

चन्द्रिका पान कर्म में चकोरी निपुणा है। शोभन नयना रसास्वादाभिज्ञता व्यतीत रति नर्म्म में निपुणा नहीं होती है। अपर दृष्टान्त—गोप्य एव हि गोविन्दं नृत्याद्यैस्तोषयन्त्यलम् ता विनान्य-जगन्नार्य्यो न योग्या रासकर्म्मणि'

नृत्यादि के द्वारा गोपी गण ही कृष्ण को सुखी करती हैं, उनसब को छोड़कर जगत् की नारीगण रासकार्य्य हेतु योग्या नहीं है।

मालारूपा प्रतिवस्तुपमा—

"विमल एव रविर्विशदः शशी प्रकृतिशोभन एव हि दर्पणः।
शिवगिरिः शिवहाससहोदरः सहजसुन्दर एव हि सज्जनः॥

रवि, विमल है, चन्द्रमा–सुन्दर है, दर्पण भी सुन्दर है, शिव गिरि कैलास, शिवहास सहोदर है, नन्दात्मज तो सहज ही सुन्दर है। यहाँ विमल, विशद एकार्थ का वाचक है। दृष्टान्त अलङ्कार—

दृष्टान्तो यत् सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

सधर्मस्येति पूर्वतोऽस्य भेदः। अयमपि साधर्म्म्य वैधर्म्म्याभ्यां द्विधा।

प्रतिवस्तूपमा के समान दृष्टान्त अलङ्कार भी प्रतिवस्तु से समर्थित होता है। अतः प्रति वस्तूपमा के पश्चात् दृष्टान्त अलङ्कार को कहते हैं। यहाँ समान सदृशधर्म है, प्रति वस्तूपमा के सदृश अभिन्न नहीं है, धर्म शब्द से गुण एवं क्रियाको जानना होगा। सदृश पदार्थ का प्रतिविम्ब भाव से स्थापन को दृष्टान्त कहते हैं। लक्षण में प्रति वस्तूपमा से भिन्न दिखाने के निमित्त सधर्म पद का उपन्यास

जनः कृष्णपदध्यायी विषयान्नाभिवांछति ।
माकन्दमुकुलास्वादी निम्बकान्नात्ति कोकिलः ॥

वैधर्म्ये यथा—

त्वयि दृष्टे कुरङ्गाक्ष्याः स्रंसते मदन-व्यथा ।
दृष्टानुदयभाजीन्दौ ग्लानिः कुमुद-संहतेः ॥

प्रतिवस्तूपमायामेकस्य साधर्म्यस्य द्विरुक्तिः । दृष्टान्ते

हुआ है । यह भी साधर्म्य वैधर्म्य से दो प्रकार होते हैं, दृष्टान्त क्रमश "जनः कृष्ण पदध्यायी विषयान्नाभिवाञ्छति ।
माकन्दमुकुलास्वादी निम्बकान्नात्ति कोकिलः ॥

श्रीकृष्ण चरण ध्यान परायण जन विषय को नहीं चाहता है, आम्रमुकुलास्वादी कोकिल निम्बका आस्वादन जिस प्रकार नहीं करता है ।

"शोभते गुण हीनापि गीः कृष्ण गुण योगतः ।
शालग्रामादि संस्पर्शाद् वन्द्यं स्यात् पाललं जलम् ।

श्रीकृष्ण के गुण स्पर्शसे गुण हीन वाणी भी शोभित होती है, शालग्रामादि के संस्पर्श से पङ्कमय जल भी वन्दनीय होता है । वैधर्म्य का उदाहरण

"त्वयिदृष्टे कुरङ्गाक्ष्याः स्रंसते मदन व्यथा ।
दृष्टानुदयभाजीन्दौ ग्लानिः कुमुद–संहतेः ॥

तुम्हें देखकर कुरङ्गाक्षी की मदन व्यथा विदूरित होती है, चन्द्रोदय को न देखकर कुमुद श्रेणीग्लानि को प्राप्त करती है । प्रति वस्तु उपमा में एक साधर्म्य की ही द्विरुक्ति होती है । प्रतिवस्तु उपमा के दृष्टान्त में राधा के द्वारा वचन में मनोधावन प्राञ्जन क्रिया से एकार्थ का बोध होता है, अतः प्रति वस्तुपमा ही है । दृष्टान्त अलङ्कार स्थलमें समस्त धर्मों का प्रति विम्बवत् अवभास होता है ।

सर्वेषां धर्माणां प्रतिविम्बवदवभासः ॥ अर्थान्तरन्यासे तु समर्थ्यसमर्थकवाक्ययोः सामान्य-विशेषभाव इत्येषामसांकर्यं ॥५॥

बोध्यः सोऽर्थान्तरन्यासो यत्सामान्यविशेषयोः ।
हेतुहेतुमतोश्चापि तदन्येन समर्थनं ।

सामान्यस्य विशेषेण समर्थनं, विशेषस्य च सामान्येन । हेतो र्हेतुमता समर्थनं, हेतुमतश्च हेतुनेति चतुर्विधोऽर्थान्तर-न्यासः । समर्थनस्य साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां दृष्टत्वादष्टविधतां भजति ।

क्रमेणोदा०—वृहत्सहायः कार्य्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥

दृष्टान्त अलङ्कार स्थल में शोभा वन्द्यता प्राप्ति क्रियाद्वय की समता है, किन्तु एक रूपता नहीं है, यहाँ समर्थ्य समर्थक वाक्य का सामान्य विशेष भाव से अर्थान्तर न्यास होता है । प्रति वस्तूपमा एवं दृष्टान्त अलङ्कार में उस प्रकार नहीं है । अतः उससे यह भिन्न अलङ्कार है ।

अर्थान्तरन्यास अलङ्कार—

बोध्यः सोऽर्थान्तरन्यासो यत्सामान्य विशेषयो ।
हेतुहेतुमतोश्चापि तदन्येन समर्थनम् ॥

विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन, सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन,हेतुमान् के द्वारा हेतुका समर्थन, हेतु के द्वारा हेतुमान्का समर्थन—इस रीति से चतुर्विध अर्थान्तर न्यास होते हैं । साधर्म्य वैधर्म्य के द्वारा समर्थन दृष्ट होने के कारण वह अलङ्कार अष्टविध होते हैं ।

क्रमशः उदाहरण—वृहत्सहायः कार्य्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।

अत्र विशेषेण सामान्यस्य समर्थनं ।

चिन्तयन्नागतः कृष्णं गान्दिनीनन्दनो यथा ।
तथैव सत्कृतस्तेन सफला हि सतां कृतिः ॥

अत्र सामान्येन विशेषस्य ।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥

अत्र संपत्करणेन कार्येण सहसा विधानाभावस्य विमृश्य-

सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥

यहाँ विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन हुआ है । क्षुद्र व्यक्ति भी वृहद् व्यक्ति की सहायता से कार्य्य सम्पन्न कर सकता है, जिस प्रकार पर्वत से निर्गत महानदी के सहित मिलित होकर क्षुद्रनदी भी सागर में मिलित होती है ।

सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन—
'चिन्तयन्नागतः कृष्णं गान्दिनी नन्दनो यथा ।
तथैव संस्कृतस्तेन सफल हि सतां कृतिः ॥

यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन हुआ है । श्रीकृष्ण का चिन्तन करते करते अक्रूर कृष्ण के समीप में जिस प्रकार उपस्थित हुआ, उसप्रकार ही वह कृष्णकर्त्तृकसमादृत भी हुआ । कारण-सज्जनों की कृति सफला होती है ।

यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन हुआ है ।
"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदं ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

सहसा ही कार्य्य आरम्भ करना उचित नहीं है । अविवेक ही परम आपद का स्थान है । विवेक पूर्वक कार्य्य कारी व्यक्ति को गुण लुब्धा सम्पद् स्वयं ही वरण करती है ।

कारित्वरूपस्य हेतोः समर्थनं ॥

पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तन्नृतये दिधीर्षा
रामः करोति हरकार्मुकमात्तसज्यम् ॥

अत्र हरकार्मुकात्तसज्जीकरणेन हेतुना पृथ्वीस्थैर्य्यादिः कार्य्यस्य समर्थनम्। एतानि साधर्म्योदाहरणानि वैधर्म्ये यथा

हरिविमुखस्य ममैते प्राणा निर्यान्तु गान्दिनेयस्य ।
तत्पदपङ्कजमधुपा ये स्यु र्जीवन्तु ते ध्रुवं जगति ।

यहाँ सम्पत् करण रूप कार्य्य के द्वारा सहसा विधानाभावात्मक विमृश्य कारित्व हेतु का समर्थन हुआ है ।

"पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तन्नृतये दिधीर्षा
रामः करोति हरकार्मुकमात्तसज्जम् ॥

राम हरकार्मुक में गुणार्पण कर रहे हैं, अतः पृथिवि ! तुम स्थिर हो जाओ, फणीन्द्र इस का धारण करो, कूर्म्मराज भी द्विगुणित रूप से इसे धारण करें, दिग् कुञ्जर वृन्द स्थिरत्व सार्थक हेतु धारण करने की प्रचेष्टा करें ।

यहाँ हर कार्म्मुक आत्तसज्जीकरण के द्वारा पृथिवी स्थैर्य्यादि रूप कार्य्य का समर्थन हुआ । ये सब साधर्म्म के उदाहरण हैं । वैधर्म्म का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

हरिविमुखस्य ममैते प्राणा निर्यान्तु गान्दिनेयस्य ।
तत्पदपङ्कजमधुपा ये स्यु र्जीवन्तु ते ध्रुवं जगति ॥"

अत्र सामान्येन विशेषस्य समर्थनं ।।

गुणानामेव दौरात्म्याद्धुरि धुर्य्यो नियुज्यते ।
असंजात--किणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गडिः ।

अत्र विशेषेण सामान्यस्य, एवमन्यदूह्यं ।।६।।

उपमेयस्योपमानाद्यद्याधिक्यं निबध्यते ।
व्यतिरेक स्तदा बोध्यो व्यस्ययादप्यसौ भवेत् ।।

क्वचिदुपमानादुपमेयस्याधिक्यं क्वचित्तूपमेयादुपमानस्य तत् ।

हरि विमुख गार्दनेय अक्रुर कहते हैं, मेरा प्राण निर्गत हो जाय। श्रीहरि पादपङ्कज मधुपगण को ही जगत् में जीवित रहना उचित है।

यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन हुआ है।

गुणानामेव दौरात्म्याद्धुरि धुर्य्यो नियुज्यते ।
असंजात--किणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गडिः ।।

दौरात्म्य हेतु गुण गणों का नियोग प्रथम किया जाता है-- मक्षिका न बैठने से अलस गौ सुख से शयन करता है।

यहाँ विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन हुआ है।

इस प्रकार अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत करना कर्त्तव्य है।

व्यतिरेक अलङ्कार--

उपमेयस्योपमानाद्यद्याधिक्यं निबध्यते ।
व्यतिरेक स्तदा बोध्यो व्यस्ययादप्यसौ भवेत् ।।

यदि उपमान से उपमेय का आधिक्य वर्णन होता है तो अथवा उपमान से उपमेयान्यून नहीं होता है तो व्यतिरेक अलङ्कार होता है,

"आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा--व्यतिरेकः"
स--च--एक उक्ते--अनुक्ते हेतौ पुन स्त्रिधा।

चतुर्विधोऽपि साम्यस्य बोधनाच्छब्दतोऽर्थतः
आक्षेपाच्च द्वादशधा श्लेषेऽपीति त्रिरष्टधा ।।
प्रत्येकं स्यान् मिलित्वाष्टचत्वारिंशद् विधः पुनः ।।"

उपमेयस्य उपमानादाधिक्ये हेतुरुपमेयगतमुत्कर्ष कारण उपमान गत निकर्ष कारणञ्च। तयोर्द्वयोरप्युक्तादेकः प्रत्येकं समुदायेन वानुक्तौ त्रिविध इति चतुर्विधऽप्यस्मिन्नुपमानोपमेयत्व--निवेदनं शब्देनार्थेनाक्षेपेणयेति द्वादश प्रकारोऽपि 'श्लेषे' अपि शब्दावश्लेषे--ऽपिभवतीति चतुर्विंशति प्रकारः। उपमानात् न्यूनतायामप्यनयैव भङ्ग्या चतुर्विंशति प्रकारतेतिमिलित्वाष्टचत्वारिंशद् प्रकारो व्यतिरेकः।

गुण अथवा दोष के द्वारा विलक्षण होने का नाम व्यतिरेक अलङ्कार है। यदि गुण वा दोष के द्वारा उपमान से उपमेय का आधिक्य होता है, उपमेय का आधिक्य, अथवा उपमेय का उपमान से न्यून न हो तो, यह व्यतिरेक अलङ्कार होता है।

हेतु का कथन, एवं अकथन व्यतिरेक से तीन प्रकार होगा, उपमान उपमेय का वैधर्म्य से ही व्यतिरेक होगा। उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष अथवा उपकर्ष होने से व्यतिरेक होगा, उपमा में वैधर्म्य नहीं है। यहाँ वैधर्म्य है। उपमान की अपेक्षा उपमेय अधिक होने से एक प्रकार होगा, उपमान की अपेक्षा उपमेय की न्यूनता से द्वितीय प्रकार है। हेतु की उक्ति से एक प्रकार ही होगा, हेतु का कथन न होने से तीन प्रकार होगा, केवल उपमेय का उत्कर्ष कारण उक्त न होने से एक प्रकार होगा। केवल उपमान का उत्कर्ष का कारण अनुक्त होने से एकविध है। समुदाय से यह तीन प्रकार हैं। इस प्रकार हेतु उक्त होने से जो एक प्रकार होता है, उस के सहित अनुक्त हेतु सम्पन्न त्रिविध के मेलन से अलङ्कार चतुर्विध होगा। उक्त रीति से सम्पन्न व्यतिरेक चतुर्विध शब्दतः सादृश्य कथन से आक्षेप व्यञ्जना से समान सदृशादि का बोध होने से द्वादशविध होगा, चार का गुणन तीनसे होने पर द्वादश विध होगा।

श्लेष एवं अश्लेष से दो प्रकार होकर चतुर्विंशति प्रकार होगा, उक्त रीति से उपमान से उपमेय न्यून होने पर भी व्यतिरेक चतुर्विंशति प्रकार होगा. द्विगुणित होकर अष्टचत्वारिंशत प्रकार होगा। उपमेय का उदाहरण—

राधिकेयं हरेः श्लाध्यसद्गुणावलि मण्डिता।
न सामान्यगुणान्यस्त्री यथैनां तं प्रसादय ॥

अत्र श्लाघ्यसद्गुणः सामान्य गुणयोरुक्तिः, तयोर्द्वयोः क्रम-युगपदनुक्तौ क्रमेण चानुक्तौ त्रयो भेदाः, इति चत्वारो भेदाः। यथा शब्देन शाब्दमौपम्यमत्र। अत्रैव अन्य स्त्री तुल्यनामिति पाठे आर्थमौपम्यम्। अनुक्त त्रितयञ्च पूर्ववत्। इत्यष्टौभेदाः।

"निर्म्मलं ते मुखं राधे जयतीन्दुं कलङ्किनम्।
सामार्थ्याक्षिप्तमौपम्य मत्रानुक्तित्रयञ्च पूर्ववत् इति द्वादशभेदाः।

श्रीराधिका श्रीकृष्ण के प्रशंसित गुणों से मण्डित हैं। अन्यस्त्री उनके सामान्य गुणों से युक्त नहीं है। यहाँ पर श्लाघ्य सद्गुण-सामान्य गुण की उक्ति, उन दोनों की युगपदनुक्ति से क्रमशः तीन भेद होते हैं—इस रीति से चारभेद हैं। यथा शब्द से शब्दौपम्य है। इस श्लोक में अन्य स्त्री तुल्यनामिति पाठ में आर्थी–औपम्य है। अनुक्तत्रितय भी पूर्ववत् है—इस प्रकार अष्टविधभेद हैं।

हे राधे ! तुम्हारा मुख निर्म्मल है, इसने कलङ्क चन्द्र को जीत लिया है। सामर्थ्याक्षिप्त औपम्य अनुक्तित्रय भी पूर्ववत् है। श्लेष में दृष्टान्त—'न चन्द्रवत् कलाः क्षीणा हरेऽनन्तकलभ्यते' हे हरे ! तुम अनन्त कला सम्पन्न ही चन्द्र की कलाके सदृश--यह क्षयिष्णु नहीं है। यहाँ इवार्थ में वति का प्रयोग है। यह शब्दौपम्य है। कलाशब्द श्लिष्ट है, क्षीणतानन्तकलतालोप से पूर्ववदनुक्ति है। हे हरे ! नदी नदेश होकर भी तुम समुद्र के समान कैसे हो ? तुम दोषाकर प्रिय हो, किन्तु वह भी दोषाकर प्रिय है। यहाँ सम शब्दसे आर्थी उपमा। है। नदीन शब्द श्लिष्ट है, अन्त्यादद्वय का क्रमसे युगपत् अनुक्तित्रय

हैं। अभङ्गुर गुण सम्पन्न विधुप्रिय राधावक्त्र विभङ्गुर गुणमुक्त विधूदय निमीलित पद्मको पराजित किया। यहाँ जिगाय यह उपमा, आपेक्षभ्या है। गुण विधु शब्द श्लिष्ट है, गुण विधु योग के अभाव से अनुक्तित्रय हैं।

"नदो न देशोऽपि हरे त्वञ्चाब्धिश्च समः कुत.।
दोषाकर प्रियोऽसि त्वमसौदोषाकर प्रियः।
"विभङ्गुर गुणं पद्म विधूदय निमीलितम्
जिगायाङ्गुर गुणं राधा वक्त्रं विधुप्रियम् ॥

कृष्ण, चन्द्र के समान क्षीण कल नहीं हैं। और इन्द्र के समान पक्षभित् भी नहीं हैं, सूर्य के समान तापप्रद भी नहीं है। इस रीति से यह अलङ्कार माला रूप भी होता है। इस प्रकार उपमेय की विलक्षणता से उदाहरण समूह हैं।

न्यूनता का उदाहरण—

"क्षीणः क्षीणोऽपि शशी योभूयो वर्द्धते सत्यम्।
विरम प्रसीद सुन्दरि ! यौवन मनिवर्त्ति यातं तु ॥

क्षीण से क्षीण होते हुये भी चन्द्र पुनः पुनः बढ़ते रहते हैं—यह सत्य है, हे सुन्दरि ! प्रसन्न हो, रुको, यौवन चले जाने से लौटता नहीं है। यहाँ उपमेयभूत यौवन की अस्थिरता का आधिक्य है। इससे उपमान से उपमेय का आधिक्य से एवं विपर्य्यय से व्यतिरेक है, इस प्रकार किसी के लक्षण में विपर्य्यय पद अनर्थक है, कतिपय व्यक्ति का कथन उसी प्रकार है।

किन्तु यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि आधिक्य न्यूनत्व का सत्वासत्व विवक्षित है, चन्द्र की अपेक्षा यौवन का असत्व प्रकाशित है, किंवा, इस उदाहरण में यथा कथञ्चित् समाध न है। उपमानादि की अपेक्षा से उपमेयभूत नल का अपकर्ष प्रतीति ही व्यतिरेक है, ऐसा कहो। वह विपर्य्यये का कहने से ही होता है। अत: 'न्यूनताथवा' इति सुष्ठु कहा है—

क्रमेणादा०—पल्लवितः कल्पतरोरेष विशेषः करस्य ते वीर।
भूषयति कर्णमेकः परस्तु कर्णं तिरस्कुरुते ॥

"विपर्य्यये वा" इस के अनुसार हुआ है।

व्यतिरेक भेद सङ्कलनम्।

उपमेयगतमुत्कर्ष कारणम्, उपमानगतमपकर्ष कारणञ्च एतयोरुभयोरेवोक्तौ—१

शाब्दौपम्ये—केवलोपमेय गतोत्कर्ष कारणानुक्तौ—१
केवलोपमेय गतापकर्ष कारणानुक्तौ—१

श्लेषे—१२ तयोरुभयोरेवानुक्तौ १

उपमानादुपमेयस्य आधिक्ये—२४

आर्थौपम्ये--उक्तक्रमेण—४
आक्षिप्तौपम्ये—उक्तक्रमेण—४
शाब्दौपम्ये— उक्तक्रमेण—४

अश्लेषे १२ आर्थौपम्ये— उक्तक्रमेण—४
आक्षिप्तौपम्ये उक्तक्रमेण ४

उपमानगतमुत्कर्ष कारणम्, उपमेयगतमपकर्ष कारणञ्च एतयोरुभयोरेवोक्तौ १

शाब्दौपम्ये—केवलौपमान गतोत्कर्ष कारणानुक्तौ १
केवलोपमेयगतापकर्ष कारणानुक्तौ १

श्लेषे १२ तयोरुभयोरेवानुक्तौ १

उपमानादुपमेयस्य न्यूनत्वे २४

आर्थौपम्ये—उक्त क्रमेण ४
आक्षिप्तोपम्ये उक्त क्रमेण ४

४८

शाब्दौपम्ये—उक्त क्रमेण ४
आर्थौपम्ये—उक्त क्रमेण ४

श्लेषे १२ आक्षिप्तौपम्ये—उक्तक्रम ४

४८

प्रस्तुत अन्योक्त लक्षणस्य दृष्टान्तः—

"पल्लवितः कल्पतरोरेष विशेषः करस्य ते वीर।

रक्तस्त्वं नवपल्लवै रहमपि श्लाघ्यैः प्रियायाः गुणै
स्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्ताः सखे मामपि।
कान्तापादतलाहति स्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयोः
सर्वं तुल्य मशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः॥

श्लेषविच्छित्तिकोऽयं व्यतिरेकः। शुद्धो यथा—

तत्तद्गुणै रगाधाः सन्ति न का धामनि स्त्रियोऽस्य हरेः।
आधारः खलु राधा नियतमसाधारणप्रेम्णः ॥७॥

भूषयति कर्णमेकः परस्तु कर्णं तिरस्कुरुते ॥"

हे वीर! तुम्हारे कल्पतरु विशेष कर का यह पल्लवित है, एक कर्ण को भूषित करता है, किन्तु अपर कर्ण को तिरस्कार करता है।

"रक्तस्त्वं नवपल्लवे रहमपि श्लाघ्यैः प्रियायाः गुणै
स्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्ताः सखे मामपि।
कान्तापादतलाहति स्तवमुदे तद्वन्ममाप्यावयोः
सर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः॥

"तुम नव पल्लव समूह से रक्त हो, मैं भी प्रशंसनीय प्रियाके गुणों से रक्त हूँ, तुम्हारे समीप में भ्रमर वृन्द आते रहते हैं, मेरे निकट भी कन्दर्प धेनु से मुक्त शर समूह आते रहते हैं। कान्तापद तलाघात तुम्हारे पक्ष में आनन्दकर है, मेरा भी वही है, हे सखे अशोक! तुम्हारे हमारे में सब कुछ तुल्य हैं, किन्तु तुम अशोक हो, और मुझ को विधाताने सशोक बनाया है।

यहाँ श्लेष विच्छित्तिक व्यतिरेक है। शुद्ध व्यतिरेक का उदाहरण

"तत्तद् गुणैरगाधाः सन्ति न का धामनि स्त्रियोऽस्य हरेः।
आधारः खलु राधा नियतमसाधारणप्रेम्ण ॥७॥

उन उन गुणोंसे परिपूर्ण ललना श्रीहरि को क्या नहीं है? किन्तु

अप्रस्तुतप्रशंसा तु सा चेत् प्रस्तुतमाश्रयेत् ।

अप्राकरणिकस्य प्रस्तावश्चेत् प्राकरणिकमाक्षिपति तदाऽप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः। तद्भेदानाह— कार्य्यकारण-सामान्य-विशेष-सदृशेषु हि ।

स्यात्प्रस्तुतेषु हेत्वादेः सदृशस्य च शंसनम् ॥

तदेवं पञ्चधा—क्रमेणोदाहरणम्—

आश्लिष्य क्व गतः कान्तो न जाने सखि सम्प्रति ॥

अत्र दुःखिता किमित्युपलक्ष्यते इति कार्ये प्रस्तुते तद्धेतोः कान्तविच्छेदस्य प्रस्तावः ॥१॥

श्रीराधा ही नियत असाधारण प्रेम का आधार है ।

अप्रस्तुत प्रशंसा—

वह यदि प्रस्तुत को आश्रय कर होती है, तो उसको अप्रस्तुत प्रशंसा कहते हैं ।

अप्राकरणिक का प्रस्ताव यदि प्राकरणिक अर्थ को सूचित करता है तो, वह अप्रस्तुत प्रशसालङ्कार होता है । उसके भेद को कहते हैं--

"कार्य्य कारण सामान्य विशेष सदृशेषु हि—

स्यात् प्रस्तुतेषु हेत्वादेः सदृशस्य च शंसनम्"

कार्य्य कारण--सामान्य विशेष एवं प्रस्तुत सदृश में सदृश हेतु का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसालङ्कार होता है । यह पञ्चविध हैं—क्रमशः उदाहरण--यह है —

"आश्लिष्य क्वगतः कान्तो न जाने सखि सम्प्रति ॥

हे सखि ! कान्त आलिङ्गन कर सम्प्रति कहाँ चला गया, मैं नहीं जानती हूँ । सखि !

यात्यस्तं पुष्णिं कुर्वन्ति वेशान्कृष्ण व्रजाङ्गनाः ।

अत्र कृष्णान्तिकागमने हेतौ प्रस्तुते तत्कार्यस्य वेशरचनस्य ॥२॥

गहनां कुहनां छेत्तुं रामनामानि कीर्त्तय ।

अत्राविद्या--विनाशकतया भक्ति-सामान्ये प्रस्तुते नाम-कोर्त्तनस्य भक्तिविशेषस्य ॥३॥

प्रसाद्य वनिता नाथ कमनीयातियत्नतः ।

अत्र स्वसखोरूपे विशेषे प्रस्तुते नायिकासामान्यस्य ॥४॥

कनकाचितमूलोऽयं तमालः किल दीव्यति ।

तुम दुःखिता क्यों जान पड़ती हो' इस प्रकार कहने के उद्देश्य से उसका हेतु कान्त विच्छेद को कहा गया है।

"यात्यस्तं पुष्णिं कुर्वन्ति वेशान् कृष्ण व्रजाङ्गनाः ॥'

यहाँ कृष्ण के समीप में आगमन रूप प्रस्तुत कार्य्य में उसका कार्य्य वेश रचन को कहा गया है।

"गहनां कुहनां छेत्तुं रामनामानि कीर्त्तय ।'

निविड़ दम्भ को छेदन करने के निमित्त रामनाम का कोर्त्तन करो ! यहाँ अविद्या विनाशक भक्ति सामान्य कथन प्रसङ्ग में नाम कीर्त्तन रूप भक्ति विशेष का वर्णन हुआ है।

"प्रसाद्य वनिता नाथ कमनीयातियत्नतः"

हे नाथ ! यत्न से कमनोया वनिता को प्रसन्न करना उचित है। यहाँ निज सखी रूप विशेष को प्रसन्न करने के उद्देश्य से नायिका सामान्य का कथन हुआ है।

"कनकाचितमूलोऽयं तमालः किल दीव्यति ।

यह सदृश का उदाहरण है—

कनक खचित मूल सम्पन्न तमाल वृक्ष शोभित है। यहाँ पीत-

अत्र पीतवाससि कृष्णे प्रस्तुते तत्तुल्यस्य स्वर्णनिबद्धमूलस्य तमालस्येति पञ्चधा ॥५।८॥

प्रस्तुतात्प्रस्तुते व्यक्ते कथ्यते प्रस्तुतांकुरः ॥

यत्र प्रस्तुतेन वर्ण्यमाणेनान्यदभिमतं प्रस्तुतं व्यज्यते स प्रस्तुतांकुरो नाम ॥ उदाहरणम्–

कोशद्वन्दमियं दधाति नलिनी कादम्ब-कञ्चुक्षतं
धत्ते चूतलता नवं किसलयं पुंस्कोकिलास्वादितं ।
इत्याकर्ण्य मिथः सखीजनवचः सा दीर्घिकायास्तटे
चेलान्तेन तिरोदधे स्तनतटं बिम्बाधरं पाणिना ॥

वसन कृष्ण का उल्लेख प्रस्तुत होने से सुवर्ण निबद्ध मूलक तमाल वृक्ष का कथन हुआ है।

प्रस्तुताङ्कुर अलङ्कार–

प्रस्तुत वर्णन से अन्यत् अभिमत वस्तु ध्वनित होती है। उसको प्रस्तुतालङ्कार कहते हैं—लक्षण

"प्रस्तुतात् प्रस्तुते व्यक्ते कथ्यते प्रस्तुताङ्कुरः।"

उदाहरण—"कोशद्वन्दमियं दधाति नलिनी कादम्ब--चञ्चुक्षतं
धत्ते चूतलता नवं किसलयं पुंस्कोकिलास्वादितं।
इत्याकर्ण्य मिथः सखीजनवचः सा दीर्घिकायास्तटे
चेलान्तेन तिरोदधे स्तनतटं बिम्बाधरं पाणिना॥

नीलवर्ण पक्ष हंस के चञ्चुक्षत कोष युगल को नलिनी धारण करती है, पुरुष कोकिलास्वादित नव किसलय को चुतलता धारण करती है। दीर्घिकाके तटदेश में सखी के पारस्परिक वचन को सुनकर एक नायिकाने वसनाञ्चल के द्वारा स्तनतट को एवं हस्त के

अत्र वाच्यार्थः प्रस्तुतः । इयमिति नलिनी, व्यक्तिविशेष-निर्देशात् दीर्घिकायास्तट इत्युक्तेश्च ॥९॥

विशेषः किञ्चिदारम्भात्कार्य्यं यद्दुष्करं भवेत् ।
आधेयं यदनाधारं यच्चैकं बहुवृत्तिमत् ॥

एकं कार्य्यं कुर्वतो यदि तेनैव व्यापारेण दुःशकमन्यत्कार्य्यं सिध्येत्, यदि प्रसिद्धमाधारं विनैवाधेयं तिष्ठेत्यदि चैकमेक-रूप्येण युगपदनेकत्र वृत्तिमत्स्यात्तदा त्रिविधो विशेषः । क्रमेणोदाहरणम्—

विधिना विदधे राधा सारमादाय सर्वतः ।
विद्युच्चन्द्रारविन्दादि तच्छेषेणैव निर्ममे ॥

द्वारा बिम्बाधर को आच्छादित किया ।

यहाँ वाच्यार्थ सुस्पष्ट है, एवं प्रस्तुत है, इयम् शब्द से नलिनी का बोध होता है । व्यक्ति विशेष निर्देश हेतु दीर्घिका के तटदेश में यह कथित हुआ है ।

विशेषालङ्कार—

"विशेषः किञ्चिदारम्भात्कार्य्यं यद् दुष्करं भवेत् ।
आधेयं यदनाधारं यच्चैकं बहुवृत्तिमत् ॥

एक कार्य्य करने में प्रवृत्त होने से यदि उसी प्रयत्न से दुष्कर अन्य कार्य्य निष्पन्न होता है, यदि--प्रसिद्ध आधार के बिना ही आधेय की स्थिति हो, यदि--एक एक रूप से स्थित वस्तु अन्यत्र युगपद् अवस्थित हो तो विशेष अलङ्कार होता है । वह त्रिविध है । क्रमश उदाहरण — "विधिना विदधे राधा सारमादाय सर्वतः ।
विद्युच्चन्द्रारविन्दादि तच्छेषेणैव निर्ममे

परलोकं गतस्यापि यस्य कुन्देन्दु--सुन्दर ।
जगद् व्याप्य यशो भाति स जीवति न संशयः ॥
अस्ति सा पुरतः पृष्ठे पार्श्वे वाचि मनस्यपि ।
कामः केनाध्वना मम प्रविश्य प्रतुदत्ययं ॥१०॥
विषमः स स्मृतो या स्याद् घटनाननुरूपयोः ।
इष्टार्थोद्योगतो यत् स्यादनिष्टस्यैव लम्भनं ॥
कार्य्यं यच्च विरूपं स्याद्वैरूप्याद्गुणकर्मणोः ।

विधि ने समस्त वस्तुओं का सार ग्रहण कर राधा का निर्म्माण किया है, और उसके निर्म्माण विशेष वस्तुओं के द्वारा विद्युत चन्द्र अरविन्द प्रभृति का निर्म्माण किया है । यह प्रथम कल्प का निदर्शन है—द्वितीय का निदर्शन–

"परलोकं गतस्यापि यस्य कुन्देन्दु-सुन्दर ।
जगद् व्याप्य यशो भाति स जीवति न संशयः ॥

हे कुन्देन्दु सुन्दर ! परलोक गमन करने पर भी जिस का यश जगद् में व्याप्त रहता है, निःसन्देह वही व्यक्ति जीवित है । तृतीय का दृष्टान्त—

"अस्ति सा पुरतः पृष्ठे पार्श्वे वाचि मनस्यपि ।
कामः केनाध्वना मम प्रविश्य प्रतुदत्ययं ॥१०॥

वह ललना--सम्मुख में पृष्ठ में, पार्श्व, मे वाणी में एवं मन में है, तथापि कन्दर्प-किस पथसे मेरे अन्तः करन में प्रविष्ट होकर मुझ को दुःखी बना रहा है !

विषम अलङ्कार—

विषमः स स्मृतो या स्याद् घटनाननुरूपयोः ।
इष्टार्थोद्योगतो यत् स्यादनिष्टस्यैव लम्भनम् ॥
कार्य्यं यच्च विरूपं स्याद्वैरूप्याद्गुणकर्मणोः ।

विषम अलङ्कार का वर्णन करते हैं—

"गुणौ क्रिये वा यत्स्यातां विरुद्धे हेतु कार्य्ययोः
यद्वारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवः।
विरूपयोः संघटना या च द्विषमं मतम्।

हेतु कार्य्य का गुण विरुद्ध होने से, अथवा क्रिया विरुद्ध होने से विरोध अलङ्कार होता है। कार्य्य गुण यदि कारण गुण से विरुद्ध होता है—यह एक प्रकार है। कार्य्य गत क्रिया—कारण गत क्रिया से विरुद्ध हो तो विरोधालङ्कार होता है, यह द्वितीय प्रकार है।

अथवा—आरब्ध कर्म्म का वैफल्य अनर्थ अनिष्ट की उत्पत्ति-यह तृतीय प्रकार है। विपरीत पदार्थ की योजना एकत्र होने से--यह चतुर्थ प्रकार है। यह विषम शब्द वाच्य लिङ्ग है, अलङ्कार शब्द का विशेषण होने के कारण विषम पुरुषोत्तम लिङ्ग होता है। एकदेशस्थ का विरोध से विरोधाभास होता है, किन्तु कार्य्य वृत्ति रूप से भिन्न देशस्थ का विरोध से विषम होता है। व्याख्या रूपसे गुणादि का वैषम्य होने से ही इस को विषम संज्ञा हुई है।

क्रमशः उदाहरणम्—

"कृष्णाधर पीयूषं पिब सिक्तसदा वंशिकेति मधुरंत्वम्।
वमसि रुतं गरलात् कटु युवतिगण विमोहनं किमिदम्।

वंशिका तुम सदा मधुर कृष्णाधर पान कर रही हो। तथापि गरल वमन करती रही हो। युवति विमोहन कार्य्य अतिकटु है, यहाँ कारण रूप मधुराधर पीयूष पान का कारण गुण कार्य्य गुण का उत्पादक है, किन्तु यहाँ विरुद्ध कटुरुत वमन है।

"त्वदीक्षणेन हे राधे! तत्तदानन्ददायिना।
जनितोऽयं स्मरो मह्यं दत्ते दाहं कथं प्रिये॥

हे राधे! हे प्रिये! तुम्हारे आनन्दद ईक्षणसे स्मर उत्पन्न होकर मुझ को तापित क्यों कर रहा है? यहाँ ईक्षण रूप कारण की आनन्द दान क्रिया द्वारा उसका कार्य्य रूप स्मर की दाहद न क्रिया का

क्रमेणोदा०—क्व वज्रसारश्चाणूरः क्व कृष्णः कुसुमप्रभः ॥
अत्राति कर्कशत्वेनातिमृदुत्वेन च विरूपयोश्चाणुर-कृष्णयो
घंटना ॥

विरोध है ।

"दृष्ट्वा राधां निपुण विधिना सुष्ठु केनापि सृष्टाम्
धाता ह्रीणः सदृशमनया यौवत निर्मिमित्सु ।
सारं चिन्वनसृजदिह तत् स्वस्य सृष्टेः समास्या
नैकाप्यासीदपितु समभूत पूर्व सृष्टि निरेर्था ॥"

निपुण विधि के द्वारा सृष्ट राधा को देखकर ब्रह्मा जीने उनके सदृश सृजन करने की इच्छा की और समस्त वस्तुओं से सार लेकर सृजन करने पर भी उनके समान सृष्टि नहीं हुई, किन्तु पूर्व पूर्व सृष्टि विफला हो गई है । यहाँ राधा के समान कोई नहीं है, वस्तुतः पूर्व सृष्टि निःसार हो गई ।

"क्वेमौ नयनपीयूषनिषेकौ मृदुलाङ्गकौ
मल्लाः क्वेमा मदोत् फुल्लाः संरब्धा वज्र विग्रहाः ॥

ये दोनों बालक—राम कृष्ण, मृदुल अङ्ग के तो हैं ही, प्रत्युत नयनानन्द दायक भी हैं, और ये मल्ल मदसे उत्फुल्ल क्रोधी और कितने कठोर शरीर के हैं ।

यहाँ कोमल राम कृष्ण को कठिन मल्ल के साथ भिड़ादेना विरुद्ध है ।

"नायमेकाश्रया भावाद् विरोधाभास इष्यते ॥

इसमें एकाश्रय का अभाव से विरोधाभास अलङ्कार नहीं हुआ है ।
प्रस्तुत ग्रन्थोक्त उदाहरणों का समन्वय यह है—

"क्व वज्रसारश्चाणूरः क्व कृष्णः कुसुमप्रभः ॥"

अत्राति कर्कशत्वेनातिमृदुत्वेन च विरूपयोश्चाणूर--कृष्णयो घंटना ।
यहाँ कर्कशत्व एवं मृदुत्व के कारण विरूप--चाणूर--कृष्ण का

अयं दुग्धसिन्धोः पति गोकुलेशो हरि भूरि दुग्धं प्रदातेति
लोभात् ।
भजन्तोद्वहन्तेन तु च्यावितोशाः स्वकान्मातृदुग्धाद्वयं
वारिताः स्म ॥

तमालश्यामलोप्येष तवासिरसुरान्तक ।
आसज्य परसेनायां तनोति विशदं यशः ।
अत्र श्यामरूपं कारणगुणस्तद्वैरूप्यं शौक्ल्यं कार्ये ।
जातः सखि मनोजस्ते नेत्रेणानन्ददायिना ।
तापं तनोति कृष्णस्य तन्वि चित्रमिदं महत् ।
अत्र कारणनिष्ठा क्रियानन्दः तया विरूपा तापक्रिया कार्ये ॥

मिलन है ।

दुग्ध सिन्धु पति गोकुलेश हरि भूरि दुग्ध प्रदाता हैं, इस लोभ से निखिल वासना को परित्याग कर लोक भजन करते हैं, हमसब तो मातृ दुग्ध पान से भी वञ्चिता हो गये हैं ।

तमालश्यामलोऽप्येष तवासिरसुरान्तक ।
आसज्य परसेनायां तनोति विशदं यशः

तमाल श्याम वर्ण होने पर भी तुम्हारी असि असुरान्तक है, पर सेना को प्राप्त कर विशद यशको विस्तार करती है । यहाँ श्याम रूप कारण गुण उसको वैरूप्य शुक्ल कार्य्य का प्रकाशक है ।

"जातः सखि मनोजस्ते नेत्रेणानन्ददायिना ।
तापं तनोति कृष्णस्य तन्वि चित्रमिदं महत् ॥

हे सखि ! तुम्हारे आनन्दद नेत्र के द्वारा मनोज उत्पन्न होकर कृष्ण को सन्तप्त कर रहा है, तन्वि ! यह महान् आश्चर्य्य कर है । यहाँ कारण निष्ठा—क्रियानन्दः उस से विरूप ताप क्रिया रूप कार्य्य समुद्भूत है ।

तद्गुणः स्वगुणं हित्वा यद्यन्यगुणमाश्रयेत् ॥
यथा—अधराञ्जनयोः कान्त्या सुतनोरुपरंजिताः ।
पश्य गुञ्जाफलायन्ते मुक्ता नासावलम्बिनाः ॥१२॥
सङ्गतान्यगुणानङ्गीकारस्तु स्यादतद्गुणः ॥

तद्गुण अलङ्कार—लक्षण यह है—

"तद्गुणः स्वगुणं हित्वा यद्यन्यगुंणमाश्रयेत् ।

निज गुण को छोड़कर अन्य गुण को आश्रय करने से तद्गुण अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

अधराञ्जनयोः कान्त्या सुतनोरुपरंजिताः :
पश्य गुञ्जाफलायन्ते मुक्ता नासावलम्बिनाः ॥

अधराञ्जन की कान्ति के द्वारा सुतनुरञ्जिता हुई है, देखो ! नासावलम्बिमुक्ता गुञ्जाफल के सदृश दिखाई देती है ।

भक्तिरसामृतशेष में उक्त है—

"तद्गुणः—स्वगुणत्यागादुत्कृष्टगुणग्रहः"

निज गुण का त्याग कर अत्युत्कृष्ट गुण का ग्रहण से तद्गुण अलङ्कार होता है । उदाहरण—

"राधायाः कर पङ्कजे विनिहिता कौन्दी मुदा वृन्दया
या माला लघु लोहितोत्पलकुलस्रक् श्रीमिमेषा दधे ।
सूक्ष्मेन्दीवरमालरोचिरनया कृष्णस्य कण्ठेऽर्पिता
तेनास्या हृदि योजिता स पुलके चाम्पेयमाल्यद्युतिम् ॥"

वृन्दा ने श्रीराधा के हस्त में कुन्द की माला दी, किन्तु वह माला, लघु लोहितोत्पल के समान हो गई, और कण्ठार्पिता सूक्ष्मेन्दीवर कान्ति की माला श्रीराधा को पहनाने से वह माला चम्पक पुष्प की द्युति की माला हो गई ।

मीलित अलङ्कार में अन्य वस्तु के द्वारा आच्छादन होता है,

यथा—क्षीराब्धेरुदराज्जातः कालकूटस्य सोदरः ।
तथापि रक्त एवैकः कौस्तुभो न सितासितः ॥१३
पूर्वख्यातगुणोत्कर्षोऽनुगुणः कारणान्तरैः ॥

किन्तु तद्गुण में अन्य वस्तु के गुण के द्वारा मण्डित होना है ।

अतद्गुण—

सङ्गतान्यगुणानङ्गीकारस्तु स्यादतद्गुणः ॥

सङ्गत अन्यगुण का अङ्गीकार न करने से अतद्गुण अलङ्कार होता है । उदाहरण—

क्षीराब्धेरुदराज्जातः कालकूटस्य सोदरः ।
तथापि रक्त एवैकः कौस्तुभो न सितासितः ॥"

कालकूट का सहोदर कौस्तुभ क्षीराब्धि से उद्भव है । तथापि एक ही कौस्तुभ सितासित नहीं है, रक्त है ।

तद्गुण का वैपरीत्य से अतद्गुण अलङ्कार होता है । उस में अपर का गुण ग्रहण नहीं होता है । अर्थात् हेतु होने पर भी परगुण ग्रहण करने की योग्यता सन्निधानादि होने पर भी परगुण का अननुहार—अग्रहण से अतद्गुण अलङ्कार होता है । उदाहरण—

"नानृतं तव गोविन्द सस्नेहोऽस्मीति यद्वचः ।
यन्मे रागवति स्वान्ते निहितोऽपि न रज्यसि ।

अथवा—गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः ।
राजहंस तव सैवशुभ्रता चीयते न च नचापचीयते ।

पूर्वत्र रागयुक्त हृदय होकर भी गोविन्द अनुरक्त नहीं हुये, उत्तर दृष्टान्त में अप्रस्तुत प्रशंसा विद्यमान होने पर भी गङ्गा यमुना की अपेक्षा से प्रकृत हंस को गङ्गा यमुना सम्पर्क से भी गुण ग्रहण नहीं हुआ । वर्णान्तर की उत्पत्ति न होने से विषय से भी भिन्न हुआ ।

राग युक्त हृदय होने पर भी गोविन्द में रक्तत्व निष्पन्न नहीं हुआ । द्वितीय दृष्टान्त में अप्रस्तुत प्रशंसा विद्यमान होने पर भी गङ्गा

यथा—मर्कटो मदिरामत्तो वृश्चिकेनापि दंशितः।
ग्रस्तश्चैव पिशाचेन कुरुते गुरु चापलम् ॥
अत्र स्वाभाविकस्य कपिचापलस्य मद्यादिभिरुत्कर्षः ॥१४॥

अनुगुणः।

प्रत्यनीकं बलिष्ठस्य रिपोः पक्षे पराक्रमः ॥

यथा—मध्येन तनुमध्या मे मध्यं जितवतीत्ययम्।
इभकुम्भौ भिनत्यस्याः कुचकुम्भनिभौ हरिः ॥१५॥

यमुना के सम्पर्क से भी हंस की तत्तद् रूपता नहीं हुई। यहाँ गुणाग्रहण रूप विच्छित्ति विशेष का आश्रय होने के कारण विशेषोक्ति से इसका भेद है। वर्णान्तरोत्पन्न न होने के कारण विषम से यह भिन्न हुआ।

अनुगुण—अलङ्कार—

"पूर्वख्यात गुणोत्कर्षोऽनुगुणः कारकान्तरैः।

कारकान्तरों के द्वारा पूर्णख्यात गुणोत्कर्ष होने से अनुगुण अलङ्कार होता है। दृष्टान्त—

"मर्कटोमदिरमत्तो वृश्चिकेनापि दंशितः।
ग्रस्तश्चैव पिशाचेन कुरुते गुरुचापलम् ॥"

वानर स्वाभाविक चपल तो है ही—उसमें भी उसने मदिरा पान किया है,—वृश्चिक ने भी दंशन किया है। एवं पिशाच के द्वारा ग्रस्त होने से वह अतिशय चपलता कर रहा है।

यहाँ कपिस्वाभाविक ही चपल है, किन्तु मद्यादि के द्वारा उत्कर्ष हुआ है। प्रत्यनीक अलङ्कार-

लक्षण—प्रत्यनीकं—बलिष्ठस्य रिपोः पक्षे पराक्रमः"

बलिष्ठ रिपु के पक्ष में पराक्रम प्रदर्शन से प्रत्यनीक अलङ्कार होता है। उदाहरण—

उत्कर्ष्यं वस्तु यत्तस्योपमानत्वं प्रकल्प्यते।
प्रख्यातस्योपमेयत्वमुपमानस्य यद्भवेत्।।
निष्फलत्ववचो यच्च तत् प्रतीपं त्रिधा स्मृतं ॥

"मध्येन तनुमध्या मे मध्यं जितवतीत्ययम्।
इभ कुम्भौ भिनत्यस्याः कुचकुम्भनिभौहरिः ॥"

तनुमध्याने मेरा मध्यभाग को जीत लिया है। किन्तु यह हरि, सिंह जिस प्रकार गज कुम्भ द्वयको भेदन करता है, उसी प्रकार इसके कुच कुम्भ द्वय को भेदन करता है।

प्रत्यनीकमशक्तेन प्रतीकारे रिपोर्यदि
तदीयस्य तिरस्कार स्तस्योत्कर्षस्य साधकः"(भक्तिरसामृतशेषः)

अभीष्ट कार्य्य दुष्कर होने से प्रत्यनीक अलङ्कार होता है।

दृष्टान्त—कृष्णस्य सौन्दर्य्यभरैर्विनिर्जितः
कामोऽस्य किञ्चित् प्रतिकर्त्तुमक्षमः।
राधामिह प्रीतिमतीं विनिर्णयं
स्तां बाधतेऽद्धा तदगोचरेऽबलाम् ॥

रिपुदमन करना असम्भव होने से रिपु पक्ष का तिरस्कार करना एवं उससे रिपुका उत्कर्ष होने पर प्रत्यनीक अलङ्कार होता है।

कृष्ण सौन्दर्य्य से पराजित होकर कामदेवने उन का कुछ भी कर न सका, किन्तु राधा को प्रीतिमती एवं अबला जानकर कृष्ण के विरह में दुःख दिया है।

प्रत्यनीक अलङ्कार के द्वितीयार्द्ध में प्रतीपालङ्कार का प्रसङ्ग होने पर प्रतीपालङ्कार का वर्णन करते हैं।

"उत्कर्ष्य वस्तु यत्तस्योपमानत्वं प्रकल्प्यते।
प्रख्यातस्योपमेयत्वमुपमानस्य यद् भवेत् ॥
निष्फलत्व वचो यच्च तत् प्रतीपं त्रिधास्मृतम् ॥
भक्ति रसामृत शेषे अस्य लक्षणम्—

'प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम् ।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ।।

लोक प्रसिद्ध उपमान की कल्पना उपमेय रूप से अथवा उपमान को निष्फल कहने से प्रतीप अलङ्कार होता है। यह दो प्रकार के हैं—प्रसिद्ध उपमान का वर्णन उपमेय रूप से—यह प्रतीप प्रतिकूल होता है। प्रथम प्रकार है। द्वितीय प्रकार में उपमान को निष्फल सूचित करने से प्रतीप प्रतिकूल होता है।

क्रमशः उदाहरण—सुरहर कविलोकः सुष्ठु वैदग्ध्य मुग्धः
शिवाशिव भुवि भद्राभद्र भावेऽनभिज्ञः ।
तव विगतकलङ्केनाननेनैव योऽयम्
शशिनमुपमिमीते नैवलज्जां करोति ।।"

हे मुरहर ! कविलोक सुष्ठु वैदग्ध्य मुग्ध है। शिवाशिव पृथिवी में भद्र अभद्र के विषय में वह अनभिज्ञ है। तुम्हारे कलङ्क हीन आनन के सहित शशी का उदाहरण प्रस्तुत करता है, इससे लज्जित नहीं होता है।

"निर्म्माय राधा वदनं विधाता दृष्ट्वाम्बुजेन्दू बहुदोषपूर्णौ
अशुद्धतां व्यञ्जयता तयोस्तौ कृतौ द्विरेफाङ्कमसी विलिप्तौ ।।"

विधाता ने राधा वदन को रचकर अम्बुज एवं चन्द्रको अनेक दोष पूर्ण देखा, उन दोनों को अशुद्ध घोषित करने के निमित्त कमल को भ्रमर से एवं चन्द्र को कलङ्क से चिह्नित कर दिया।

अत्र राधा वदनस्यैव तत्तच्छोभातिशयाश्रयणात् तयोर्निष्कलङ्कत्वम्।
उक्त्वा चात्यन्तमुत्कर्षमत्युत्कृष्टस्य वस्तुनः ।
कल्पिते ऽप्युपमत्वे प्रतीपं केचिदुचिरे ।।"

यहाँ राधा वदन ही अत्यधिक शोभा मण्डित है, उत्तम की विद्यमानता में अधम की आवश्यकता नहीं है। अतः चन्द्र एवं कमल निष्फल है। अत्युत्कृष्ट वस्तु को अत्यन्त उत्कृष्टत्व कल्पना करके अथवा उपमान रूप से कल्पना करके प्रतीप अलङ्कार होता है। यह

क्रमेणोदाहरण —

अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहलतातमास्य दृप्यः।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम्।

अत्र परमदारुणत्वेन हालाहलमुत्कर्ष्य दुर्जनवचनस्योपमानं तत्कल्पितं।

विवेक--विधुरः प्रेयान् यत्तेनाप्युपमीयते।
कृशोदरि तवानेन मुखेन मृगलाञ्छनः।

मत कतिपय व्यक्तियों का है।

"मम वदनमेव नयनानन्दकमिति मा कृथाः सुतनु गर्वम्
अपरोऽपि कश्चिदेवं राकायां शरदि शीतांशुः ।।"

अत्र नयनानन्द मुत्कर्ष उक्तः, स्तदमुक्तं नायमलङ्कारः यथा--ब्रह्मेव ब्राह्मणो वदतीत्यादि "

मदीय वदन ही आनन्ददायक है, इस प्रकार गर्व न करो, अपर भी कोई है, शारदीय पूर्णिमा का चन्द्र को देखो। यहाँ नयनानन्द का ही उत्कर्ष है। उस के बिना अलङ्कार नहीं होगा। जिस प्रकार ब्रह्मा के समान ब्राह्मण को कहते हैं।

काव्य कौस्तुभ कारोक्त लक्षण का उदाहरण—

"अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहलतातमास्य दृप्यः।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम्।

हालाहल ! मैं ही सुदारुणों के मध्य में गुरु हूँ—इस प्रकार गर्वित होना अतीव असमीचीन है, कारण इस भुवन मे आपके समान अपर भी है--वह है—दुर्जनों के वचन समूह। यहाँ परम दारुण रूप में हालाहल का उत्कर्ष प्रस्तुत करके दुर्जन के वचन को उपमान माना गया है।

विधाय वेधा वदनं मृगाक्ष्या निरीक्ष्य चन्द्रं क्षयिणं जडञ्च ।
अशुद्धतां तस्य वदन्स विज्ञः कलङ्कमस्या कलयाञ्चकार ॥

एतस्मिन्वदने सति निष्फलोऽयं विधुरिति तत्राङ्कमसीक्षेपः ।

भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा त्रिधा वस्त्वादि--भावतः ।
वस्तुनो वस्त्वन्तरभावेनाहेतो हेतुभावेन ।
फलस्य फलभावेन च सम्भावना त्रिविधोत्प्रेक्षा ॥

"विवेक विधुरः प्रेयान् यत्तेनाप्युपमीयते ।
कृशोदरि तवानेन मुखेन मृगलाञ्छनः ॥"

हे कृशोदरि ! प्रिय विवेक विधुर है, कारण-तुम्हारे मुख के सहित मृगलाञ्छन चन्द्र का उपमा दी गई है ।

"विधाय वेधा वदन मृगाक्ष्या निरीक्ष्य चन्द्र क्षयिष्णु जड़ञ्च ।
अशुद्धतां तस्य वदन् स विज्ञः कलङ्कमस्या कलयाञ्चकार ॥"

विधाता ने मृग नयनी के वदन निर्म्माण करने के पश्चात् क्षयिष्णु जड़ चन्द्र को देखा, और उसको अशुद्ध प्रतिपन्न करने के निमित्त कलङ्क स्थापित किया है । कारण— विधाता विज्ञ है ।

यहाँ इस प्रकार ललना का बदन रहते हुये, विधु का रहना निष्फल है, अतः उसको कलङ्क के द्वारा परिचित विज्ञ विधाता ने किया। यह प्रतीप है ।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार-लक्षण

"भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा त्रिधा वस्त्वादि भावतः ।
वस्तूनां वस्त्वन्तर भावेनाहेतो हेतु भावेन ।
फलस्य फलभावेन च सम्भावना त्रिविधोत्प्रेक्षा ॥

वस्तु आदि भावसे उपमेय को उपमान रूप में सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा होगी, यह उत्प्रेक्षा तीन प्रकार की हैं । वस्तु की वस्तु अन्तर भाव से हेतु को हेतु भाव से, फल की फल भाव से सम्भावना

उत्कटतया प्रकृष्टस्योपमानस्येक्षा प्रतीतिरिति योगाद्-उत्कटोपमानकोटिकः संशयः सेत्यर्थः ॥

क्रमेणोदा०— जृम्भानुबन्धविकसद्वदनोदराणां
चन्द्रः करेण कृपयेव कुमुद्वतीनां ।
निर्वाप्य गाढ़विरहानलमुज्वलन्त-
मङ्गारपुञ्जमिव कर्षति भृङ्गसङ्घम् ॥

अत्र भृङ्गसङ्घस्वरूपस्य निर्वापिताङ्गारपुञ्ज-स्वरूपत्वेन सम्भावना स्वरूपोत्प्रेक्षा । उपमानस्येह तत्पुञ्जस्योत्कटा प्रतीतिरस्ति ।

करने पर त्रिविध उत्प्रेक्षा होती हैं ।

उत्कट रूपसे प्रस्तुत उपमान को देखने से यह अलङ्कार होता है, अर्थात् इस प्रकार योग से उत्कट उपमान कोटिक संशय ही उत्प्रेक्षा है ।

क्रमशः उदाहरण—"जृम्भानुबन्धविकसद्‌वदनोदराणां
चन्द्रः करेण कृपयेव कुमुद्वतीनाम् ।
निर्वाप्य गाढ़विरहानलमुज्वलन्त-
मङ्गार पुञ्जमिव कर्षति भृङ्ग सङ्घम् ॥"

चन्द्र किरणों के द्वारा कुमुदगण जृम्भाच्छल से विकसित होने पर मानों निविड़ विरहानल जो प्रज्वलित हो रहा था वह शान्त हुआ कुमुद विकसित होने से भृङ्ग समूह का जो आकर्षण हुआ, वे सब निर्वापित विरहानल के अङ्गार सदृश प्रतीत होने लगे ।

यहाँ भृङ्ग संघ स्वरूपको निर्वापित अङ्गार पुञ्जरूप में सम्भावना करना ही उत्प्रेक्षा है । यहाँ पर उपमान रूप भ्रमर पुञ्ज की उत्कट प्रतीति है ।

सा राधिका मदधिकेतिरुषातिताम्र
श्चन्द्रो विजेतुमुदयं त्वरितो जगाम ।
वीक्ष्याथ तत्पदलसत्तरवरांशुजालं
पाण्डु विदग्धहृदयः स बभूव सद्यः ।

अत्र पूर्वाद्रिचारोहणादिक्रमेण व्योम्नि विचरतो विधो रक्तिमपाण्डिमलाञ्छनव्यक्तिः स्वाभाविकी, सा चात्र श्रीराधिका-विजिगीषा तदङ्घ्रिनखरांशुदर्शन-कृतात्म-तिरस्कारहेतुकत्वेन सम्भाव्यते। न च तस्यां तद्विजिगीषादि हेतुरित्यहेतुत्वेन सम्भावना हेतूत्प्रेक्षा ।।

"सा राधिका मदधिकेतिरुषातिताम्र
श्चन्द्रो विजेतुमुदयं त्वरितो जगाम ।
वीक्ष्याथ तत्पदलसत्तरवरांशुजालं
पाण्डु विदग्ध हृदयः स बभूव सद्यः ।।"

राधिका हमसे अधिक सुन्दरी है,—यह मान कर चन्द्र उनको पराजित करने के निमित्त पूर्वाचल में उदित होने के निमित्त आशु प्रस्थान किया, किन्तु श्रीराधिका की पदाङ्गुलिस्थित नखर चन्द्रिका को देखकर वह विदग्ध हृदय चन्द्र सद्य पाण्डुवर्ण को प्राप्त किया। यहाँ पूर्णाचल के आरोहण क्रमसे गगन में विचरण परायण चन्द्र का नव कुङ्कुमारुण होना एवं श्वेत वर्ण से चिह्नित होना स्वाभाविक है। इस प्रकार वर्णानुरञ्जन से प्रतीत होता है कि— उसकी इच्छा राधिका को जय करने की रही। किन्तु श्रीराधिका की चरणाङ्गुलिस्थित नखर चन्द्रिका को देखकर अपने को वह तिरस्कार करते करते श्वेत वर्ण हो गया। इस प्रकार सम्भावना की जाती है। इस प्रकार सम्भावना में वास्तविक जयेच्छा हेतु नहीं है, किन्तु हेतु रूप में सम्भावना होने से हेतुत्प्रेक्षा हुई है।

वीक्ष्यावलग्नं सरसीरुहाक्ष्याः विभज्यमानं स्तनयो र्भरेण ।
तयो र्विधृत्यै विधिरद्भुताभि र्बबन्ध तत् किं त्रिबली-लताभिः

अत्र मध्यः स्वयमेव स्तनौ धरति न तु लताबन्धन—

"वीक्ष्यावलग्नं सरसीरुहाक्ष्याः विभज्यमान स्तनयो र्भरेण ।
तयो र्विधृत्यै विधिरद्भुताभि र्बबन्ध तत् किं त्रिबली लताभिः ।।

कमल नयनीओं के कटिदेश को स्तन भार से भग्नोम्मुख देख कर विधिने क्या उसको यथावत् रखने के निमित्त त्रिबली लता के द्वारा बँधा है। यहाँ मध्यदेश स्वभावतः ही स्तन द्वय को धारण करता है, किन्तु लताबन्धन भावसे निश्चित त्रिवली धारण सामर्थ्य से नहीं, इस प्रकार मध्य देश के द्वारा स्तन धारण रूप जो फल है, उसकी जो सम्भावना की गई है, इस से फलोत्प्रेक्षा हुई है।

भक्ति रसामृतशेषोक्त उत्प्रेक्षा प्रकरण यह है—

"भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता ।।
वाच्येवादेः प्रयोगे स्यादप्रयोगे परापुनः ।
जाति गुणः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि ।
तदष्टधापि प्रत्येकं भावाभावाभिमानतः
पुनःक्रिया स्वरूपत्वान्निमित्तस्य पुनश्च ताः
द्वात्रिंशद्विधतां यान्ति—

निश्चयालङ्कार निरूपण के अनन्तर निश्चयात्मक उत्प्रेक्षा अलङ्कार का निरूपण करते हैं, उपमेय को उपमान रूपमें सम्भावना करना--उत्प्रेक्षा है। सम्भावना--अंशद्वय के मध्य में एक अंश में किसी प्रकार दृढ़ ज्ञान रहना है। जैसे "सम्भावयामि स्थाणुरेवायम्' यहाँ स्थाणु अंश में दृढ़ता है,पुरुष अंशमें दुर्बलता है, अतः सम्भावना अंश विशेष में किञ्चित् निश्चय रूप है। किन्तु समुदाय में संशय ही रहता है। शुद्ध संशय स्थल में उभय अंश में ही समान बल रहता

है। जैसे 'स्थाणु र्वा पुरुषो वा' यहाँ स्थाणु में एवं पुरुष अंश में समान बल होता है, इससे सम्भावन का अर्थ मनसि करणम् मननम् है, धारणम्, धारणा, प्रभृति सम्भावना के पर्य्याय शब्द हैं। प्रकृत की वर्णना में प्रस्तुत उपमेय का ग्रहण होता है, परात्मना—उस से भिन्न उपमान रूपसे सम्भावना मन में करना—उत्प्रेक्षा नामक अलङ्कार है। उद् ऊर्द्ध्वदेश में दृष्टि जिस से होती है, वह उत्प्रेक्षा लङ्कार है। किसी पदार्थ की वर्णना करने में वर्णन कर्त्ता की दृष्टि यदि ऊपर की ओर हो तो उत्प्रेक्षा होती है।

रूपक में आरोप को, भ्रान्तिमान में भ्रम को, अतिशयोक्ति में अध्यावसाय की निश्चयता है। उत्प्रेक्षा में—सम्भावना की संशय रूपता है, रूपक सारोपाख्य लक्षणा मूलक है, अतिशयोक्ति में साध्यवसानाख्य लक्षणामूल है, यह लक्षणामूला नहीं है, सन्देह केवल संशय मूलक है, किन्तु यह उत्प्रेक्षा—सम्भावनात्मक संशय रूप है। उत्प्रेक्षा—प्रथम वाच्या प्रतीयमाना रूप से दो प्रकार हैं, वाच्य शब्द से बोध्य प्रतीयमाना आर्थी है। इवादि के प्रयोग से वाच्या होगी। इवादि का अप्रयोग से आर्थी होती, वाच्य एवं प्रतीयमाना उभय में ही जाति विशिष्ट अर्थ, गुण, क्रिया द्रव्य, ये सब उत्प्रेक्षा के विषय होंगे। समुदायको लेकर उत्प्रेक्षा अष्टविध हैं। भाव सम्भावना से, अभाव सम्भावना से उक्त अष्टविध द्विगुणित होकर षोड़श विध हैं, पुनः वह गुण स्वरूप क्रिया स्वरूप से प्रत्येक प्रकार द्विगुणित होने से द्वात्रिंशत् प्रकार उत्प्रेक्षा होती हैं।

वाच्योत्प्रेक्षा का उदाहरण—

"अभिसारे चल चेला व्रजतन्वीनां ततो रुरुचे।
अपि किं विजय पताका दधिरेऽनङ्गस्य सङ्गतिः-'पुरतः'

अभिसार के समय व्रजतरुणीगण अतिशय शोभित है, पवन के द्वारा उनके अङ्गस्थित वसनाञ्चल कम्पित होने से कनक स्तम्भ में विजयी कन्दर्प की विजय पताका शोभित हुई है। यहाँ विजय पताका

अनेक होने से जात्युत्प्रेक्षा है, जाति का कथन होने पर एक वचन प्रयोग होता है। सकल विषयक ज्ञान होने पर भी अनावश्यक विषय में मौनावलम्बन, सामर्थ्य होने पर भी क्षमा, सहिष्णुता, दान कार्य्य में अहङ्कार हीनता। इस प्रकार श्रीमान् उद्धव में क्या गुण समूह सकल गुणों से विभूषित ही थे, यहाँ विभूषितत्व ही गुण है।

"ज्ञानेऽलम्भाषिता वीर्य्ये क्षान्ति र्दानेऽप्यमानिता।
एवं श्रीमत्युद्धवे किं गुणा गुणाविभूषिताः॥"

"पाञ्चजन्य स्वनः कृष्ण द्विड् बध्रूगर्भ पातनः
प्रायश्चित्तं पृच्छतीव शुद्धचै विधिसभां गतः॥"

श्रीकृष्णविद्वेषी की ललनाओं के गर्भपातन हेतु ही पाञ्चजन्य की ध्वनि सत्य लोक में उपस्थित होकर मानो प्रायश्चित्त विधि को पूछने लगी, यहाँ "पृच्छति" यह क्रिया है।

"चकोर जयिनोः कृष्ण नेत्रयोऽपि पोषकः,
मुख बिम्बः स राधायाः पूर्णश्चन्द्र इवापरः॥

चकोर को जीतने वाले श्रीकृष्ण नेत्रों का पोषक श्रीराधा का मुखविम्ब है, वह द्वितीय पूर्ण चन्द्र के समान है। यहाँ चन्द्र एक व्यक्ति होने के कारण द्रव्य है। यह तो भावाभिमान का दृष्टान्त है। अभावाभिमान का दृष्टान्त—

"राधाया स्तद्विधौ भूत्वा कष्टं तौ गण्ड मण्डलौ,
अपश्यन्ताविवान्योऽन्यं तारुण्ये पाण्डुतां गतौ॥

विरह दुःख से राधा के गण्ड मण्डल परस्पर को न देख कर तारुण्य में पाण्डुता को प्राप्त किये हैं। यहाँ 'अपश्यन्तौ' क्रिया का अभाव है। इस प्रकार अन्य दृष्टान्त प्रस्तुत करना चाहिये। निमित्त का गुण रूपत्व में दृष्टान्त—"पाञ्चजन्य" यहाँ पृच्छतीव क्रिया में निमित्त, गर्भ पातन गुण है, 'अपश्यन्तौ' इव, यहाँ पाण्डुता गमन रूप क्रिया निमित्त है, इस प्रकार अपर दृष्टान्त को जानना होगा।

प्रतीय मानोत्प्रेक्षा का उदाहरण—

"राधाया नेत्र युगलं तिर्य्यग्गच्छति सर्वदा।

ईप्सितारवदियं रुन्धे स्वमित्थं सोढ़ुमक्षमम् ॥"

राधा के नेत्र युगल सर्वदा वक्र दृष्टि सम्पन्न हैं, यही ईप्सित है, सहन करने में असमर्थ होकर स्वयं इस की रक्षा की। यहाँ सोढ़ुमक्षम मिवेति प्रतीयते ? इस प्रकार अन्य दृष्टान्त भी अनुसन्धेय है।

यद्यपि अलङ्कार समूह व्यङ्ग्य होते हैं, अतः पृथक् रूप से उत्प्रेक्षा का प्रतीयमानत्व कहना कैसे सङ्गत होगा ? तथापि 'महिला सहस्ते' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा के द्वारा वाक्य समाप्ति हुई है। किन्तु "राधाया नेत्र युगलं तिर्य्यगञ्चति सर्वदा" यहाँ नेत्र युगल में विचार कर्त्तृत्व नहीं है, "सोढ़ुमक्षमः" इस प्रकार अर्थ बोध होना सम्भव नहीं है, अतः उक्त रूप उत्प्रेक्षा को मानना आवश्यक है। षोड़श प्रकार वाच्योत्प्रेक्षा के भेद में जो विशेष है, उसका वर्णन करते हैं,

"विना द्रव्यं त्रिधा सर्वाः स्वरूप फल हेतुगाः"

वाच्योत्प्रेक्षा प्रतीयमानोत्प्रेक्षा के मध्य में द्रव्योत्प्रेक्षा के विना अपर सब वाच्या उत्प्रेक्षा का भेद स्वरूप, फल, हेतु रूप से होगा। पूर्वोक्त वाच्य प्रतीयमानोत्प्रेक्षा भेद के मध्य में जो वाच्योत्प्रेक्षा के षोड़श भेद हैं, उस में जात्यादि के तीनों में जो द्वादश भेद हैं, उन में प्रत्येकके स्वरूप, फल, हेतु गत रूप से द्वादश भेद होने के कारण—षट् त्रिंशद् भेद होते हैं, द्रव्य का स्वरूपोत्प्रेक्षण होना सम्भव नहीं है। अतः उक्त चतुर्विध के सहित युक्त चत्वारिंशद् (४०) भेद हैं।

यहाँ स्वरूपोत्प्रेक्षा का निदर्शन—पूर्वोक्त "अनङ्गस्य विजय पताका इव गुणा गुण विभूषिता" इत्यादि में जाति गुण स्वरूप गत है। "फलोत्प्रेक्षा' यह है—

"रावणस्यापि रामास्तो भित्वा हृदयमाशुगः
विवेश भुवमाख्यातुमुरगेभ्य इव प्रियम्"

राम का शर, रावण के हृदय को भेदन कर मानो पाताल वासियों को संवाद प्रदान हेतु भूमि में प्रविष्ट हुआ। यहाँ

'आख्यातुमिव' इससे प्रवेश फल क्रिया रूप का उत्प्रेक्षण हुआ। हेतूत्प्रेक्षा यह है—

"सषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमूर्व्याम्"
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द विश्लेष दुःखादिव बद्धमौनम्"

दृश्यमान वही स्थली है, जिस स्थान में मैं तुम्हें ढूढ़ता हुआ भूतल में एक नूपुर पाया मानो वह विशेष दुःख से ही मौन धारण कर लिया है। सीता के चरण से पृथक् होने के कारण–दुःखी होकर, नीरव हुआ है। इस प्रकार अन्योदाहरण भी अनुसन्धेय है।

स्वरूपोत्प्रेक्षा का विभाग करते हैं—पूर्वोक्त प्रकार के मध्य में स्वरूपगा उत्प्रेक्षा, निमित्त निज निज कारण कथन से अकथन से दो प्रकार हैं। एवं पूर्वोक्त चत्वारिंशद् भेद के मध्य में स्वरूप गत जो षोड़श भेद हैं वह निमित्त का उपादान—अनुपादान से द्वात्रिंशद् भेद युक्त होते हैं। समुदाय से मिलकर षट् पञ्चाशद् भेद स्वरूप उत्प्रेक्षा के हैं। निमित्तका, 'उपादान' का उदाहरण—'पाञ्च जन्य' है। यहाँ प्रायश्चित्त प्रश्न में निमित्त गर्भ पातन पातकित्व है। अनुपादान में—'कृष्णः काम इवापरः'

यहाँ उस प्रकार सौन्दर्य्यादि अतिशय का कथन नहीं है। हेतु फल का नियम से ही निमित्त उपादान होता है। 'विश्लेष दुःखादिव' यहाँ बद्ध मौनत्व ही जिसका निमित्त है, 'आख्यातुमिव' यहाँ 'भू प्रवेश' दोनों का अप्रयोग से वाक्य असङ्गत ही होगा।

प्रतीयमान उत्प्रेक्षा के जो षोड़श भेद हैं, उस भेद का विशेष वर्णन करते हैं। प्रत्येक फल हेतु गत होकर प्रतीयमाना का भेद होता है। इसमें भी निमित्त उपादान का होन सम्भव नहीं है,इवादि का अप्रयोग से उत्प्रेक्षण का निरूपण करना सम्भव नहीं है। स्वरूप उत्प्रेक्षा भी यहाँ रही होगी। धर्मान्तर तादात्म्य निबन्धना में "अस्यामिवाद्य प्रयोगे" विशेषण के योग से अतिशयोक्ति होती है,— जिस प्रकार "अयं राजा अपरः पाक शासन" विशेषण के अभाव से

रूपक का दृष्टान्त "यथा राजा पाक शासनः "इति द्वात्रिंशत् प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है।

"प्रतीयमाना भेदाश्च प्रत्येक फल हेतुगाः
उक्तयनुक्तयोः प्रस्तुतस्य प्रत्येकं ता अपि द्विधा ॥"

प्रस्तुत की उक्ति से एवं अनुक्ति से प्रत्येक दो प्रकार होते हैं। उक्ति में दृष्टान्त--'अभिसारे' अनुक्ति में लिम्पन्तीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः" है। यहाँ तमः लेपन का व्यापन रूप विषय का कथन नहीं हुआ है। अञ्जन वर्षण का तमः सम्पात है, दोनों का ही उत्प्रेक्षा निमित्त है, तमः की बहुलताः धारारूप 'अधः' संयोग भी यथा संख्य असम्भव है।

कतिपय व्यक्ति के मतमें लेपन कर्तृभूत की तमोलेपन कर्तृत्वेन उत्प्रेक्षा हुई है। व्यापन निमित्तम्। इस प्रकार 'नभः' वर्षाक्रिया कर्तृत्वेन उत्प्रेक्षित हुआ। वह—उत्प्रेक्षा अलङ्कारान्तर से उत्थित होने से – अधिक वैचित्र्य पूर्णा होती है। अपह्नुति अलङ्कार मूला उत्प्रेक्षा का निदर्शन—

"अलङ्कारोत्था सा वैचित्र्यमधिकं भजेत् ॥"
"अश्रुच्छलेन रुक्मिण्या हुत पावक धूमकलुषाक्ष्याः"
अप्राप्य मानभङ्गं विगलति लावण्य वारि पूर इव ॥"

यज्ञ मण्डप में यज्ञीय वह्नि का धूम से नेत्र पङ्किल हो हो जाने पर रुक्मिणी का अश्रु के च्छल से लावण्य प्रवाह सम्मान से वञ्चित होकर गिरने लगा श्लेष हेतुक उदाहरण—

मुक्तोत्कर सङ्कट शुक्ति मध्याद्विनिर्गतः श्रीवृषभानुजायाः
जानीमहेऽस्याः कमनीयकम्बुग्रीवाधिवासाद् गुणवत्त्वमाप"

श्रीवृषभानुनन्दिनी के कम्बु विनिन्दित कण्ठ देश में अवस्थित होने के कारण मुक्तापुञ्जउत्कर्षवत्व है। अर्थ द्वय का योग है। "कम्बुग्रीवाधिवासात्" उत्प्रेक्षा का उपस्थापक है, जानीमहे--यह उत्प्रेक्षा वाचक है। एवं इस प्रकार "एवं मन्ये, शङ्के ध्रुवं, प्रायो-

नूनमित्येवमादयः' इत्यादि का प्रयोग से उत्प्रेक्षा होती है। कभी उपमोत्प्रेक्षा होती है—

"पारेजलं नीरनिधेरपश्यन् मुरारिरानीलपलाशराशीः
वनावलीरुत् कलिका सहस्र प्रतिक्षणोत् कूलित शैवलाभाः"

मुरारि श्रीकृष्ण ने वन श्रेणी को देखा, वह किस प्रकार ? समुद्र के तीर में गाढ़ नीलवर्ण के पत्र पुञ्च युक्त थी, और वह प्रतिक्षण में तरङ्ग चालित शैवाल के समान दिखाई देती थी। यहाँ आभा शब्द उपमा वाचक होने से उपक्रम में उपमा है, पर्य्यवसान में जलनिधि के तीर में शैवाल की सम्भावना नहीं है। सम्भावना का उत्थान हेतु उत्प्रेक्षा हुई है,इस प्रकार विरह वर्णन में केयूरायित मङ्गदः विकासिनी नोत्पलानि स्म कर्णे श्रीराधिकायाः कुटिल कटाक्षः" में जानना होगा।

भ्रान्तिमद् अलङ्कार में—"मल्लक्ष्म्या स्तव जन्मेत्यादि में भ्रान्तदेवताओं का चन्द्र प्रभाविषयक ज्ञान ही नहीं है, कवि ने ही उसका उट्टङ्कन किया है। उत्प्रेक्षा में–विषयी उपमान को एवं उपमेयकी भी सम्भावना है। जहाँ वाक्य से ही प्राणी का भ्रम होता है, वहाँ सत्य भ्रम है, और जहाँ सम्भावना होती है--वहाँ उत्प्रेक्षा होती है। सन्देह में समकक्षरूप से उभय कोटि की प्रतीति होती है, उत्प्रेक्षा में सम्भव रूप से ज्ञात एक कोटि का निश्चय रूप ज्ञान होता है। अतिशयोक्ति में विषयी उपमान का अन्वय बोध के समय सत्य रूप से ज्ञान होता है। पर्य्यवसान में - सम्पूर्ण अन्वय बोध के अनन्तर असत्य प्रतीति होती है, उत्प्रेक्षा में प्रतीति समकाल में ही विषयी की असत्यता की प्रतीति होती है।

"रञ्जिता नु विविधा स्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु।
पूरिता नु विषयेषु धरित्री संहृता नु ककुभ स्तिमिरेण ॥"

अन्धकार से विविध तरुशैल रञ्जित हो गये हैं ? गगनाकाश क्या पृथिवी पर उतर आया है ? धरित्री क्या अपनी उच्चनीचता

को भर दी है ? अथवा दिग्मण्डल सङ्कुचित हो गये हैं।

यहाँ तरु प्रभृति में तिमिराक्रान्तता रञ्जनादि रूप में सन्देह करते हैं, अतः यह सन्देहालङ्कार है, यह किसी का मत है, सो ठीक नहीं है। एक विषय में समान बल से अनेक कोटि का स्फुरण होना ही सन्देह है, यहां तरु आदि व्याप्ति से सम्बन्धि भेद है। व्यापनादि का कथन न होने से रञ्जनादि का प्रकाश है। अपर का मत है—अनिर्धारण रूप वैचित्री का आश्रय से एक कोटि का आधिक्य से यह सन्देह प्रकार है। यह भी युक्ति सङ्गत नहीं है। निगीर्ण स्वरूप को अन्य तादात्म्य प्रतीति सम्भावना है, उसकी सम्भावना ही सुस्पष्ट रूप से है, "नु" शब्द से चैव शब्द के तुल्य प्रकाश होने पर उत्प्रेक्षा ही होनी चाहिये,अतः अदृष्ट सन्देह प्रकार की कल्पना से विरत होना ही ठीक है।

"हरे यच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां वितनुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रतितथा।
अहं विन्दु मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्त तरुणी--
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलङ्काङ्कित तनुम्॥"

हे हरे ! लोक चन्द्र के अन्तवर्त्ती मेघचिह्न को देखकर 'शशक' है, यह मान लेते हैं, मैं तो चन्द्र को यह मानता हूँ,—तुम्हारे शत्रु के विरह से उस की तरुणीयों की कटाक्षोल्कापातव्रण में जो मांस का कड़ा पड़ा है, उस से ही चन्द्र कलङ्क युक्त हो गये हैं।

यहाँ "मन्ये" शब्द प्रयोग से उक्त रूप सम्भावना की अप्रतीति है, वितर्क मात्र है। वितर्काख्य व्यभिचारि भाव है, यह अपह्नवोत्प्रेक्षा नहीं है।

अथोत्प्रेक्षा भेदसङ्कलनम्।

प्रथमं वाच्यं प्रतीयमाना द्वौ भेदौ तत्र भावाभिमाने एकः, अभावाभिमाने चैक इति द्वौ, तयोश्च प्रत्येकमेव
जातेः--गुणनिमित्तकत्वात् क्रियानिमित्तकत्वाच्च

स्वरूप गताः ३२। द्वैविध्येन चत्वारः-- ४
गुणस्योक्तरूपेण -- ४
क्रियायाः--- ४
द्रव्यस्य ४
वाच्याः ११२ १६

तेषाञ्च षोड़शानां निमित्तस्य उपादानेन अनुपादानेन च
द्वैविध्यात् द्वात्रिंशत् प्रकाराः--- ३२
जातेः --भावाभिमानादिनोक्त क्रमेण-- ४
फलगताः---१२। गुणस्य ४
क्रियायाः-- ४
१२

जातेः भावाभिमानादिनोक्त क्रमेण-- ४
हेतुगताः— १२ गुणस्य ४
५६--क्रियायाः ४
फल गताः १६ द्रव्यस्य— १६
(प्रतीयमानायां स्वरूपोत्प्रेक्षा नास्ति)
जातेः-- भावाभिमानादिनोक्त क्रमेण--- ४
प्रतीयमानाः ६४ हेतुगताः गुणस्य ,,— ४
१६
३२
क्रियायाः ,, ४
द्रव्यस्य ,, ४
१६

तेषाञ्च द्वात्रिंशद्भेदानां प्रत्येकमेव
पूर्ववत् प्रस्तुतस्य उक्त्या अनुक्त्या च
पुनर्द्वैविध्येन चतु षष्टि भेदाः
सम्पद्यते— ६४

साकल्येन — १७६

भावेनाध्यवसितायास्त्रिवलीशालितायाः सामर्थ्यादित मध्यकर्त्तृकायाः स्तनविधृतेस्तत्फलत्वेन सम्भावना फलोत्प्रेक्षा ॥१७॥

द्योत्यार्थद्योतनं मुद्रा शब्दैः प्रकृतवाचिभिः ।

यथा—पुष्पमार्गणमनोरथोद्धतेत्यादि । अत्र नायिका-वर्णनपरेण रथोद्धता-शब्देन रथोद्धताख्यस्य सूच्यस्य छन्दसः सूचनं मुद्रा ॥ एवमन्यत्र च बोध्यं ॥१८॥

विचित्रं तद्विरुद्धं चेत् कुर्य्यादिष्टाफलाप्तये ॥

मुद्रा अलङ्कार—प्रकाशन योग अर्थ को प्राकरणिक शब्द के द्वारा प्रकाश करने से मुद्रा अलङ्कार होता है । उदाहरण—पुष्पमार्गण मनोरथोद्धता इत्यादि" यहाँ नायिका वणन पर रथोद्धता शब्दके द्वारा रथोद्धता छन्द सूचित होने से यह मुद्रा अलङ्कार हुआ। इस प्रकार अपर उदाहरण अनुसन्धान करना चाहिये। विचित्र अलङ्कार— "विचित्रं तद्विरुद्धं चेत् कुर्य्यादिष्ट फलाप्तये"

अभिलषित फल प्राप्ति हेतु इष्ट विपरीत को हेतु मानने से यह अलङ्कार होता है । अर्थात्

"विचित्र यद् विरुद्धस्य कृतिरिष्ट फलाप्तये "

विरोध घटित यह विचित्र अलङ्कार है, चेद्--यदि-विरुद्ध-इष्ट विरुद्ध--, इष्ट विपरीत की कृति,—कारण, इष्ट फल प्राप्ति हेतु अर्थात अभिलषित फल सिद्धि हेतु हो तो विचित्र अलङ्कार होता है ।

विरोधाभास एवं विरोध अलङ्कार में विरोध स्वतः सम्भवी है, यहाँ विरुद्धार्थ ही विरुद्ध का कारण है । विपरीत फल प्राप्ति हेतु विपरीत कारण, स्वीकार हेतु इसकी संज्ञा विपरीत है । विचित्र शब्द का अर्थ है—आश्चर्य निदर्शन—

यथा—नमत्युन्नतये प्राणान् मुञ्चत्याजीवनाप्तये ।
दुःखीयति च सौख्याय को मदः सेवकात्परः ।१९।

समाधिः सुकर कार्य्यं यदि हेत्वन्तराद्भवेत् ।

"भोगेप्सव सकल कामदमर्थ लुब्धाः
सर्वार्थदं सुखतृष्टश्च सुख स्वरूपं ।
लोकाधिपत्य लसिता जनरीश्वर तं
कृष्णं द्विषन्ति दनुजाः कुधियो वर्तते ॥'

जगदीश्वर कृष्ण—सर्वार्थद सकल कामद सुख स्वरूप हैं। किन्तु आश्चर्य यह है कि—सुखाभिलाषी भोगेच्छु अर्थ लोलुप लोकाधिपत्य कामी व्यक्ति गण बुद्धि हीन होते हैं, कारण,--वे सब कृष्ण के प्रति विद्वेष करते हैं ।

ग्रन्थ कारोक्त दृष्टान्त—"नमत्युन्नतये प्राणान् मुञ्चत्याजीवनाप्तये ।
दुःखीयति च सौख्याय कोमदः सेवकात् परः"

उन्नति हेतु नत होता है,जीविका हेतु प्राण समर्पण भी करता है, सुख हेतु दुःखाचरण करता है, अतः सेवकता से अपर मत्तता क्या हो सकती है ? समाधि अलङ्कार—

"समाधिः सुकरं कार्य्यं यदि हेत्वन्तराद्भवेत् ॥

यदि भिन्न हेतु से कार्य्य सुलभ होता है, तो उसे समाधि अलङ्कार कहते हैं । अर्थात् "समाधिः" सुकरे कार्य्ये दैवाद्धेत्वन्तरागमात्"

प्रारब्ध कारण से दुष्कर कार्य्य निष्पन्न न होने से यदि ईश्वरेच्छा से प्राप्त कारण से वह होता है तो उसे समाधि अलङ्कार कहते हैं। अतएव काव्य लिङ्ग से यह भिन्न है। दैव प्राप्त कारण से कार्य्य समाधान से समाधि संज्ञा होती है ।

उदाहरण—"राधिकाया मान शान्त्यै पादयोर्मे पतिष्यतः ।
उपकाराय दिष्टेचदमुदीर्णं घन गर्जितम् ॥"

यथा–प्रणम्य पादौ वृषभानुजायाः,
प्रसादनं कुर्वति पङ्कजाक्षे ।
तथाम्बुदः प्रांशु जगर्ज वक्ष
स्तटीं यथासौ सहसास्य भेजे ॥२०॥

समं स्यादाभिरूप्येण श्लाघा चेद्योग्यवस्तुनः ।
यथा–विसर्गव्यग्रचित्तोऽपि विधि र्युक्तविधानकः ।
पिचुमर्द्द फले काकः सहकारे कृतः पिकः ॥२१॥

मान शान्ति हेतु राधिका के चरणों में निपतित व्यक्ति के पक्ष में भाग्य से घन गर्जन ही मान प्रशमन का कारण बनाया ।
ग्रन्थ कारोक्त निदर्शन—"प्रणम्य पादौ वृषभानुजाया
प्रसादनं कुर्वति पङ्कजाक्षे ।
तथाम्बुदः प्रांशु जगर्ज वक्ष
स्तटीं यथासौ सहसास्य भेजे "

कमल नयन श्रीकृष्ण, मान प्रशमन हेतु राधिका के चरण पङ्कज में प्रणाम कर रहे थे, इस समय अकस्मात् अम्बुद गर्ज्जन से भीत होकर वृषभानुनन्दिनी सहसा वक्षः स्थल में आ गई । 'सम' अलङ्कार—"समं स्यादाभिरूप्येण श्लाघा चेद्योग्यवस्तुनः "

योग्य वस्तु की प्रशंसा यदि सुन्दर रूपसे की जाती है तो 'सम' अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

विसर्गव्यग्रचित्तोऽपि विधिर्युक्त विधानकः ।
पिचुमर्द्द फले काकः सहकारे कृतः पिकः ॥"

सुनिपुण विधिवेत्ता विधिने, सृष्टि कार्य्य में व्यग्र चित्त होकर भी निम्बफल में काक को एवं रसाल में पिक को रत किया । अथवा

'समं' स्यादानुरूप्येण श्ल घास्याद् योग्यस्य वस्तुनः ॥

जिस प्रकार विरुद्ध पदार्थ द्वय का सङ्घटन से विषमालङ्कार

सारः स्यात्प्रान्तविश्रान्तो यद्युत्कर्षो यथोत्तरम् ।
यथा–राज्यं सारं वसुधायां राज्ये पुरं पुरे सौधं ।
सौधे तल्पं तल्पे वराङ्गनाऽनङ्ग सर्वस्वम् ॥२२॥

होता है, उस प्रकार अनुरूप पदार्थ द्वयका संघटन से समालङ्कार होता है—आनुरूप्य से अर्थात् परस्पर सदृश रूप से योग्य वस्तु के अनुरूप पदार्थ के सहित श्लाघा—अर्थात् साधुवाद से सम नामक अलङ्कार होता है । अतएव समाना मा मानं ज्ञानं यस्मिन् तत् सममिति व्युत्पत्तिः । अयं सम शब्दोऽपि पूर्ववद् वाच्य लिङ्ग"

निदर्शन— "कृष्णो वरीयान् पुरुषेषु सद्गुणैः
श्रीराधिका स्त्रीषु गुणै र्वरीयसी ।
सङ्ग विधातुस्त्वनयोः परस्परं
धातुर्नरीनर्त्ति गुणज्ञता यशः ॥"

पुरुषों के मध्य में सद् गुणों से कृष्ण ही श्रेष्ठतम हैं, श्रीराधा भी सकल स्त्रीयों में अत्यधिक गुणवती हैं । उभय का सङ्ग विधान हेतु विधि की गुण ज्ञता यश वृद्धि हुई है ।

सार अलङ्कार—"सारः स्यात् प्रान्त विश्रान्तो यद्युत्कर्षोयथोत्तरम् ।

यदि उत्तरोत्तर पदार्थों का उत्कर्ष चरम रूपसे प्रति पादित हो तो सार अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

राज्यं सारं वसुधायां राज्ये पुरं पुरे सौधम् ।
सौधे तल्पं तल्पे वराङ्गनाऽनङ्ग सर्वस्वम् ॥"

वसुधा में राज्यसार है, राज्य में पुरसार है, पुर में सौधसार है, सौध में तल्पसार है,तल्प में अनङ्ग सर्वस्व वराङ्गना सार है । अथवा–

"उत्तरोत्तरमुत्कर्षो वस्तुनः सार उच्यते " विशेष पदार्थों का उत्तमत्व स्थापन से सार अलङ्कार होता है । सार शब्द का अर्थ श्रेष्ठ है । मालादीपक में जिस किसी का गुणरूप अथवा क्रियारूप धर्म का उत्तरोत्तर सम्बन्ध है । इस में केवल उत्कर्ष, रूप गुण का ही है ।

श्लेष स्त्वेकार्थकैः शब्दै र्यद्यनेकार्थवाचनम् ॥

यथा—प्रवर्त्तयन् क्रियाः साध्वी र्मालिन्यं हरितां हरन् ।
भूयसा महसा दीप्तो विराजति दिवाकरः ॥

अत्र रवि र्नृपविशेषश्च वाच्योऽभिधाया अनियमात्

अतः यह विशेष रूप है, और सामान्य का बाधक है । निदर्शन—

"गौ र्भूलीला युवतिषु वरैः सद् गुणैः सारभूता
स्ताभ्यः सा श्री स्तत इह महाप्रेम गोपाङ्गनास्ताः
तान्यश्चन्द्रावलिमुखलसद् यूथनाथा अमूभ्यः ।
श्रीराधाऽस्याः वत हि नितरां सोऽपि कृष्णः सतृष्णः ॥"

वाणी, भू, लीला, युवतियों में सद्गुणों के द्वारा सारभूत हैं, उन सबों से लक्ष्मी श्रेष्ठा है, उनसे गोपाङ्गना श्रेष्ठा है। उन गोपाङ्गनाओं में चन्द्रावली श्रेष्ठा है। उनसे श्रीराधा श्रेष्ठा है, उनमें श्रीकृष्ण सतृष्ण हैं । इस में उत्तरोत्तर विशेष्यों का उत्कर्ष प्रतिपादित हुआ है । श्लेष अलङ्कार—

"श्लेष स्त्वेकार्थकैः शब्दै र्यद्यनेकार्थ वाचनम् ।

एकार्थक शब्द के द्वारा यदि अनेकार्थ का बोध हो तो वह श्लेष अलङ्कार होता है ।

दृष्टान्त—प्रवर्त्तयन् क्रियाः साध्वी र्मालिन्यं हरितां हरन् ।
भूयसा महसा दीप्तो विराजति दिवाकरः ॥

दिवाकर सूर्य्य पक्ष में नृपति–दिक्मण्डलों का मालिन्य विदूरित कर एवं समस्त प्राणियों में समस्त क्रिया प्रवर्त्तन कर अतिशय तेजोदीप्त विराजित है ।

यहाँ रवि एवं नृपति विशेष—दिवाकर शब्दार्थ सुस्पष्ट है, किन्तु अभिधा के द्वारा सूर्य्य का बोध होने के कारण मुख्या वृत्ति से सूर्य्य एवं लक्षणा वृत्ति से नृपति का बोध होने से यह श्लेष अलङ्कार हुआ । अथवा—

तत्रैकोऽभिधया परस्तु तत्तुल्यया रूढ़ि-लक्षणया बोध्याः ॥

"श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष उच्यते ।
वर्ण प्रत्यय लिङ्गानां प्रकृत्योः पदयोरपि ।
श्लेषाद्विभक्तिः वचन भाषाणामष्टधा च सः ॥"

अनेकार्थ युक्त शब्दों के प्रयोग से जब एक बार उच्चारण से ही अनेकार्थ का बोध होता है, तो उसे श्लेष अलङ्कार कहते हैं, यह श्लेष अष्ट विध होते हैं। वर्ण, श्लेष, प्रत्यय श्लेष, लिङ्ग श्लेष, प्रकृति श्लेष, पद श्लेष, विभक्ति श्लेष, वचन श्लेष, एवं भाषा श्लेष ।

क्रमशः उदाहरण–"अनुकूले विधौ गव्या सद्य एव प्रपद्यताम् ।
प्रतिकूले विधावद्यात् बाति साते विनङ्क्ष्यति ॥

श्रीराधा के प्रति सखी की उक्ति—विधि अनुकूल होने पर अभिसार मङ्गलमय होगा, विधि प्रतिकूल होने पर वह गमन निष्फल होगा । यहाँ विधौ--विधु--वि'ध- उ--इ कार का एक रूप होने से श्लेष हुआ है । पूर्वार्द्ध में विधि शब्द से दैव का बोध होता है, उत्तरार्द्ध के विधु शब्द से चन्द्र का बोध होता है ।

"किरणा हरिणाङ्कस्य दक्षिणस्य समीरणः ।
रामाणां श्लिष्ट कृष्णानां सर्व एव सुधाकिरः ॥

चन्द्र किरण---मलय समीरण--श्रीकृष्णालिङ्गित ललना के पक्ष में अमृत हैं । श्लिष्ट--कृष्णो यामिस्तासां, सुधाकिर इत्यत्र किरण-विशेषणत्वात् बहुत्वम्, समीरण विशेषणत्वात् एकत्वम् ।

यहाँ सुधाकिर--क्विप् क प्रत्यय का श्लेष है, सुधां किरन्तीति 'सुधाकिर' 'कृविक्षेपे' इति कृधातोः क्विप् प्रत्ययान्तात् प्रथमाया बहु वचनम्, किं वा बहु वचन--एक वचन का रूप 'सुधाकिर' एक प्रकार होने से वचन श्लेष भी हुआ ।

लिङ्ग श्लेष का उदाहरण--

"विसन्नेत्र नीलाब्जे तथा तस्याः स्तनद्वयी ।
हरिषी गोपिका कान्त तुभ्यं वत्तां सदा मुदम् ॥"

हे गोपिका कान्त ! विकसित नेत्र नीलाब्ज, एवं वक्षोजद्वय-हारसे शोभित होकर तुम्हें सदा आनन्दित कर रहे हैं। हारिणीत्यस्य अब्ज विशेषणत्वे नपुंसकत्वं, द्वयीत्यस्य विशेषण स्त्री लिङ्गत्वम्। वचन श्लेषस्तु 'दत्तां हारिणी" इत्युभयत्र ॥

प्रकृति श्लेष का उदाहरण----

"अयं शस्त्राणि भुजाया शास्त्राणि तु रसज्ञया।
ननन्द स्तव हे नन्द ! वक्ष्यति स्म कपालक ॥

हे नन्द ! तुम्हारे पुत्र, भुजद्वय के द्वारा शस्त्र का प्रकाश एवं रसना के द्वारा शास्त्रका प्रकाश करते हैं। 'कपालकः--स्वान् भक्तान्' यहाँ 'वह' धातु-एवं 'वच' धातुसे वक्ष्यति पद निष्पन्न अपर निदर्शन "हरिदिक् पराङ्मुखतयाचलतः पतनं भवेदखिलमत्यलम्। स्खलनं सदा जलनिधौ सवितुः स्थिति कृतपादशशत्यपि सा।

हरि विमुख होने से सब ओर से पतन होता है। सूर्य्य जल राशि में प्रविष्ट होने से दशशत किरण सूर्य्य को पतनसे उद्धार करने में असमर्थ होते हैं। यहाँ हरि पाद शब्द के द्वारा श्लेष है, श्लेषेण हरेरिन्द्रस्य, पादः किरण वाची च।

"रसयन् माधव रस कृष्ण कर्मा सुरादृतः।
भक्त सवजनः कर्ण भवान् परम वैष्णवः ॥"

सुरादृत कृष्ण कर्मा व्यक्ति—माधव की सेवा में रत होकर भक्त एवं परम वैष्णव होता है। यहाँ पद भङ्ग प्रकृति समास के वैलक्षण्य से पद श्लेष है, किन्तु प्रकृति श्लेष नहीं है, माधवोवसन्तः, श्लेषेण—मधुदैत्यस्य अपत्यं—माधवः, कृष्णकर्मा--श्लेषेण मलिन कर्मा। सुराः-देवाः, श्लेषेण-मदिराः। परम वैष्णवः— श्लेषेण--परं-अवैष्णवः।

खगेन हरि चक्रेण व्याकुली भावमीयुषाम्।
दैत्य—शैवल जातीनां ददृशे तति राहवे ॥'

समराङ्गण में गरुड़ एवं चक्र के आक्रमण से दैत्यगण व्याकुल

हो गये थे। खगेन हरिचक्रेण—आकाश गामिना चक्रेण--श्लेषेण चक्रवाकाख्य पक्षिणा, आहवे युद्धे,। यहाँ पर चक्रेण—शब्द श्लिष्ट होने पर भी एक विभक्ति होने से प्रकृति श्लेष हुआ है। अन्यथा, सर्वत्र पद श्लेष प्रसङ्ग ही होगा।

विभक्ति श्लेष का उदाहरण—

"हर सर्वस्य दुःखानि भव सर्वस्य सौख्यदः।
यतस्त्वं शिवतां यातः स्वर्धुनी जलसेवया ॥"

सबका दुःख हरण करो, और सुखद हो, कारण, गङ्गा जलके सम्पर्क से तुम तो शिव हो गए हो। यह भङ्ग--अभङ्ग, श्लेष है। श्लेष से शिवकी स्तुति भी होगी, यहाँ हर—पक्षमें शिवका सम्बोधन है, पक्षान्तर में 'हृ' धातु का (तिङ् विभक्ति का) रूप है। इस प्रकार 'भव' शब्द का भी दो स्वरूप हैं, यह भेद प्रकृति प्रत्यय श्लेष में पर्य्य वसित होने से भी सुबन्त तिङन्त होकर अतिशय चमत्कार होता है, अतः पृथगुक्ति हुई है।

पद श्लेष का--उदाहरण—

"न उप उमरा अप्पमुहं र अलङ्कामेइ गोइ मे हि अअं।

किन्तु सवाहीस्वरं वञ्च इहारन्तरे काद्" यहाँ संकृत प्राकृत भाषा में श्लेष है।

यह श्लेष--सभङ्ग-अभङ्ग-एवं सभङ्ग, अभङ्ग-उभयात्मक-त्रिविध हैं। शब्द विश्लेषण निष्पन्न को सभङ्ग कहते हैं, शब्द सारूप्य से अनेकार्थ का प्रकाशक होने पर अभङ्ग होता है, सभङ्ग--अभङ्ग—उभय रूप को उभयात्मक कहते हैं। वाक्य के किसी अंश में सभङ्ग, एवं किसी अंश में अभङ्ग होता है, पद श्लेष विभक्ति श्लेष, भाषाश्लेष रूपसे ये त्रिविध होते हैं। वर्ण श्लेषादि पञ्च, केवल अभङ्ग रूप में होते हैं। अतः वर्ण श्लेषादि पञ्च पद श्लेष, तीन सभङ्गादि रूप, विभक्ति श्लेष तीन, भाषाश्लेष तीन, साकल्य में चतुर्दश प्रकार श्लेष हैं।

सभङ्गादि भेदत्रय का उदाहरण—

"येन ध्वस्त मनोभवेन बलिजित् कायः पुरास्त्रीकृतो
योऽप्युद्वृत्त भुजङ्ग हार वलयो गङ्गां च योऽधारयत् ॥"
यस्याहुः शशिमच्छिरो हर इति स्तुत्यं च नामामराः
पायात् स स्वयमन्धक क्षयकर स्त्वां सर्वदोमाधवः ॥"

'हरिहर' उभयात्मक यह आशीर्वाद श्लोक है। इस में सभङ्गादि भेदत्रय का उदाहरण है, चरण प्रहार से जिन्होंने शकटासुर को विनष्ट किया, जिन्होंने वामन रूपसे बलिको जीता, अमृत परिवेशन अवसर में जिन्होंने मोहिनीरूप धारण किया। अघासुर को जिन्होंने मारा एवं गोवर्द्धन पर्वत धारण किया। कृष्ण रूप से, कूर्म्म रूपसे पृथिवी की रक्षा की, राहु का शिरच्छेदन किया, एवं कूटनीति से प्रभास तीर्थ में यदुवंशीयों को समाप्त किया। सर्वाभीष्टद लक्ष्मीपति माधव नारायण---आप सब की रक्षा करें।

शिवपक्ष में जिन्होंने--काम देवको ध्वंस किया त्रिपुरासुर विनाश के समय बलिविजयी नारायण के अङ्ग को भी अस्त्र का विषय बनाया। जो सर्प के हार, एवं वलय धारण करते हैं, मस्तक में गङ्गा की धारण करते हैं। अमर गण शशिशेखर नाम से जिन को स्तुति करते हैं। अन्धक नामक असुर विनाश कारी उमाधव-पार्वती पति महादेव तुम सब की रक्षा करें।

माधव पक्षमें---सर्वदाता माधव, तुम सब की रक्षा करें। हस्त शब्द से सौन्दर्य्य का प्रकाश हुआ है। मोहिनी रूप को स्त्री वेश कहते हैं। कालिय दमन के समय भुजङ्ग वेष्टित हुये थे। सबसे--वंशी ध्वनि से सब को द्रवित करते हैं। अधारयत् शब्द से अवास्थापयत् जानना होगा। राहु का शिरच्छेदन कारी, अन्धक वंश में निवास कारी,– उमाधव के पक्ष में त्रिपुरनाशन समय में बलिजित् विष्णु शरीर को लक्ष्य करके अस्त्र निक्षेप किया, जिनके शिर में चन्द्रमा विराजित है। हर, यह स्तवनीय नाम है, और सब

नष्टेऽपि हेतौ तत्कार्य्यं यदि हेत्वंतराद्भवेत् ॥
पुनः स्वगुणलब्धिर्वा पूर्वरूपं तदा द्विधा।
क्रमेणोदा-ज्योत्स्न्यां विहरतो रात्र्यां युनोरस्तमगाद्विधुः ॥
अभूज्ज्योत्स्नी तथैवासौ तयो र्वदनकान्तिभिः ॥
तव करकमलस्थां स्फाटिकीमक्षमालां
नखकिरण--विभिन्नां दाड़िमी--वीजबुद्धया।
अनुकलमनुकर्षन्येन कीरैर्निबद्धः
स भवतु मम भूत्यै वाणि ते मन्दहासः ॥२४॥

सुगम है। यहाँ--'येन' इत्यादि में सभङ्ग श्लेष है। 'अन्धक' इत्यादि में अभङ्ग श्लेष है। दोनों का अवस्थान एकत्र सम्भव होने से सभङ्ग अभङ्गात्मक हुआ है। शब्दालङ्कार में यह श्लेषालङ्कार अन्यत्र सन्निविष्ट है।

पूर्वरूप अलङ्कार---

"नष्टेऽपि हेतौतत् कार्य्यं यदि हेत्वन्तराद्भवेत्।
पुनः स्वगुणलब्धिर्वा पूर्व रूपं तदा द्विधा॥"

हेतु विनष्ट होने पर भी यदि उसका कार्य्य भिन्न हेतु से होता है तो "पूर्वरूप' अलङ्कार होगा। इस में दो प्रकार हैं।

क्रमेणोदाहरणम्--"ज्योत्स्न्यां विहरतो रात्र्यां युनोरस्तमगाद्विधुः।
अभूज्ज्योत्स्नी तथैवासौ तयो र्वदनकान्तिभिः॥

ज्योत्स्ना विस्तार पूर्वक निशानाथ निशा में यथेच्छविहरण-कर अस्तङ्गत होने पर युवक युवती की वदन कान्ति के द्वारा रजनी पुनर्वार ज्योत्स्ना मण्डित चन्द्र के द्वारा रजनी शोभिता हुई थीं।

तव करकमलस्थां स्फाटिकीमक्षमालाम्
नखकिरण विभिन्नां दाड़िमी वीज बुद्धया।

उत्तरं तूत्तरं श्रुत्वा प्रश्न श्चेत्परिकल्प्यते ।
बहूनि वा विचित्राणि प्रश्नप्रतिवचांसि तत् ॥

क्रमेणोदा—"मदुरसि सौरभलोभात्पतितान्मृगनाभिभाविते मधुपान् ।
निवारयन्त्या विदितं न मया नखरक्षतं तदाभ्युदितं ॥

अत्र त्वद्वक्षसि कस्मादमूनि क्षतानीति प्रश्नो गम्यते ।

किं गेयं भगवन्नाम किं पेयं तत्कथामृतम् ।
किं हेयं गुरुवैमुख्यं किं ध्येयं तत्पदाम्बुजम् ॥

अनुकूलमनुकर्षन् येन कीरनिबद्धः
स भवतु मम भूत्यै वाणि ते मन्दहासः ॥"

हे वाणि ! तुम्हारे कर कमल में स्थित स्फटिक माला, नखर कान्ति के द्वारा श्वेतारुण वर्ण मण्डित होने पर दाड़िम बीज बुद्धि से कीर उस में आकृष्ट हुआ। वह तुम्हारे स्मित हास्य मेरा अभ्युदय के हेतु हो ।

उत्तर अलङ्कार—"उत्तरन्तूत्तरं श्रुत्वा प्रश्नश्चे त् परिकल्प्यते ।
बहूनि विचित्राणि प्रश्न प्रतिवचांसि तत् ॥

उत्तर अलङ्कार है, जिस में अनेक विचित्र प्रश्नोत्तर होते रहते हैं। एवं उत्तर को सुनकर प्रश्न की कल्पना होती है ।

निदर्शन-"मदुरसि सौरभ लोभात् पतितान् मृगनाभि भाविते मधुपान्
निवारयन्त्या विदितं न मया नखरक्षतं तदाभ्युदितम् ॥"

मृगनाभि कस्तुरी परिवासित मदीय वक्षः स्थल में निपतित मधुपवृन्द को निवारण करते करते वक्षः स्थल में नखरक्षत हुआ है।

यहाँ कैसे तुम्हारे वक्षः स्थल में क्षत हुआ है ? यह प्रश्न ध्वनित होता है ।

न चेयं सप्रश्नपरिसंख्या । अन्यव्यपोहे तात्पर्याभावात् ।२५।

पृष्टं किञ्चिदपृष्टं वा यद्युक्तं परिकल्पते ।
तत्समान्यनिरासाय परिसंख्या तदा भवेत् ॥

किञ्चिद्वस्तु पृष्टमपृष्टं वा गदितं सद्यदि तत्तुल्यान्यव्यावृत्तये कल्पते, तदा परिसंख्या । तत्रोभयत्र व्यावर्त्यं व्यङ्ग्यं वाच्यं चेति चतुर्धासौ ॥

तत्र पृष्टं यथा—कः खलु चिन्तनविषयो रघुपतिरिह के पुनः पूज्याः ।

अन्य उदाहरण--"किं गेयं भगवन्नाम, किं पेयं तत्कथामृतम् ।
किं हेयं गुरुवैमुख्यं किं ध्येयं तत्पदाम्बुजम् ॥

कीर्त्तनीय क्या है ? भगवन्नाम ही कीर्त्तनीय है । पेय क्या है ? भगवत् कथामृत ही पेय है । परित्याज्य क्या है ? श्रीगुरुविमुखता ही परित्याज्य है। ध्येय क्या है ? श्रीभगवच्चरण नलिनयुगल ही ध्येय है ।

यह अलङ्कार स प्रश्न परिसंख्या में अन्तर्भूत नहीं है, कारण-इस में अन्य निषेध में तात्पर्य नहीं है ।

परिसंख्या अलङ्कार—

"पृष्टं किञ्चिदपृष्टं वा यद्युक्तं परिकल्पते ।
तत् समान्य निरासाय परिसंख्या तदा भवेत् ॥"

स प्रश्न अथवा अप्रश्न से—यदि कथन कल्पित होता है, एवं उसके समान अपर का निरास हेतु वह होता है तो परिसंख्या अलङ्कार होगा ।

अर्थात् किञ्चिद् वस्तु प्रश्न के द्वारा अथवा प्रश्न के बिना ही कथित होती है, एवं वह उसके सदृश वस्तु निरास हेतु होता है । यह अलङ्कार--उभयत्र व्यावर्त्य-'व्यङ्ग्य वाच्य' भेद से चतुर्विध हैं।

तत्सेवका न चान्ये तत्पदपङ्कज--वहिर्भूताः ॥

अपृष्ट यथा—ध्येयो बुद्धिमता कृष्णो भगवान्जगदीश्वरः ।

सेव्या वेदविदो विप्रा नत्वन्ये हेतुवादिनः ।२६।

पृष्ट का दृष्टान्त–"कः खलु चिन्तन विषयो रघुपतिरिह के पुनः पूज्याः
तत् सेवका न चान्ये तत्पदपङ्कज वहिर्भूताः ॥"

चिन्तनीय कौन है ? रघुपति चिन्तन योग्य हैं । पूज्य कौन हैं ? उनके सेवक गण ही पूज्य हैं, किन्तु जो उनके चरण पङ्कज में दास्य लोलुप नहीं हैं, वे पूज्य नहीं हैं ।

अदृष्ट का उदाहरण--"ध्येयो बुद्धिमता कृष्णो भगवान्जगदीश्वरः ।
सेव्या वेदविदो विप्रा नत्वन्ये हेतुवादिनः ॥२६॥

बुद्धि मान् मनुज वृन्दके पक्षमें भगवान् जगदीश्वर श्रीकृष्ण ही ध्येय है । एवं सेव्य,—वेदविद् विप्रवृन्द हैं, किन्तु अपर हेतु वादी विप्रगण पूज्य नहीं हैं ।

अथवा । "प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत् ।
तादृगन्य व्यपोह श्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा "परिसख्या' ॥

सम्प्रति एक उक्तिसे अन्य प्रतीति पर 'परिसंख्या' अलङ्कार का वर्णन करते हैं—प्रश्न से अथवा अप्रश्न से वैचित्री पूर्ण पदार्थ का वर्णन होने से परिसंख्या अलङ्कार होता है, इस में शब्द से अर्थ से वस्तु की प्रतीति होती है । कथित सदृश वस्तु का व्यापोह--प्रतिषेध होता है । प्रश्न पूर्वक कथन एवं अप्रश्न पूर्वक कथन से-यह दो प्रकार हैं । प्रत्येक—शब्द एवं अर्थ--भेद से दो प्रकार हैं, समष्टि से यह अलङ्कार चतुर्विध होते हैं ।

निदर्शन—"का कृष्णस्य प्रणय जनिभू राधिकै का न चान्या
कास्य प्रेयस्यनुपमगुणा राधिकै का परा न ।
का चक्रे तं स्व वश मनिशं राधिका नेतरा तद्
वाञ्छापूर्त्यै प्रभवति हि का राधिका नापरेह ॥"

कृष्ण की प्रणय पात्री कौन है ? राधिका ही है, अन्य नहीं कृष्ण की अनुपम गुणा प्रेयसी कौन है ? श्रीराधिका ही है । अपर नहीं, कृष्ण को निज वशमें निरन्तर कौन रखती है ? राधिका । अन्या नहीं, श्रीकृष्ण की वाञ्छा पूर्त्ति करने में कौन समर्था है—राधिका, अपरा नहीं । यहाँ निषेध पर नान्यादि– शब्दोपात्त हैं ।

"किं गेयं कृष्ण चरितं क्व स्थेयं कृष्ण कानने,
किं ध्येयं कृष्ण पादाब्जं किं मृग्यं कृष्ण सेवनम् ॥"

गेय—क्या है ? कृष्ण चरित, अवस्थान करना कहाँ है ? कृष्ण कानन में । ध्येय क्या है ? कृष्ण पादाब्ज । अन्वेषणीय क्या है ? कृष्ण सेवन ।

यहाँ व्यवच्छेद्य – अर्थ लभ्य हैं। उभय उदाहरण--प्रश्न पूर्वक के उदाहरण हैं । अप्रश्न पूर्वक का उदाहरण—

"भक्तिः कृष्णे नान्यदेवे वाञ्छास्मिन् विषये न हि ।
दृश्यते कृत पुण्यानां सङ्गः सत्सु न रागिषु ॥"

पुण्यवान् जनों की कृष्ण में भक्ति होती है, अन्य देव में नहीं, विषय में वाञ्छा नहीं होती है, सङ्ग सज्जनों के साथ होता है, विषय लोलुपों के सहित नहीं ।

"केशेषु कौटिल्य मुरोजयुग्मे काठिन्यमक्ष्णो स्तरलत्वमुच्चैः ।
पाणिद्वये पादयुगेऽधरौष्ठे रागः सदा दीव्यति राधिके ते ॥

हे राधिके ! तुम्हारे केश में कुटिलता, उरोजयुग्म में काठिन्य नयनों में तरलता, पाणिद्वय में, पद द्वय में, एवं अधर औष्ठ में लालिमा सदा विराजित हैं ।

श्लेष मूलक होकर वैचित्री विशेष होता है । उदाहरण—

श्लेष मूलत्वे वाच्य वैचित्र्य विशेषो यथा---

"पापेषु गुण विच्छेद श्विवत्रेषु वर्ण सङ्करः ।
मथुरायां हरौ राजत्यपां नीचोऽपसर्पणम् ॥"

मथुरा में श्रीहरि विराजित होने पर युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के

क्रमः स्यात्क्रमिकाणां चेत्पदानां क्रमतोऽन्वयः ।।
यथा--मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहित-वृत्तीनां ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ।।
इमं यथासंख्यमाहुः ।२७।

धनुर्गुण का छेदन होता था । किन्तु दयादाक्षिण्यादि गुणों का विलोप नहीं होता था। विभिन्न वर्णों का संमिश्रण चित्र कार्य में होता था,किन्तु जगत् में वर्ण सङ्कर की सृष्टि नहीं होती थी, नीच गामिता प्रवाह का ही होती,मनुष्यों की नहीं, यहाँ गुणविच्छेद वर्ण सङ्कर नीच में अपसर्पण श्लेष है ।

क्रम अलङ्कार—

"क्रमः स्यात् क्रमिकाणां चेत्पदानां क्रमतोऽन्वयः ।।"

क्रमिक पदों का अन्वय यदि क्रमसे हो तो क्रमनामक अलङ्कार होगा। । निदर्शन--

मृगमीन सज्जनानां तृणजल सन्तोष विहित वृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवर पिशुना निष्कारण वैरिणो जगति ।।"

जगत् में तृण जल एवं सन्तोष के द्वारा जीवन धारण परायण मृग मीन सज्जन वृन्द के अकारण वैरी लुब्धक व्याध, धीवर एवं पिशुन-खल व्यक्ति गण होते हैं ।

इस अलङ्कार को यथासंख्य अलङ्कार भी कहते हैं ।

"यथा संख्यमनुद्देश उद्दिष्टानां क्रमेण यत् ।।

"शास्त्र में वृक्षवद्व्यवहारः" नियम से उद्दिष्टा ऊर्द्ध्वे विष्ट-प्रथमाभिहित यथार्थ का पौर्वापर्य्य क्रमसे अनुद्देशपश्चादुक्ति को यथा संख्य अलङ्कार कहते हैं ।

संख्यानति क्रम्य स्थितमिति यथा संख्यं--नित्य ब्रह्मालङ्कोऽयं शब्दः ।

दृष्टान्त—स्त्रीणामरीणां मित्राणां कृष्ण स्तै स्तै गुणै भंवत्
स्मरो दण्डधरश्चन्द्र स्त्रिधैकोऽपि भवां स्थितः ।।"

क्रमादेकमनेकस्मिन् पर्य्यायो व्यत्ययाच्च सः ।

एकं वस्तु चेत्क्रमेणानेकत्र स्यादनेकं वैकत्र, तदा पर्य्यायो द्विधा। क्रमेणोदा० — चेतो मदीयं चिकुरे निपत्येत्यादि ।

विलसन्ति नितम्बिन्यो यत्र चित्राम्बराञ्चिताः ।
विचरन्ति शिवा स्तत्र त्वद्वैरिभवने विभो ।२८।

श्रीकृष्ण, ललना-अरि—मित्रों के निकट उसके अनुरूप गुण से विराजित होकर एक होकर भी आप स्त्रियों के पक्ष में कामदेव-शत्रु के पक्ष में दण्डधर, मित्रों के पक्ष में प्रसन्नता कारण पूर्णचन्द्रबने थे। पूर्वोक्त त्रिविध के सहित उपरोक्त त्रिविध का क्रम से अन्वय होने से यथा संख्यक अलङ्कार हुआ है ।

पर्य्याय अलङ्कार—

क्रमिक के प्रकरण में क्रम प्रयुक्त पर्य्याय अलङ्कार का वर्णन करते हैं-- "क्रमादेकमनेकस्मिन् पर्य्यायो व्यत्ययाच्च सः ।।

यदि एक वस्तु क्रम पूर्वक अनेक स्थान में हो, अथवा अनेक वस्तु एकत्र हो तो पर्य्याय अलङ्कार होता है, यह द्विविध है । क्रमश उदाहरण-' चेतो मदीयं चिकुरे निपत्येत्यादि ।

विलसन्ति नितम्बिन्यो यत्र चित्राम्बराञ्चिताः ।
विचरन्ति शिवा स्तत्र त्वद्वैरिभवने विभो ।।"

हे विभो ! आप के वैरी भवन में जहाँ विचित्र वसनादि शोभिता नितम्बिनी विलास करती रहती थी, वहाँ सम्प्रति शृगाल विचरण करते रहते हैं ।

अथवा--"क्वचिदनेकमेकस्मिन्ननेकं चैकशः क्रमात् ।
भवति क्रियते वा चेत्तदा 'पर्य्याय' इष्यते ।।"

एक वस्तु क्रमसे अनेक स्थान में स्वयं यदि अवस्थित होती हो,

तत्परंपरितं श्लिष्टाश्लिष्टशब्दविनिर्मितं ॥

क्रमेणोदा०कमलामोद-रोलम्बो महत्पङ्कक्षयांशुमान् ।
योगिमानस-हंसोऽयं भवताद्भवतापभित् ।

अत्र कमलाया मोद एव कमलानामामोद एवमाद्यारोपो भगवतो रोलम्बत्वाद्यारोपकः ।

दारिद्र्यगजपञ्चास्यो दुर्नयांबुधि-मन्दरः ।
दानवारण्य-दावाग्निर्दुःखं दामोदरो द्यतु ॥

सहित रूपित हुआ है ।

निरङ्ग रूपक—मुखेन्दु स्तव गोविन्द प्रकाशयति मे मनः ।
हे गोविन्द ! तुम्हारे मुखेन्दु मदीय मनको प्रफुल्ल करता है ।

परम्परित रूपक—"यस्य कस्यचिदारोपः परस्यारोपको यदा ।
तत्परम्परितं श्लिष्टाश्लिष्टशब्दविनिर्मितं ॥

जहाँ जिस किसी का आरोप अपर के आरोप के प्रति हेतु होता है, वह परम्परित रूपक है, श्लिष्ट--अश्लिष्ट भेद से द्विविध हैं ।

क्रमशः उदाहरण—"कमलामोद-रोलम्बो महत्पङ्कक्षयांशुमान् ।
योगिमानस-हंसोऽयं भवताद्भवतापभित् ॥

महत् पङ्कक्षयांशुमान् योगि मानस हंस यह कमलामोद रोलम्ब भवताप हारी हों । यहाँ कमला का मोद ही कमल समूह का आमोद है, इस प्रकार प्रथम आरोप ही भगवान् को भ्रमर रूप में आरोप करने का हेतु है ।

'दारिद्र्यगजपंचास्यो दुर्नयांबुधि-मन्दरः ।
दानवारण्य दावाग्नि दुःखं दामोदरो द्यतु ॥

दारिद्र्य रूप गज के पक्षमें जो सिंह स्वरूप हैं, दुर्नीति रूप अम्बुधि के पक्ष में जो मन्दर रूप हैं, दानव रूप अरण्य के पक्ष में जो

अत्र दारिद्र्यादेर्गजत्वाद्यारोपो भगवतः पञ्चास्यत्वाद्यारोपकः ॥२९॥

दावाग्नि स्वरूप हैं, वह दामोदर दुःख भञ्जन करें ।

यहाँ दारिद्र्य प्रभृति का गज प्रभृति रूप में वर्णन करने से ही भगवान् का वर्णन पञ्चास्य रूप में हुआ ।

भक्ति रसामृतशेषोक्त रूपक प्रकरण इस प्रकार है—

"रूपकं रूपितारोपाद् विषये निरपह्नवे "

व्यङ्ग्य साम्य अलङ्कारके मध्य में रूपक का स्थान प्रधानतम है, अतः रूपकालङ्कार का वर्णन करते हैं । शब्दतः तात्पर्य्यतः निषेध रहित होकर उपमेय में उपमान का अभेद आरोप को रूपक-अलङ्कार कहते हैं ।

"रूपयति उपमानोपमेययोरभेदारोपणं करोतीति रूपकम् ॥

उक्त लक्षण में रूपित पद प्रदान से परिणाम अलङ्कार व्यावृत्त हुआ । उपमेय में उपमान का अभेदारोप ही रूपक है, उपमेय में आरोप्यमाण उपमान का अभेद प्रकृत में उपयोगी होने से परिणाम अलङ्कार होता है । इसका विचार 'परिणाम' अलङ्कार प्रदर्शन में होगा । लक्षण में-"निरपह्नवे' पद दान हेतु 'अपह्नुति' अलङ्कार की व्यावृत्ति हुई । शब्द तात्पर्य्य से निषेध का नाम अपह्नव है, उपमेय में उपमान का अभेद आरोप—रूपक है । सापह्नव उपमेय में उपमान का अभेदारोप अपह्नुति है । तत् परम्परितं साङ्गं निरङ्गमिति त्रिधा" रूपक--साङ्ग, निरङ्ग-परम्परित भेद से त्रिविध हैं । जिस में कार्य्य कारण भाव-श्रेणी परम्परा क्रमसे विन्यस्त हैं, वह परम्परित रूपक है । सकल अङ्ग प्रतिपादन होने से साङ्ग होता है । प्रतिपादकों में से एक को न होना निरङ्ग है ।

"यत्र कस्य चिदारोपः परारोपण कारणम् ।
तत् परम्परितं प्राहुः श्लिष्टाश्लिष्ट निबन्धनम् ।
प्रत्येकं केवलं मालारूपञ्चेति चतुर्विधम् ॥

उक्त त्रिविध रूपक के मध्यमें परम्परित रूपक का वर्णन करते हैं। यहाँ एकका आरोप अन्य आरोप के प्रति होता है। यह परम्परित रूपक–द्विविध हैं, श्लिष्ट-एवं अश्लिष्ट। एक एकभी केवल, एकमात्र मूल मालारूप भेद से चतुर्विध हैं। श्लिष्ट शब्द निबन्धन केवल परम्परित रूपक का दृष्टान्त—

"आहवे जगदुद्दण्ड राजमण्डल राहवे।
श्रीनृसिंह महीपाल स्वस्त्यस्तु तव बाहवे॥"

हे श्रेष्ठ सैन्य समन्वित महीपाल ! युद्धक्षेत्र में आप के बाहुद्वय शत्रु दलन कार्य्य में राहु के समान हैं, अतः वे जय युक्त हैं।

यहाँ राज मण्डल दैत्यनृप समूह ही चन्द्र विम्ब है। इस प्रकार आरोप ही पुण्य काल में आविर्भाव परायण श्रीनृसिंह के बाहु में राहुत्वारोपण में निमित्त है। राज शब्द से भी चन्द्र का बोध होता है। माला रूपक—"पद्मोदय दिनाधीशः सदागति समीरणः।
क्रूर भूभृद्वर्गवज्रं श्रीकृष्ण त्वं विराजसे॥"

हे श्रीकृष्ण ! आप ही पद्मफुल विकासी सूर्य्य स्वरूप हैं। जिस प्रकार एक सूर्य्य असंख्य पद्म विकास कार्य्य में सक्षम है, उस प्रकार आप एकक पृथिवी में असाधारण सम्पत्ति की वृद्धि करते हैं। जिस प्रकार वायु सर्वत्र गमन शील है, उस प्रकार आप भी दान मान के द्वारा सर्वदा साधु जनों का आगमन सम्पादन करते हैं। हिंसक भूभृद् वर्ग ही कठिन पर्वत वृन्द हैं, इस प्रकार आरोप ही श्रीकृष्ण में सूर्य्यत्वादि आरोप के प्रति कारण है।

अश्लिष्ट निबन्धन केवल का निदर्शन—

"पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्ग ज्याहति कर्कशाः।
त्रैलोक्य मण्डपस्तम्भा श्चत्वारः कृष्ण बाहवः॥

शार्ङ्गधनु आकर्षण विकर्षण से अतिकर्कश, त्रैलोक्य मण्डपस्तम्भ जलद श्याम श्रीकृष्ण के चतुर्बाहु तुम सब की रक्षा करें। यहाँ पर तीन लोकों में मण्डपत्वारोप ही श्रीकृष्ण बाहु में स्तम्भत्वारोप के

प्रति निमित्त है। माला रूप का दृष्टान्त—

"मनोज राजस्य सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिदङ्गनायाः।
विराजति व्योमसरः सरोजं राधे ! सिताभ्र प्रभमिन्दुबिम्बम्॥"

हे राधे ! कन्दर्प राज के शुभ्रच्छत्र के समान दिग् बधूओं के श्रीखण्डचित्र के तुल्य आकाश सरोवर के कमल सदृश चन्द्रमा प्रकाशित है। यहाँ मनोज में राजत्वारोप ही चन्द्र बिम्ब मे सितात पत्रादि आरोपण में कारण है। इसी प्रकार श्रीनृसिंह भुजों में राहुत्वारोप ही हिंसक राजन्य वर्गमें चन्द्र बिम्बत्वारोपण में कारण है। यह मत अपर का है।

"अङ्गिनो यदि साङ्गस्य रूपणं साङ्गमेव तत्।
समस्त वस्तु विषयमेकदेश विवर्त्ति च॥

साङ्ग रूपक का वर्णन करते हैं–आकाङ्क्षित अङ्ग युक्त अङ्गीप्रधान उपमान का यदि रूपण हो, और उस प्रकार ही उपमेय का अभेदारोपण हो तो, साङ्ग नामक रूपक होगा। अर्थात् साङ्ग उपमेय में साङ्ग उपमान का अभेदारोप ही साङ्ग रूपक है। यह द्विविध हैं। एक समस्त वस्तु विषय अपर एकदेश विवर्त्ति, समस्त वस्तु--अर्थात् अङ्गाङ्गि समस्त विषय शब्द से गृहीत होते हैं। यही समस्त वस्तु विषय है। एकदेश में विवर्त्तित होता है, शब्दत्वांश में विशेषण रूप में स्थित होता है, यह एकदेश विवर्त्ति है। अशेष आरोप्यमाण का शब्द द्वारा उपस्थित होने से समस्त वस्तु विषय होता है।

"रावणावग्रह क्लान्तमिति वागमृतेन सः।
अभिमृश्य मरुत् सस्यं कृष्णमेघ तिरोदधे॥

रावण नामक अनावृष्टि से क्लान्त देवगण सस्य को वाणीरूपा अमृत से सिञ्चन कर कृष्ण मेघ अन्तर्द्धान हो गया।

कृष्ण में मेघत्वारोपण कर्त्तव्य होने से ही वाणी में अमृत का आरोप हुआ, वर्षण के निमित्त जो जो सामग्री की आवश्यकता

होती है, यहाँ भी वे सब सामग्री हैं, जिस प्रकार कर्त्ता, कर्म, करण। उपमेय भूत कृष्ण हैं, उपमान स्वरूप मेघ—कर्त्ता रूप से स्वतन्त्र होने से अङ्गी है। वाग् अमृत समूह अङ्ग होने से प्रयोज्य हैं, वर्षण सम्पादक होने से अङ्ग हैं, सब ही शब्दतः वर्णित हैं।

"यत्र कस्यचिदार्थत्वमेकदेश विवर्त्ति तत्"

जिस रूपण में आरोप्यमाण उपमान भेद की प्राप्ति अर्थ से होती है, उस रूपक को एकदेश विवर्त्ति साङ्ग रूपक कहते हैं।

दृष्टान्त—"लावण्य मधुभिः पूर्णं कृष्णस्यास्यं विकस्वरम्।
लोक लोचन रोलम्ब कदम्बः कैर्न पीयते ॥"

लावण्य मधु से पूर्ण श्रीकृष्ण के प्रफुल्लित वदन का दर्शन लोक लोचन भ्रमर से कौन नहीं करेगा?

यहाँ लावण्य आदि में मधुत्व आरोप शब्द से ही गृहीत है। मुख में पद्मत्वारोप किन्तु अर्थ से गृहीत है, इसको एकदेश विवर्त्ति उपमा कहना ठीक नहीं होगा। विकस्वरत्वारोप्य पद्मका बोध शब्द से ही होता है। विकस्वरत्व का अर्थ है—प्रस्फुटित। वह प्रकाश सङ्कुचित पद्म में मुख्य रूप से सम्भव है। किन्तु सर्वदा एक रूपमें स्थित मुख में वह सम्भव नहीं है। मुख्यार्थ प्राप्त होने से लक्षणा हेय है, इस नियम से विकस्वरपद ही रूपक का साधक है, उपमा का बाधक है।

निरङ्ग केवलस्यैव रूपणम्। तदपि द्विधा--माला-केवलरूपत्वम्।

निरङ्ग रूपको कहते हैं—अङ्ग रहित उपमान का रूपक निरङ्ग उपमेय में अभेदारोपण निरङ्ग है। निरङ्ग उपमेय में निरङ्ग उपमान का अभेदारोपण--निरङ्ग नामक रूपक है।

यह निरङ्ग रूपक—मालारूपक अर्थात् अनेकारोप युक्त है, केवल रूपक होने से एकमात्र आरोप युक्त है, अतः दो प्रकार भेद हैं। दृष्टान्त—"निर्म्माण कौशलं धातुर्मङ्गलं लोक चक्षुषाम्।
मनः क्रीड़ा गृहं शौरेः सेयमिन्दीवरेक्षणा ॥

नीलोत्पल नयना, विधाता का निर्म्माण कौशल को सूचित करती है, वह--जन नयनों का आनन्द दायक है, और कृष्ण चन्द्र का क्रीड़ागृह भी है। यहाँ इन्दीवरेक्षणा रूप निरङ्ग में निर्म्माण कौशल निरङ्ग तीनों उपमानों का अभेद आरोपत्रय से मालारूप निरङ्ग है। निर्म्माण कौशल का उपमानत्व स्वीकार न करने पर भी आरोपद्वय का अनेक होने से मालारूपक हुआ है।

केवल रूपक का दृष्टान्त—

"यत्ते सुजात चरणाम्बुरुह स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय ! दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमतिधीर्भवदायुषां नः ॥"

गोपिका बोली—हे प्रिय ! तुम्हारे सुजात चरणाम्बुरुह का धारण वक्षोज में भय भय से करती हूँ, कर्कश वक्षोज के स्पर्श से चरणों में व्यथा न हो, उसी चरणों से वन वन में तुम तो घुमते रहते हो, इस से चरणों में कितनी व्यथा होती है, यह सोचकर मेरी बुद्धि चकरा जाती है।

यहाँ चरणाम्बुरुह रूप निरङ्ग में एक एक उपमेय में कर्कश रूप निरङ्ग रूप एक एकका उपमान का एक मात्राभेदारोप से केवल रूप निरङ्ग रूपक है। एक आरोप का कार्य्य कारण भाव से कार्य्यान्तर की अपेक्षा से परम्परित रूपक है। अङ्गाङ्गि भाव से आरोपान्तर सापेक्ष होने से साङ्ग है। सर्वथा आरोपान्तर निरपेक्ष होने से निरङ्ग रूपक होता है।

तेनाष्टौ रूपक भेदाः—चिरमं मैं रुक्ता इति शेषः ॥

शुद्ध रूपकालङ्कार के अष्टविध भेद हैं।

परम्परित—४ श्लिष्ट शब्द निबन्धन केवलम् १ 'आहवेजगदुद्दण्ड'
मालारूपकम् १ 'पद्मोदयदिनाधीश'
अश्लिष्ट शब्द निबन्धन केवलम् १ 'पातुवो जलदश्यामाः'
मालारूपकम् १ 'मनोजराजस्य'

साङ्गम् २	समस्त वस्तु विषयम्	१ 'रावणावग्रह क्लान्तम्'
	एकदेश विवर्त्ति	१ 'लावण्य मधुभिः पूर्वम्'
निरङ्गम् २	मालारूपकम्	१ 'निर्म्माण कौशलं धातुः'
	केवल रूपकम्	१ 'दासे कृतागसि'

—※—

प्राचीन पण्डित गण परम्परित के उक्त भेद चतुष्टयको मानते हैं। केवल साङ्ग रूपक ही एकदेश विवर्त्ति होता है, यह नहीं किन्तु परम्परित रूपक भी एकदेश विवर्त्ति होता है, यहाँ आरोपार्थ का होना सम्भव है, अतः परम्परित के चतुष्टय से अधिक भेद नहीं होता है, उसी में अन्तर्भाव है। प्राचीन गण परम्परित का अन्तर्भाव, उक्त भेद चतुष्टय में ही करते हैं।

उदाहरण—"खड्ग क्ष्मा सोविदल्ल स्तव यदुनृपते:" इति" इस के पूर्व पादत्रय ये हैं—

"पर्य्यङ्को राजलक्ष्म्या हरितमणिमयः पौरुषाब्धेस्तरङ्गः।
भग्न प्रत्यर्थिवंशोल्वण विजय करिस्त्यानदानाम्बु पट्टः।
संग्राम त्रासताम्यन्मुरलपति यशो हंसनीलाम्बु वाहः।।"

क्ष्मा—पृथिवी में महिषीत्वारोप एवं खड्ग में सौविदल्लत्वारोप में निमित्त है, यह पूर्व के समान मालारूपक में होगा।

यहाँ कन्दर्प देव में राजत्वारोप, दिक् में अङ्गनात्वरोप, आकाश में सरोवरत्वारोप, अर्थ लभ्य है। चन्द्रबिम्ब में शब्द से ही सितातपत्रत्व सरोजत्वारोप के प्रति निमित्त है, इस प्रकार एकदेश विवर्त्ति मालारूप परम्परित रूपक है।

"दृश्यते क्वचिदारोप्याः श्लिष्टाः साङ्गेऽपि रूपके।।

साङ्ग रूपक में भी श्लिष्ट शब्द निबन्धनत्वरूप परम्परित रूपक भी होता है। अर्थात् साङ्ग रूपक में भी आरोप्य आरोपणीय उपमान वाचक शब्द श्लिष्ट होता है अतः लक्ष्य के अनुसार लक्षण होने से इस को स्वीकार करना आवश्यक है। एकदेश विवर्त्ति श्लिष्ट

का दृष्टान्त—

"करमुदय गिरिस्तनेद्य राधे गलिततमः पटलांशुके निवेश्य।
विकसित कुमुदेक्षणं विचुम्बत्ययममरेशदिशो मुखं सुधांशुः।।"

हे राधे! सुधांशुने गलित तम पटलांशुक में निज कर को निविष्ट कर उदय गिरिस्तन को स्पर्श किया है, पूर्वदिक् के विकसित कुमुदेक्षण युक्त मुख का चुम्बन भी किया है।

यहाँ नायक रूप सुधांशु अङ्गी है, तम पटलांशुक गलनादि उसके अङ्ग रूपसे कहा गया है। इस प्रकार साङ्ग रूपक हुआ है। तमः पटल में अंशुकत्वादि आरोप शब्द से प्राप्त है, अमरेश दिक् में नायिकात्व आरोप अर्थ लभ्य है। इस प्रकार एकदेश विवर्त्तित है। कर--मुख शब्द श्लिष्ट होने से श्लिष्ट शब्द निबन्धत्व है, इससे श्लिष्ट शब्द निबन्धन एक देश विवर्त्तिरूप साङ्ग रूपक अलङ्कार है।

समस्त वस्तु विषयक का उदाहरण भी उक्त पद्य में ही है। विकसित कुमुदेक्षण चुचुम्बे हरिदबलामुखं इन्दुनायकेन। द्वितीयार्द्ध में उस प्रकार पाठ मानलेने से सकल आरोप ही गम्य होगा। श्लिष्ट शब्द निबन्धन समस्त वस्तु विषयक साङ्ग रूपक होगा।

यह श्लिष्ट परम्परित है, कर श्लिष्ट है, और इस से ही महीधर में स्तनत्वारोप हुआ। इस प्रकार कहना ठीक नहीं है, "क्रूर भूभृद्वर्ग वज्र" यहाँ क्रूर भूभृद् आदि में वज्रत्वादि आरोप के विना वर्णनीय श्रीकृष्णादि का सवथा सादृश्य ही नहीं है, "तव पद्मोदय" इत्यादि में परम्परित कैसे होगा? श्रीकृष्णादि के द्वारा सादृश्य तेजस्वित्वादि हेतु सम्भव होगा, यह भी नहीं कह सकते, श्रीकृष्णादि हेतुक सादृश्य सुव्यक्त है। यहाँ वह विवक्षित नहीं हो, पद्मोदयादि दोनों का साधारण धर्म रूप कथन हुआ है। प्राकृत स्थल में उदय गिरिस्तनादि के द्वारा सादृश्य पीनत्वादि से सुव्यक्त है, अतः यह श्लिष्ट परम्परित हुआ है।

कहाँ पर समान न होने पर भी रूपक होता है, दृष्टान्त—

"वदनं तव हे राधे ! सरोजमिति नान्यथा।

हे राधे ! तुम्हारे वदन सरोज ही है। इस में अन्यथा नहीं है। यहाँ समास न होने पर भी मुख में सरोजत्वारोप से केवल निरङ्ग रूपक हुआ है।

भिन्न विभक्ति होने पर भी रूपक होता है—

"विदधे मधुप श्रेणीमिह भ्रूलतया विधिः"

विधिने भ्रूलता से वदन पङ्कज में मधुप श्रेणी का निर्म्माण किया है। 'भ्रूलतया' यहाँ अभेद में तृतीया है, अन्यथा तादात्म्यारोप नहीं होगा। वैधर्म्य में भी रूपक होता है। उदाहरण—

"सौजन्याम्बु मरुस्थली सुचरिता लेख्य द्युभित्तिर्गुण-
ज्योत्स्ना कृष्ण चतुर्द्दशी सरलता योगश्वपुच्छच्छटा।
यैरेषापि दुराशया कलियुगे राजावली सेविता
तेषां शार्ङ्गिणि भक्तिमात्र सुलभे सेवा कियत् कौशलम् ॥"

राजन्य वृन्द-सौजन्य रूप अम्बु के पक्ष में मरुस्थली हैं, सुचरित में आकाश सदृश हैं। दया दाक्षिण्यादि गुणों में ज्योत्स्ना हेतु कृष्ण-चतुर्द्दशी के समान हैं। उन सब में कुत्ते की पुँछ के समान सरलता है। कलियुग में असत् धन लोभ से जो लोक राजावली की सेवा करते हैं, उन सबों को उतने ही क्लेश से श्रीकृष्ण भक्ति मिल सकती है। अतः राजसेवा को छोड़कर श्रीकृष्ण भक्ति करना ही सुखकर है। यहाँ जल हेतु मरुस्थल, चित्र हेतु—आकाश, ज्योत्स्ना हेतु कृष्णाचतुर्द्दशी, सरलता निबन्धन—श्व पुच्छ—ये सब असम्भव हैं। अतः ये सब वैधर्म्म हैं, प्रथम विशेषणत्रय में अश्लिष्ट शब्द निबन्धित मालारूप परम्परित रूपक है, चतुर्थ विशेषण में निरङ्ग केवल रूपक है।

कतिपय रूपक शब्द श्लेष मूलक होने पर भी रूपकविशेष रूपक का प्रकार विशेष होने से अर्थालङ्कार के मध्य में उस की गणना होती है, श्लिष्ट परम्परित रूपक में शब्दार्थोभय अलङ्कार

होना ही उचित है। इस प्रकार श्लेष मूलक अलङ्कार 'अपह्नुति' व्यतिरेकादि में जानना होगा।

"अधिकारूढ़ वैशिष्ट्यं रूपकं यत्तदेवतत् ॥

पूर्वोक्त भेदों से विलक्षण भेद— अधिकारूढ़ वैशिष्ट्य नामक रूपक को कहते हैं। जो रूपक अपने में अधिक चमत्कारिता को व्यक्त करता है। वह अधिकारूढ़ वैशिष्ट्य संज्ञक होता है। उपमान उपमेय में जो धर्म है, उसको महत्त्व न देकर जो धर्म उसमें नहीं है, उसका आरोपकर रूपण करने से वैशिष्ट्य अधिक स्थापित होता है। अधिकारूढ़ वैशिष्ट्य संज्ञक रूपक का उदाहरण यह है--

"इदं वक्त्रं राधे ! तव हतकलङ्कः शशधरः
सुधाधारा धारश्चिर परिणतं बिम्बमधरः।
इमे नेत्रे रात्रिन्दिवमधिक शोभे कुवलये
तनु लावण्यानां जलधिरवगाहे सुखभरः॥"

हे राधे ! तुम्हारे यह वदन निष्कलङ्क शशधर है। सुधाधारा-अमृत प्रवाह का आधार-आश्रय है, अधर सुपक्व बिम्बफल है, दृश्यमान नेत्रद्वय—दिनरात अधिक शोभित नीलोत्पल है, तथा तनु देह लावण्यों का समुद्र है, अवगाहन में अतीव सुखद है।

यहाँ कलङ्क राहित्यादि के द्वारा अधिक वैशिष्ट्य है। आदिपद से सुधाधारा का आधार को जानना होगा। उपमान-शशधर कलङ्की है। किन्तु उसको छिपाकर मुख में उसका रूपण हुआ। उपमान बिम्ब में अविद्यमान चिरपरिणतत्व धर्म का आरोपण हुआ है। कुवलय-रात्रि में अधिक शोभित है, उपमान में दिनरात अधिक शोभत्व धर्म का आरोप करके नेत्र में रूपण हुआ, जलधि में लावण्य न होने पर भी आरोप कर शरीर में उसका रूपण हुआ है।

परिणाम अलङ्कार—

"परिणामः क्रियार्थश्चेदारोप्यो विषयात्मना"

आरोप्य श्चेदारोपविषयात्मना क्रियार्थः प्रकृतक्रियोपयोगी स्यात्तदा परिणामः । यथा—

फुल्लेन साक्षिकमलेन ददर्श कान्तम् ।

"यदि उपमान-उपमेय रूप में परिणत होता है—तो परिणाम-अलङ्कार होता है । वह प्रकृत में उपयोगी होना भी आवश्यक है ।

उदाहरण—'फुल्लेन साक्षिकमलेन ददर्श कान्तम् ।

विकसित अक्षि कमल के द्वारा उसने कान्त को देखा । यहाँ कमल नयन रूप में परिणत होकर दर्शन किया, वा निर्वाह किया ।

अथवा— "विषयार्थ तयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि ।
परिणामो भवेत्तुल्या तुल्याधिकरणो द्विधा ।

आरोप्य माणस्य आरोप विषयतया परिणामात् परिणामः ॥

आरोप्य माण का उपमेय रूप में परिणत होना ही परिणाम है । परिपूर्व नमधातु का भाववाच्य में घन प्रत्यय से परिणाम शब्द निष्पन्न होता है । निदर्शन--

'स्मितेनोपायनं कृष्णस्यागतस्य कृतं तथा ।
स्तनोपपीड़माश्लेषं द्यूते चक्रे यया पणः ॥"

श्रीकृष्ण को आते देखकर उस से स्मित ने ही उपायन प्रस्तुत किया । और द्यूत में जो पण था, उसकी भी रक्षा उसने स्तनोपपीड़ आलिङ्गन से किया । अतः उपमेय भूत स्मित में उपमान भूत उपायन का भेद आरोप ही प्रकृत कृष्ण के अभ्यर्थन का उपयोगी है, उपमेयभूत स्तनोपपीड़ आलिङ्गन में उपमान भूत पण का अभेद आरोप, प्रकृत द्यूत क्रीड़ा साधनोपयोगी है, अतः यह परिणाम अलङ्कार हुआ है ।

यहाँ उपायन एवं पण में वसन आभरणादि का विनियोग होता है । प्रस्तुत स्थल में कृष्ण सम्भाषण द्यूत में स्मित एवं आलिङ्गन ही उसका निर्वाहक है । प्रथम में वैयधिकरण प्रयोग है ।

अत्र कमलमक्षित्वेन परिणतं सत् प्रकृतां दर्शनक्रियां निर्वर्त्तयति ॥३०॥

उपमान उपमेय भिन्न भिन्न विभक्ति के हैं । द्वितीयार्द्ध में सामानाधिकरण्य है, आश्लेष--पण, उपमान, उपमेय-समान विभक्ति के हैं । रूपक में—"मुखचन्द्रं हरेः पश्य" यहाँ आरोप्यमान चन्द्र उपरञ्जक मात्र है, अभेद आरोप से मुख में केवल सौन्दर्य्य प्रतिपादन होता है । किन्तु दर्शनादि में उपयोगी नहीं है, मुख में चन्द्रक आरोप के बिना भी दर्शनादि हो सकते हैं । परिणाम स्थल में स्मितेन, विषयस्मित आश्लेष के सहित तादात्म्य-अभिन्नता है, प्रकृत में कृष्ण सम्भाषणादि में उपयोग होता है । अतएव रूपक में आरोप्य उपमान पदार्थ का अवच्छेदक इतर व्यावर्त्तक रूप में उपमेय भूत मुखादि के सहित अभेद सम्बन्ध होता है । परिणाम में तादात्म्य से प्रकृत विषय साधनोपयोगी रूपसे अभेद होता है । अर्थात् 'मुख-चन्द्रं पश्यामि' स्थलमें उपमेय मुखके सहित उपमान चन्द्रका अभिन्न प्रत्यय नहीं होता है, किन्तु कुत्सित मुख का निरास करने के निमित्त सुन्दरादि विशेषण के समान उसकी प्रतीति है ।

"स्मितेनोपायनम्" परिणाम में स्मित उपायन उभय पदार्थ अभिन्न होकर कृष्णका सम्बन्ध कार्य्य सम्पन्न करता है । अतः वस्तुत अभिन्न रूप से ही प्रतीति होती है । उपमान प्रतियोगी की भेद प्रतीति रूपक है । उपमेय प्रतियोगी की भेद प्रतीति परिणाम है ।

"न्यसे सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु" यहाँ रूपक ही है, परिणाम नहीं है । अतिस्नेह से अति कर्कश स्तन समूह पाद व्यथन के कारण हो, वह तो अप्रस्तुत है, अतः उससे सत्वर आने की प्रेरणा हो गई है, परिणाम भी रूपक तुल्य अधिकारूढ़ वैशिष्ट्य युक्त होता है । दृष्टान्त

"उद्यत्तमसि च वृन्दावन देशे यदापि चित्रमाभाति ।
काञ्चन दिव्यौषधयः स्फुरन्ति दीपा विनापि तैलादि ॥"

प्रगाढ़ तमसावृत वृन्दावन प्रदेश में कुछ विचित्र घटना है ।

प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् स्थाप्यते सा त्वपह्नुतिः ।।
उपमेयं प्रतिषिध्य यदुपमानस्थापनं सापह्नुतिः ।।

उदा०—अङ्कं केऽपि शशंकिरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे
सारङ्गं कतिचिच्च सञ्जगदिरे भूच्छायमैच्छन् परे ।
इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते
तत्सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ।।

तैलादि के विना ही वहाँ के कल्प वृक्ष समूह उद्भासित होकर अन्धकार विनष्ट करते हैं ।

यहाँ नीपसमूह स्वरूप औषधि गण होने से ही श्रीकृष्ण लीलोपयोगि-अन्धकार विनाशक होते हैं । यहाँ तैलादि विनाभाव से ही अधिकारूढ़ वैशिष्ट्य है । उपमान प्रदीप में वर्त्तमान तैलपूर धर्म को न दिखाकर ही प्रकाशक कहा गया ।

उपमान उपमेय परिवार युक्त अलङ्कार ये हैं--उपमा उत्प्रेक्षा सन्देह, भ्रान्तिमान, अपह्नुति, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, अनन्वय व्यतिरेक, निदर्शना ।

अपह्नुति अलङ्कार—

"प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् स्थाप्यते सा त्वपह्नुतिः ।।

उपमान उपमेय घटित अलङ्कार गोष्ठीभूत अपह्नुति अलङ्कार का वर्णन करते हैं । वर्णन प्राप्त उपमेय का शब्द से, तात्पर्य्य से, निषेध करके प्रकृत भिन्न उपमान का स्थापन करने से अपह्नुति अलङ्कार होता है । कहा है—

उपमेयं प्रतिषिध्य यदुपमान स्थापनं सापह्नुतिः"

दृष्टान्त—अङ्के केऽपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे ।
सारङ्गं कतिचिच्च सञ्जगदिरे भूच्छायमैच्छन् परे ।।

अत्रेन्दौ कलङ्कादिकं प्रकृतं निषिध्यापि पीतमप्रकृतं तमः स्थापितम् ।।३१।।

इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते ।
तत् सान्द्रं निशि पीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ।।"

चन्द्रमा में दलित चन्द्रनील मणि खण्ड के तुल्य जो श्याम वर्ण दृष्ट होता है, उसको कतिपय व्यक्ति--कलङ्क की शङ्का करते हैं । अपर व्यक्ति—जल निधि से उत्थित होने के कारण जल निधि का पङ्क है—यह मानते हैं, कतिपय व्यक्ति उसे सारङ्ग मानते हैं, तो अपर व्यक्ति-भू छाया मानते हैं । किन्तु वह रात्री कालीन गाढ़ अन्धकार को पान करने कारण ही--कुक्षि में वह दिखाई देता है ।

यहाँ इन्दु में कलङ्कादिक वर्णन प्राप्त वस्तु को निषेध कर अप्रकृत वस्तु पान किया हुआ तम को स्थापन किया गया है ।

अथवा—'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः"

उपमेय को निषेध करके उपमान का स्थापन करने से अपह्नुति अलङ्कार होता है । प्रतिषिद्ध पद में त्वाच् प्रत्यय का आनन्तर्य्य अर्थ है । अतः अपह्नव पूर्वक आरोप, उपमेय निषेध पूर्वक उपमान का स्थापन, आरोप पूर्वक अपह्नव उपमान स्थापन पूर्वक उपमेय प्रतिषेध है, तथा मालारूप से केवल रूप से यह दो प्रकार हैं, समुदाय से यह चतुर्विध हैं । अपह्नव पूर्वक आरोप में मालारूपा अपह्नुति का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं ।

"नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः ।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलङ्कः शयितो मुरारिः ।।

दृश्यमान आकाश नहीं है, किन्तु अम्बुराशि है, यह तारा नहीं है, नूतन फेन भङ्ग है, यह शशी चन्द्र नहीं है, किन्तु कुण्डलित फणीन्द्र है । चन्द्रस्थित कलङ्क वह नहीं है, किन्तु मुरारि—श्रीकृष्ण शयन किये हुए हैं ।

यहाँ नभोमण्डल आदि उपमेय का निषेध करके अम्बुराशि प्रभृति उपमानादि का स्थापन किया गया है, वे अनेक होने से मालारूपा अपह्नुति अलङ्कार है। तथा 'न' चतुष्टय का प्रयोग से शब्दतः प्रकृत प्रतिषेध हुआ है। आरोप पूर्वक अपह्नव में केवलरूपा अपह्नुति का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं —

"राधेऽद्य पश्यचरमाचलचूलचुम्बि
हिण्डीर पिण्डरुचि भाति सितांशुबिम्बम्।
उद्दीपितस्य रजनीं मदन लसस्य
धूमं दधत् प्रकटलाञ्छन कैतवेन॥

अस्ताचलशिखर में फेन वस्तुपिण्डके समान चन्द्र दिखाई पड़ता है। रात्रि में उद्दीपित मदनानल के धूम को वह लाञ्छन के छल से धारन कर प्रकाशित है।

यहाँ प्रथम धूम रूप उपमान का आरोप कर पश्चात् कलङ्क रूप उपमेय का अपह्नव से अपह्नुति हुई है, आरोप एकमात्र होने से केवल रूपा है। 'न' कार का प्रयोग नहीं है, केवल 'कैतव' कहा गया है। तात्पर्य्य से ही प्रकृत का प्रतिषेध हुआ है। इस प्रकार

"विराजति व्योमवपुः पयोधि स्तारास्तत्र च फेनभङ्गाः"

प्रकारान्तर से भी निषेध होता है। आकाश रूप शरीर से समुद्र विराजित है, उस पयोधि में नक्षत्राकारा फेन खण्ड समूह हैं, इस में वपुः शब्द प्रयोग से, मयट प्रत्यय से प्रकृत व्योम ताराओं का अपह्नव में वक्ता का तात्पर्य्य है। पयोधि फेन भङ्ग रूप उपमान का स्थापन से अपह्नुति है, रूपक नहीं है। उस में "विषये निरूपह्नवे" कहा गया है।

"गोपनीयं कमप्यर्थं द्योतयित्वा कथञ्चन।
यदि श्लेषेणान्यथा वान्ययथयेत् साप्यपह्नुतिः॥"

उपमेय का निषेधका उपमान कर स्थापन होने से भी अपह्नुति प्रकरण से विलक्षण अपह्नुति अलङ्कार होता है। वक्ता, लज्जा

व्याजस्तुति स्तु निन्दायाः स्तुते र्वा व्यत्ययाद्भवेत्॥
निन्दास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां स्तुतिनिन्दे चेत् क्रमाद् व्यङ्ग्ये स्यातां तदा व्याजस्तुतिः॥ क्रमेणोदा०—
भजत स्तव पादपङ्कजं न च किञ्चित्फलमत्र वीक्ष्यते।

प्रभृति के द्वारा योग्य विषय को गोपन करके व्यञ्जना वृत्ति से यदि उसे सूचित करता है तो, एवं श्लेष से अन्य विषय का स्थापन करता है, तो अपह्नुति नामक अलङ्कार होता है। श्लेष से कथन का दृष्टान्त—

"मेघागम समयेऽस्मिन्नधिगत हरिता दृशां सम्पत्।
हरये स्पृहयसि राधे नहि नहि शाद्वलविभूतये द्विषति॥

मेघागम समय में राधे नयनों की सम्पत्ति हरिता हो गई है। हरि को चाहती है। नहीं नहीं, शाद्वल विभूति के प्रति द्वेष करती हो। यहाँ अधिकतर हरित्व ही दृशां सम्पत् है, इस को अन्यथा किया। कारण, 'शाद्वल विभूतये' कहा है। अश्लेष का उदाहरण—

"इह पुरोऽनिलकम्पित विग्रहा मिलति हन्ततमालमियलता।
लषसि किं सखि! कृष्ण समागमं नहि घनागम रीतिरुदाहृता॥"

अनिल कम्पित विग्रहलता को देखो सखि! लता तमाल से मिल रही है, सखि! तुम क्या कृष्ण सङ्ग को चाहती हो! नहीं नहीं, यह तो घनागम की रीति को कहा है। वक्रोक्ति में परोक्त का अन्यथा करण है, यहाँ तो निजोक्ति का ही अन्यथा करण है, उससे यह भिन्न है। गोपनकर्त्तानि गोपनीय विषय को पहले कहा है, अतः यह व्याजोक्ति से भिन्न हुई है।

व्याजस्तुति अलङ्कार—

"व्याजस्तुति स्तु निन्दायाः स्तुतेर्वा व्यत्ययाद् भवेत्"

निन्दा एवं स्तुति कथन उद्देश्य से यदि स्तुति निन्दा क्रमश व्यञ्चित होती है तो उसको व्याजस्तुति अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण—"भजत स्तव पाद पङ्कजं न च किञ्चित् फलमत्र वीक्ष्यते।

अपि तु स्वजनादि विच्युति विदितं ते चरितं मयाच्युत ॥

अत्र निन्दया स्तुति र्व्यज्यते ।

जगति त्वत्समो नान्यः स्पृहाशून्यः समीक्ष्यते ।
हरिकीर्त्तन-रत्नानि कण्ठे यत्कुरुषे न हि ॥३२॥

अन्योन्यं क्रियया चेत्स्यादुपरागः परस्परं ।
एकजातीयया क्रियया मिथ श्चेदुपकारस्तदाऽन्योन्यं ॥

उदा०—राधया माधवो भातीत्यादि । अत्र दीप्तिजननक्रियया मिथो द्वयोरुपरागः ॥३३॥

"अपितु स्वजनादि विच्युति विदितं ते चरितं मयाच्युत ॥

हे अच्युत ! मैंने जान लिया है, तुम्हारे चरण पङ्कज का भजन करने से कोई फल नहीं होता है । किन्तु स्वजनादि से विच्युति होती है । निन्दा के द्वारा स्तुति--का उदाहरण—

"जगति त्वत्समो नान्यः स्पृहाशून्यः समीक्ष्यते ।
हरिकीर्त्तन रत्नानि कण्ठे यत् कुरुषे नहि ॥"

जगत् में तुम्हारे समान अपर कोई स्पृहा शून्य व्यक्ति देखने में नहीं आता है । कारण, तुम हरि कीर्त्तन रत्न को कण्ठ धारण नहीं करते हो ।

अन्योन्य अलङ्कार—

"अन्योन्यं क्रियया चेत्स्यादुपराग परस्परम्"

एक जातीय क्रिया के द्वारा यदि परस्पर उपकृत होता है, तो अन्योन्य अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—राधया माधवो भाति । यहाँपर दीप्ति जनन क्रिया के द्वारा परस्पर उभय ही उपकृत हैं ।

अधिक अलङ्कार—

आधाराधेययोरेकस्याधिक्येऽधिकमिष्यते ।

आधाराधिक्ये यथा-वक्षसि व्रजराजस्य नीलाब्जमिव यद्वपुः ।
फणीन्द्रेणाप्यगण्या ये कथं मान्त्यत्र ते गुणाः ॥

आधेयाधिक्ये यथा—यस्यान्तः सकलं विश्वमपश्यद्गोकुलेश्वरी
विप्रं वीक्ष्योद्गतामोदा स्तस्मिन्वपुषि न ममुः ॥३४॥

विनोक्ति स्तु विनैकं चेत्सन्नसन् वा निबध्यते ।

"आधाराधेययोरेकस्याधिक्येऽधिकमिष्यते ॥

आधार एवं आधेय के मध्य में एक का आधिक्य सूचित होने पर अधिक अलङ्कार होता है ।

आधाराधिक्य का उदाहरण—

"वक्षसि व्रजराजस्य नीलाब्जमिव यद्वपुः ।
फणीन्द्रेणाप्यगण्यया ये कथं मान्त्यत्र ते गुणाः ॥"

व्रजराज के वक्षस्थल में नीलाब्ज के समान जो कृष्ण वपुः विराजित है, अनन्त के द्वारा अगण्य जो गुण समूह हैं, उन गुण समूह का गणन कैसे हो सकता है ।

आधेयाधिक्य का उदाहरण—

"यस्यान्तः सकलं विश्वमपश्यद् गोकुलेश्वरी ।
विप्रं वीक्ष्योद्गता मोदास्तस्मिन् वपुसि ना ममु. ॥

जिनके वपु में व्रजेश्वरीने सकल विश्व को देखा, उस वपु में विप्र दर्शन से जो आनन्द उत्पन्न हुआ वह आनन्द का स्थान सङ्कुलान उस में नहीं हुआ ।

विनोक्ति अलङ्कार—

"विनोक्तिस्तु विनैक चेत् सन्नसन् वा निबध्यते"

एक के बिना यदि एक शोभन वा अशोभन होता है, तो विनोक्ति अलङ्कार होता है । उदाहरण—

एकेन विना यद्येकः शोभनोऽशोभनो वा स्यात्तदा विनोक्तिः। क्रमेणोदा०—विना कञ्चुलिकां धत्ते वनिता वत चारुतां।
रामा रूपाभिरामापि न भाति विनयान् विना ॥३५॥
व्याजोक्ति स्तु यदि व्यक्तं छद्मना विनिगूह्यते ॥

"विना कञ्चुलिकां धत्ते वनिता वत चारुताम्।
रामा रूपाभिरामापि न भाति विनयान् विना॥"

वनिता कञ्चुलिका व्यतीत ही चारुताको प्राप्त करती है। किन्तु रामा-रूपाभिरामा होने परभी विनयके बिना शोभिता नहीं होतीहै।

अथवा "विनोक्ति र्यद् विनान्येन नासाध्वन्यदसाधु वा"

विनोक्ति—यह है—जहाँ एक का अभाव से ही शोभनता होती है, अर्थात् अशोभनत्वाभाव, तथा शोभनत्वाभाव है, अतएव यह दो प्रकार हैं, एक का अभाव प्रति पादन, विना शब्द से ही होता है, अतएव विनार्थक शब्द-अन्तरेण, ऋते, निर्, निस् रहित नञ् प्रभृति के द्वारा अभाव प्रति पादन से भी विनोक्ति अलङ्कार होगा। न असाधु--शब्द का अशब्द अशोभन नहीं होगा, इस से शोभन में पर्य्यवसान होने पर भी अशोभनत्वाभाव मुखसे शोभनत्व प्रतिपादन का अभिप्राय यह है—किसी का अशोभन होना अपर के सन्निधि से है, वह तो स्वभावतः ही शोभन है। दृष्टान्त—

"शोभते नितरां राधा कृष्णस्यासङ्गमं विना।
विनासूर्य्य प्रकाशेन द्योतते चन्द्र दीधितिः॥"

कृष्ण का असङ्गम के विना राधा शोभिता होती है। सूर्य्य प्रकाश के विना चन्द्र दीधिति शोभिता नहीं होती है। राधा का मालिन्य--कृष्ण विरह में स्वाभाविक है। अतः उसका अभाव ही शोभा का कारण है। इस प्रकार सूर्य्य प्रकाश से चन्द्र दीधिति की मलिनता है, उसका अभाव से चन्द्र दीधिति प्रकाशित होती है।

असाधु अशोभन का उदाहरण—

यथा—मद्रसीत्यादि ॥ अत्र कान्त-कृतानि नखक्षतानि भृङ्गत्रस्तस्वनखक्षतव्याजेन गोपितानि॥

"विना राधां कृष्णो न सखि सुखदः सा न सुखदा
विना कृष्णं ताभ्यामपि सखि विनान्या न रसदाः
विना रात्रिं नेन्दु स्तमपि न विना सा च रुचिभाक्
विना ताभ्यां जृम्भां दधति कुमुदिन्योऽपि नितरां॥"

निरर्थकं जन्म गतं नलिन्या यया न दृष्टं तुहिनांशु बिम्बम्।
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव दृष्टा विनिद्रा नलिनं न येन॥

हे सखि! राधा के विना कृष्ण सुखद नहीं हैं, न तो राधा भी कृष्ण के बिना सुखद है। उन दोनों को छोड़कर अपर रसदा नहीं है। रात्रि के विना चन्द्र शोभित नहीं है। चन्द्र के विना रात्री भी मनोहर नहीं होती है। दोनों को छोड़कर कुमुदिनी मुदिता हो जाती है।

नलिनी का जन्म निरर्थक ही हुआ, जिसने चन्द्र विम्ब को देखा ही नहीं, चन्द्र की उत्पत्ति भी विफला रही, उसने भी विकसित नलिनी को नहीं देखा है। यहाँ परस्पर विनोक्ति भङ्गि से अतिशय चमत् कार होता है। विना शब्द का अप्रयोग मे भी विना भाव की विवक्षा से विनोक्ति ही होगी। इस प्रकार सहोक्ति भी 'सह' शब्द प्रयोगाभाव से सहार्थ की विवक्षा से होगी।

व्याजोक्ति अलङ्कार—

छल पूर्वक प्रकाशित वस्तु को गोपन करने से व्याजोक्ति अलङ्कार होता है। उदाहरण—

"मद्रसि सौरभ लोभात् पतितान् मृगनाभि भाविते मधुपान्।
निवारयन्त्या विदितं न मया स्वरक्षतं तवाम्बुदितम्॥"

यहाँ पर कान्त कृत नखक्षत समूह को गोपन किया गया है, भृङ्ग से भीत होकर उसको अपसारण करने के निमित्त हस्त चालन से नखक्षत हुआ है। यह कहा गया है।

यथा वा—फुल्लोज्ज्वलवनमालं कामयते का न माधवं प्रमदा।
हरये स्पृहयसि राधे नहि नहि वैरिणि वसन्ताय॥

यथा वा—प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः कान्तः किं नहि नूपुरः।३६।
समासोक्ति र्यदि श्लिष्टैः परोक्तिः स्याद्विशेषणैः॥

अन्य दृष्टान्त—फुल्लोज्ज्वल वनमालं कामयते का न माधवं प्रमदा।
हरये स्पृहयसि राधे नहि नहि वैरिणि वसन्ताय॥

ऐसी कौन प्रमदा है—जो फुल्ल उज्ज्वल वनमाला शोभित माधव को नहीं चाहती है? राधे तुम भी हृदय में माधव को चाहती हो, वैरिणि! मैं वसन्त नहीं चाहती हूँ, किन्तु वसन्त ऋतु को चाहती हूँ। अथवा—

प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः कान्तः किं नहि नूपुरः"

मेरे चरण में संलग्न मुखरित कान्त है, नहीं -नूपुर है।

समासोक्ति अलङ्कार—

"समासोक्ति र्यदि श्लिष्टैः परोक्तिः स्याद् विशेषणैः॥

यदि श्लिष्ट विशेषण के द्वारा अपर का कथन हो तो समासोक्ति अलङ्कार होता है।

"कलाभि" श्लोक के चतुर्थचरण में उक्त है—"सोऽयं कृष्ण-विजयतेतराम्" यहाँ श्लिष्ट विशेषण के द्वारा चन्द्र का भी बोध होता है। अथवा समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः।
व्यवहार समारोपः प्रकृतेनास्य वस्तुनः॥"

सादृश्य मूलक सर्व उक्ति साम्य प्राप्त विनोक्ति का वर्णन करके समासोक्ति अलङ्कार का निरूपण करते हैं, लक्षण में 'य' इस अर्थ में 'यत्र' अव्यय का प्रयोग हुआ है, उसके सहित प्रस्तुत पदार्थ का वर्णन करते समय कार्य्य--कर्म, लिङ्ग—पुरुषोत्तम, लक्ष्मी, ब्रह्मात्मक भेदक धर्म से अप्रस्तुत पदार्थ का व्यवहार का आचरणारोप से

कलाभिरित्यादौ सोऽयं कृष्णो विजयतेतरामिति तुर्य्ये पादे प्रत्युदाहरणं॥ अत्र श्लिष्टविशेषणमाहिम्ना चन्द्रस्यापि प्रतीतिः॥३७॥

समासोक्ति अलङ्कार होता है।

कार्य्यका वर्णन प्राप्त होने पर अप्रस्तुत व्यवहार का समारोप का उदाहरण—

"गोपीगणादुत्तम वंशजाताद् वंश्ये-धन्यालघुवंशजापि।
कृष्णाधरं दुर्लभगन्धमासां पिबत्यलं यास्त्यनिवारितान्यैः॥"

उत्तम वंश से उत्पन्न गोपी गणों से लघुकुलोत्पन्न होकर भी वंशी ही धन्या है, गोपी के पक्ष में कृष्णाधर लाभ दुर्लभ है, और वंशी तो यथेष्ट उसका पान करती रहती है, बाधक कोई नहीं है, यहाँ अधर पान कार्य्य के द्वारा वंशी में नायिका व्यवहार का आरोप हुआ है। लिङ्ग सामान्य का दृष्टान्त—

"विलम्य राधया कामं भजतेऽन्यां हरिः स्त्रियम्।
पद्मिनीं रमयित्वादौ सन्ध्यां मिलति भास्करः॥"

श्रीहरि—राधा में यथेष्ट रमण करने के पश्चात् अन्य स्त्री में गमन करते हैं, भास्कर पद्मिनी में रमण करने के पश्चात् सन्ध्या में अनुरक्त होता है। यहाँ पुरुषोत्तम लिङ्ग साम्य से सूर्य्य पद्मिनी आदि का नायक नायिका व्यवहार होता है।

विशेषण पद का श्लेष से उभयार्थ होता है, विशेषण पद का श्लेष न होने से उस का वाच्य प्रस्तुत अप्रस्तुत उभय पर होने पर औपम्य गर्भ से, विशेषण के मध्य में सादृश्य बोधक होने पर समासोक्ति त्रिविध हैं, अपर के मत में तीन प्रकार हैं, निज मत में दो प्रकार हैं, एकश्लेष युक्त, अपर अश्लेष युक्त। प्रथम का उदाहरण--

स्पृष्ट्वा करेण रविणा प्रकटातिरागां
राधे विलोकय गलत्तिमिरावृत्तिं ताम्।

ऐन्द्रीं विलोक्य हरितं कलुषान्तरोऽयं
प्राचेतसीं श्रयति हन्त ! दिशं हिमांशुः ।।"

देखो राधे ! अनुराग युक्त तिमिरावरण रहित ऐन्द्रीदिक् को सूर्य्य के कर से युक्त देखकर हिमांशु ने दुःखित होकर पश्चिम दिक् का आश्रय ग्रहण कर लिया । यहाँ एकदेश रूपण से भी समासोक्ति ही है, एकदेश विवर्त्ति रूपक ही है । यहाँ तिमिर अंशुक का रूप्य रूपक भाव है, और दोनों का आवरक स्वरूप में सादृश्य है, अपर का सान्निध्य की अपेक्षा नहीं है । अतः समासोक्ति का विघटन नहीं होता है, यहाँ रूप्य रूपक का सादृश्य अस्फुट है । यहाँ एक देशान्तर रूपण के बिना असङ्गत होगा, अतः शब्दोपात्त होने पर भी एकदेश रूपण के निमित्त अपेक्षा ही है, अतः एकदेश विवर्त्ति रूपक ही होगा । उदाहरण—

"संग्रामान्तः पुरे चक्रं स्वपादौ कुर्वतो हरेः ।
संमुख्यपि हठाज्जाता रिपुसेना पराङ्मुखी ।।"

श्रीहरि का चक्र चरण--संग्राम एवं अन्तः पुर में गमन करने से सम्मुख होकर भी रिपुसेना पराङ्मुखी हुई । यहाँ संभोगान्तः पुर का सादृश्य अस्फुट है । कहीं पर अनेक स्फुट सादृश्य का रूपण शाब्द है, एवं एकदेश का रूपण आर्थ है.— वहाँ एकदेश विवर्त्ति रूपक ही है । रूपक की प्रतीति व्यापक होने से समासोक्ति लुप्त होगी, यदि ऐसा हो कि— संग्राम--अन्तः पुर में सुख सञ्चार के कारण सादृश्य स्फुट ही है, वैसा कहना सत्य है । किन्तु वाक्यार्थ पर्य्यालोचन सापेक्ष है, निरपेक्ष्य नहीं है । मुख चन्द्रादि का मनोहरत्व स्वाभाविक है, किन्तु संग्राम--अन्तः पुर में गमन के तुल्य स्वतः सुख कर नहीं है ।

साधारण का दृष्टान्त--' निसर्ग सौरभोद्भ्रान्त भृङ्गसङ्गीत शालिनी ।
राधे ! पश्योदिते सूर्य्ये स्मरोजनि सरोजिनी ।।"

हे राधे ! देखो ! सूर्य्य उदित होने पर निसर्ग सौरभ से विभोर भृङ्ग सङ्गीत शालिनी सरोजिनी हँस गई । यहाँ निसर्गादि विशेषण

सहोक्तिः पदमेकं चेत् सहार्थाद्वाचकंद्वयोः ।।

के साम्य से सरोजिनी में नायिका को प्रतीति होने पर स्मेर धर्म्म स्त्री मात्रगामी है, उसका आरोप में भी वह कारण है, उस के बिना साम्य मात्र से नायिका व्यवहार की प्रतीति नहीं हो सकती है ।

उपमा रूपक— सङ्कर गर्भ हेतु औपम्य गर्भत्व त्रिविध हैं ।

औपम्य गर्भत्वका— उदाहरण —

"दन्त प्रभा–पुष्पचिता पाणिपल्लव शालिनी ।
केशपाशालिवृन्देन सुवेशा भाति राधिका ।।"

दन्त प्रभा पुष्पचिता पाणि पल्लव शालिनी केश बन्धन के द्वारा सुवेश युक्ताराधिका है । यहाँ सुवेशत्व के कारण प्रथम दन्त प्रभा पुष्प के तुल्य उपमागर्भ समास है, अनन्तर दन्त प्रभा सदृश पुष्प युक्त है, इस प्रकार भिन्न समास के समान विशेषण से राधिका में लता का आरोप है । रूपक गर्भ होने से 'लावण्य मधु से पूर्ण' यह उदाहरण होगा ।

सङ्कर गर्भ का उदाहरण—"दन्त प्रभेत्यादौ सुवेशेत्यस्यस्थाने परीतेति पाठे अत्र उपमारूपक साधका भावात् सङ्कर समाश्रयेण समासान्तरं पूर्ववत् । समासान्तर महिम्नालताप्रतीतिः ।।"

दन्त प्रभा इत्यादि में सुवेश के स्थान में परीत इस पाठ से सङ्कर गर्भ का उदाहरण होगा । यहाँ रूपक की सामग्री न होने से सङ्कर के सहित समासान्तर पूर्ववत् होगा, समासान्तर की महिमा से लताकी प्रतीति होगी, इस प्रकार अन्यत्र रूपकमें अप्रकृत आत्मरूप सन्निवेश से प्रकृत का आच्छादन होता है ।

यहाँ निजावस्था का आरोपण से अनाच्छादित स्वरूप ही पूर्ववस्था से विशेष है, अतएव यहाँ व्यवहार का समारोप हैं, स्वरूप का समारोप नहीं है । उपमाध्वनि श्लेष में विशेष का भी साम्य है, यहाँ विशेषण मात्र का है । अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत का साम्य है, यहाँ तो प्रस्तुत का साम्य है, यह भेद है ।

उदा०—स्मितेन सह कान्तस्य तस्या विकसितं मनः ॥
यथा वा—सहाधरतलेनास्या यौवने रागवान् प्रियः ॥३८॥

सहोक्ति अलङ्कार—

"सहोक्तिः पदमेकं चेत् सहार्थाद् वाचकं द्वयोः ॥

एक पद सहार्थ हेतु दो का वाचक होने से सहार्थ अलङ्कार होता है।

उदाहरण—"स्मितेन सह कान्तस्य तस्या विकसितं मनः"

कान्त का ईषद् हास्य के सहित कान्ता का मन विकसित हुआ।

"सहाधरदलेनास्या यौवने रागवान् प्रियः ॥

प्रिया का यौवन समय में अधर रक्तिमा होने के साथ हो प्रिय अनुरक्त हुआ था।

अथवा। सा सहोक्ति मूलभूतातिशयोक्ति र्यदा भवेत् ॥"

सहार्थक शब्द की उक्ति से सहोक्ति अलङ्कार होता है। यथा कथञ्चित् सादृश्य मूला सहोक्ति का निरूपण करते हैं। जब अतिशयोक्ति भेद में अभेदाध्यवसायमूला, कार्य्य कारण का विपर्य्यय रूपा अतिशयोक्ति का मूलभूता प्रयोजिका हो, तब सहार्थस्य--सह, साकं—प्रभृति सहार्थ वाचक शब्द कवल से एक पद र्थ, दो पदार्थ वाचक—अन्वयी हो--तो वह सहोक्ति अलङ्कार होगा। अर्थात् अतिशयोक्ति मूलक होकर सहार्थक शब्द प्रयोज्य एक पदार्थ का अनेक पदार्थ में अन्वय होने से सहोक्ति अलङ्कार होगा। लक्षण में अतिशयोक्ति पद प्रदान का तात्पर्य्य यह है कि—अतिशयोक्ति पद से अतिशयोक्ति सामान्य का ग्रहण नहीं होगा। विशेषातिशयोक्ति का ग्रहण होगा। अर्थात् भेद में अभेदाध्यवसाय घटित अतिशयोक्ति अभेदाध्यवसाय मूला है। श्लेष भित्ति का श्लेष प्रयुक्त भेद मूला, अन्यथा अश्लेष प्रयुक्त भेद मूला भी होगी। उदाहरण—

अद्भुतात्यन्तशौर्य्यादिख्याति रत्युक्ति रुच्यते ॥

'सहाधरेण राधाया यौवने रागभाक् प्रियः"

यहाँ 'राग' पद में श्लेष है। यौवन काल में राधा का अधर रञ्जित होने के साथ प्रिय भी अनुरक्त हुआ था। राग पद श्लिष्ट है, अधर दल का राग—लौहित्य, प्रिय का राग प्रेम है, लौहित्य-प्रेम-भिन्न होने पर भी अभेदाध्यवसाय से अतिशयोक्ति है, उस से-सहार्थ से एक राग युक्त पदार्थ का अधर दल—प्रिय के साथ अन्वय से श्लेष प्रयुक्त अध्यवसाय रूपा अतिशयोक्ति मूला सहोक्ति है।

"कृष्णस्य राधा प्रणयोच्च सम्पदा माधुर्य्य सम्पत्सह वर्द्धतेऽनिशम्। तयोश्च कुञ्जेषु विलास सन्ततिः सार्द्धं सखीनां सुखसञ्चयाप्तिभिः ॥"

अत्र माधुर्य्य वर्द्धनादेः सम्बन्धि भेदादेव भेदो, न श्लेषः।
कृष्णस्य कुञ्जे विजिहीर्षयासमं समागतासा वृषभार्लिभिः।
इयञ्च मालयापि भवति"

राधा प्रणयोच्च सम्पद के सहित कृष्ण का माधुर्य्य सम्पत् निरन्तर बढ़ती रहती है। सखियों की सुख सम्पत्ति के सहित दोनों के सहित दोनों के कुञ्ज विलास प्रवाह भी बढ़ते रहते हैं। यहाँ माधुर्य्य वर्द्धनादि का सम्बन्धि भेद से भेद है, श्लेष नहीं है। कुञ्ज में श्रीकृष्ण की क्रीड़ा करने की इच्छा से श्रीवृषभानुजा सखियों के सहित आगई। यह अलङ्कार मालारूपा भी होता है। दृष्टान्त—

"त्वद् वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तं गत इत्यादि ॥"

तुम्हारे वाम्य के सहित सूर्य्य भी अस्तगत हुआ। 'लक्षण के सहित राम वन गमन किये थे' इस वाक्य में अतिशयोक्ति न होने से सहोक्ति अलङ्कार नहीं हुआ है।

अत्युक्ति अलङ्कार—

"अद्भुतात्यन्तशौर्य्यादि ख्यातिरत्युक्तिरुच्यते"

अद्भुत अत्यन्त शौर्य्यादि का कथन से अत्युक्ति अलङ्कार

यथा—राजन्सप्ताप्यकूपारा स्त्वत्प्रतापाग्निशोषिताः ।
त्वदरिराजवनिता-वाष्पपूरेण पूरिताः ।।

यथा वा--यच्छन्तमर्थान् विविधान् जनेभ्यः श्रुत्वाम्बरीषं नृपसार्वभौमं ।
कल्पद्रुमा याचकभावभाज स्तस्य प्रतीहारतटीं भजन्ते ।३९।

डिम्भादि निजचेष्टोक्तिः स्वभावोक्ति रुदीर्य्यते ।।

यथा-मुखपुटनिहित-कराङ्गुलिरुच्चलचरणः स देवकीसूनुः ।
क्षणरुदितस्मितकुशलो व्रजकुलमुदमतितरामतनोत् ।३०।

होता है। उदाहरण—

"राजन् सप्ताप्यकूपारास्त्वत् प्रतापाग्निशोषिताः"

हे राजन् ! आपके प्रतापाग्नि से सप्त समुद्र शुष्क हो गये हैं।

"त्वदरिराजवनिता वाष्पपूरेण पूरिताः"

आपकी अरिराज वनिता गण वाष्पपूरसे पूर्ण हो गई हैं।

अथवा—

"यच्छन्तमर्थान् विविधान् जनेभ्यः श्रुत्वाम्बरीषं नृपसार्वभौमम् ।
कल्पद्रुमा याचक भावभाजस्तस्य प्रतीहारतटीं भजन्ते ।।"

नृप सार्वभौम अम्बरीष--व्यक्ति मात्र को विविध वस्तु प्रदान कर रहे हैं, सुनकर कल्पतरुवृन्द प्रार्थना परायण होकर प्रतीहारी के समीप में उपस्थित होते रहते हैं।

स्वभावोक्ति अलङ्कार—

"डिम्भादि निजचेष्टोक्तिः स्वभावोक्ति रुदीर्य्यते ।।

बालक प्रभृति के चेष्टादि का वर्णन को स्वभावोक्ति कहते हैं।
उदाहरण—"मुखपुटनिहित कराङ्गुलिरुच्चलचरणः स देवकीसूनुः ।
क्षणरुदितस्मित कुशलो व्रजकुलमुदमतितरामतनोत् ।।

निरुक्ति श्चेद्भवेन्नाम्नां योगादन्यार्थकल्पना ।।

यथा—स्वज्ञाति-शत्रोः शक्रस्य संछिन्दन्पविमुल्वणम् ।
दधाराह्वयमन्वर्थमेष गोवर्द्धनो गिरिः ।।४१।।

प्रकृतस्योपमानेन यो निगीर्णस्य निश्चयः ।
अन्यदेवेति यद्वस्तु तदेव परिकीर्त्यते ।।
यत्तु चेद्यदिशब्दाभ्यामसम्भाव्यार्थकल्पनं ।
पौर्वोक्तिव्यत्ययो यश्च वर्ण्यते हेतुकार्य्ययोः ।

मुख पुट में निहित कराङ्गुलि चरण चारण परायण होकर क्षण क्षण में रोदन एवं ईषत् हास्य में निपुण देवकी नन्दन व्रजजन गण के अतिशय आनन्द विस्तार किये थे।

निरुक्ति अलङ्कार—

"निरुक्ति श्चेद्भवेन्नाम्नां योगादन्यार्थकल्पना ।।

नाम समूह के योग से अन्यार्थ कल्पना यदि हो तो निरुक्ति अलङ्कार होता है। उदाहरण—

"स्वज्ञाति-शत्रोः शक्रस्य संछिन्दन्पविमुल्वणम् ।
दधाराह्वयमन्वर्थमेष गोवर्द्धनो गिरिः ।।४१।।

निज ज्ञाति शत्रु इन्द्र के भीषण अग्नि उद्गीरण परायण वज्र से परित्राण करने के निमित्त गोवर्द्धन कारी गोवर्द्धन पर्वत निज नाम को सार्थक किया था।

अतिशयोक्ति अलङ्कार—

"प्रकृतस्योपमानेन यो निगीर्णस्य निश्चयः ।
अन्यदेवेति यद्वस्तु तदेव परिकीर्त्यते ।।
यत्तु चेद्यदिशब्दाभ्यामसम्भाव्यार्थकल्पनं ।
पौर्वोक्तिव्यत्ययो यश्च वर्ण्यते हेतुकार्य्ययोः ।।

योगेऽप्ययोगोऽयोगेऽपि योगो यः परिकल्प्यते ॥
षड् विधातिशयोक्तिः सा कविभिः समुदीर्य्यते ॥
अन्तर्निगीर्णस्योपमेयस्य यदुपमानेन निरूपणं सातिशयोक्तिः प्रथमा ।

यथा—जाता लता हि शैले जातु लतायां न जायते शैलः ।
संप्रति तद्विपरीतं कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥

योगेऽप्ययोगोऽयोगेऽपि योगो यः परिकल्प्यते ।
षड् विधातिशयोक्तिः सा कविभिः समुदीर्य्यते ॥

निगीर्ण उपमेय का उपमान के द्वारा होने से अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है । वह वस्तु अन्य ही है—इस प्रकार वर्णन से अतिशयोक्ति होती है । (१) 'यदि चेत्' शब्दोंके द्वारा सम्भाव्य अर्थ की कल्पना हो तो अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है । (३)

हेतु को शीघ्रकारिता कथन हेतु यदि कार्य्य का प्रथम वर्णन होता है, अथवा कार्य्य कारण का युगपत् वर्णन होता है, तो अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है । (४) सम्बन्ध होने पर भी यदि असम्बन्ध की कल्पना होती है तो (५) अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है । असम्बन्ध होने पर भी यदि सम्बन्ध की कल्पना हो तो (६) अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है ।
प्रथम अतिशयोक्ति का उदाहरण—

जाता लता हि शैले जातु लतायां न जायते शैलः ।
सम्प्रति तद्विपरीत कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥"

पर्वत में लता उत्पन्न होती है, किन्तु कभी भी लता में पर्वत उत्पन्न नहीं होता है । किन्तु सम्प्रति उस नियम का विपरीत दृष्ट होता है । कारण--कनकलता में पर्वतद्वय उत्पन्न हुये हैं ।

यहाँ लता के द्वारा नायिका का निश्चय किया गया है, एवं

अत्र लतया नायिका निश्चीयते, गिरिभ्यां तु स्तनयुग्मम् ।
यच्च तदेव वस्त्विदमन्यदेवेति वर्ण्यते सा द्वितीया ॥
यथा—अन्यदेवाङ्गलावण्यमन्याः सौरभसम्पदः ।
अस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम् ॥
यदिचेच्छब्दाभ्यामसम्भाव्यार्थस्य यत्कल्पनं सा तृतीया ॥
यथा—प्रवालमुक्ताद्युतिपुष्पजालश्चलन् यदि स्यात्कनकाक्तमूलः ।
तापिञ्छशाखी शिखिपिच्छमौले स्तदास्य दास्याय दधीत चेतः ॥

गिरि द्वय के द्वारा स्तन युगल का निश्चय किया गया है । द्वितीया अतिशयोक्ति—

वस्तु वही है, किन्तु उसका वर्णन अन्य रूप से करने से द्वितीया अतिशयोक्ति होती है । उदाहरण—

"अन्यदेवाङ्ग लावण्यमन्याः सौरभ सम्पदः ।
अस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम् ॥"

अन्य प्रकार ही अङ्ग लावण्य है, और सौरभ सम्पद भी अन्य प्रकार है, इस कमल नयनी का सरसत्व अलौकिक है ।

तृतीया अतिशयोक्ति--यदि शब्द के द्वारा असम्भाव्य अर्थ की कल्पना हो तो तृतीया अतिशयोक्ति होती है । उदाहरण—

"प्रवालमुक्ताद्युति पुष्पजालश्चलन् यदि स्यात् कनकाक्तमूलः ।
तापिञ्छशाखी शिखिपिच्छमौले स्तदास्य दास्याय दधीत चेतः ॥

तमाल वृक्ष यदि प्रवाल मुक्ता द्युति सम्पन्न पुष्प समन्वित हो और वह कनक युक्त मूलदेश के हो, और जङ्गम हो-तब उस तापिञ्छ शाखो शिखिपुच्छ विभूषित मस्तक श्रीकृष्ण के दास्य में चित निमज्जित होता ।

हेतोः शीघ्रकारितां वक्तुं कार्य्यस्य यत्प्राग्वचनं यौगपद्यं वा सा चतुर्थी ॥ क्रमेण यथा—

(१) जातः ससृतिसर्पस्य पूर्वं दर्प-परिक्षयः ।
श्रीरङ्गिसङ्गिनां सङ्गः संप्रति प्रतिपद्यते ॥

(२) भजन्ति युगपद्वीर ज्यां रिपूंश्च तवेषवः ।

सम्बन्धेऽपि सति यदसम्बन्धकल्पनं सा पञ्चमी ।
यथा — अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयो र्जृम्भमाणयोः ।
अवकाशो न पर्य्याप्त स्तव बाहुलतान्तरे ॥

चतुर्थी अतिशयोक्ति—उदाहरण—

हेतु की शीघ्र कारिता को प्रकाश करने के निमित्त कार्य्य का पूर्व कथन अथवा युगपद् कथन हो तो चतुर्थी अतिशयोक्ति होती है। क्रमशः उदाहरण--(१) "जातः संसृति सर्पस्य पूर्वं दर्प परिक्षयः ।
श्रीरङ्गिसङ्गिनां सङ्गः सम्प्रति प्रतिपद्यते ॥

संसर्पण परायण सर्प का पूर्व दर्प क्षीण हुआ, किन्तु लक्ष्मीवान् जनों के संसर्ग प्राप्त का सङ्ग का परिचय सम्प्रति मिलता है।

(२) भजन्ति युगपद्वीर ज्यां रिपूंश्च तवेषवः ।

हे वीर ! तुम्हारे शर समूह-युगपद् धनुर्गुण का एवं रिपु समूह का भजन करते हैं।

पञ्चमी अतिशयोक्ति—

सम्बन्ध होने पर भी जो असम्बन्ध की कल्पना की जाती है, वह पञ्चम प्रकार की अतिशयोक्ति है। उदाहरण—

"अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयो र्जृम्भमाणयोः ।
अवकाशो न पर्य्याप्त स्तव बाहुलतान्तरे ॥

हे अनवद्याङ्गि ! तुम्हारे विकसित स्तन द्वय का स्थान तुम्हारी बाहुलता के मध्य में पर्य्याप्त नहीं है।

अत्र बाहुमध्ये स्तनावकाश-योगेऽपि तदयोगो वर्णितः ॥
असम्बन्धे सत्यपि यत्सम्बन्धकल्पनं सा षष्ठी ॥ यथा—

दिनैः कतिपयै र्यायात्क्षयं मेरु र्दिनान्तकृत् ।
इत्यभ्येति मुदं कोकी दातरि त्वयि भूपते ॥

अत्र चक्रवाक्या दिवसावसानकारिसुमेरुविनाश-सम्भावन-प्रयुक्तानन्दा सम्बधेऽपि तत्सम्बन्धो वर्णितः ॥४२॥

यहाँ बाहु द्वय के मध्यस्थल में स्तनद्वय का स्थान पर्य्याप्त होने पर भी जो अपर्य्याप्त कल्पना की गई है, उस से पञ्चमी अतिशयोक्ति हुई है।

षष्ठी अतिशयोक्ति— असम्बन्ध होने पर भी जो सम्बन्ध की कल्पना की जाती है--उसे षष्ठी अतिशयोक्ति अलङ्कार कहते हैं।
उदाहरण—"दिनैः कतिपयै र्यायात्क्षयं मेरु र्दिनान्तकृत् ।
इत्यभ्येति मुदं कोकी दातरि त्वयि भूपते ॥

दिवावसान कारी मेरु का क्षय कतिपय समय के अनन्तर होगा, हे नृप ! आप के सदृश दाता के अवस्थान से ऐसा सम्भव होगा, यह जानकर चक्र वाकी आनन्दित हो रही है।

यहाँ दिवसावसानकारि सुमेरु विनाश सम्भावना निबन्धन आनन्द का असम्बन्ध होने पर भी उसका सम्बन्ध वर्णित हुआ है।
अथवा—"सिद्धत्वे ऽध्यवसायस्यातिशयोक्ति निगद्यते ॥"

विषय निगरणेनाभेद प्रतिपत्तिर्विषयिणोऽध्यवसायः । तस्य चोत्प्रेक्षायां विषयिणो ऽनिश्चितत्वेन निर्देशात् साध्यत्वम् । इह तु निश्चितत्वेनैव प्रतीति रिति सिद्धत्वम् । विषय निगरश्चोत्प्रेक्षायां विषयस्याधः करण मात्रेण । इह तु 'मुखं द्वितीयचन्द्रः' इत्यादौ यदाहुः'

विषयस्यानुपादाने ऽप्युपादानेऽपि सूरयः ।
अधः करण मात्रेण निगीर्णत्वं प्रतीयते ॥"

भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धेऽसम्बन्धस्तद् विपर्ययौ ।
पौर्वापर्य्यात्यय कार्य्य हेत्वोः सा पञ्चधा ततः ॥

तद् विपर्य्ययौ—अभेद भेदः, असम्बन्धे सम्बन्धः । सा अतिशयोक्तिः ।

सम्भावना रूप उत्प्रेक्षा का वर्णन के पश्चात् किञ्चित् विभिन्न तत् सम्भावना रूपा अतिशयोक्ति का निरूपण करते है। यथार्थ वस्तु में अयथार्थ वस्तु रूप से,—निरुक्त सम्भावना सिद्ध होने पर, निश्चय रूपसे परिणत होने पर, अतिशयोक्ति नामक अलङ्कार होता है। अतएव अतिशय से,—सम्भवातिरेक से,—योग्यतातिक्रमसेवा, उक्ति अतिशयोक्ति है।

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्त्तिनी ।
असावतिशयोक्तिः स्यादलङ्कारोत्तमा यथा ॥

अग्नि पुराणे च—लोक सीमातिवृत्तस्य वस्तु धर्मस्य कीर्त्तनम् ।
भवेदतिशयो नाम सम्भवोऽसम्भवो द्विधा । एतेन यथार्थस्य अयथार्थ रूपेण निश्चयरूपा सम्भावना--अतिशयोक्तिरिति लक्षणं पर्य्यवसितम् ।'

अध्यवसाय का यह है—जिस में अध्यवसाय होता है, वह विषय है, यथार्थ वस्तु है। उसका अधः करण से--निगरण से--यथा कथञ्चित् अप्रधान करने से, जो वस्तु अध्यवसान प्राप्त है, वह विषय है, वह यथार्थ वस्तु है, उसकी अभेद प्रतिपत्ति--अभेद सम्भावना अध्यवसाय है, निगीर्ण रूप से यथार्थ वस्तु के सहित अयथार्थ वस्तु का अभेद ज्ञान ही अध्यवसाय है। उत्प्रेक्षा के सहित अतिशयोक्ति का भेद है, उत्प्रेक्षा में विषयी का निर्देश आनिश्चित रूप से होने से अयथार्थ का स्थापन, युक्त्यादि के द्वारा होता है, अतः साध्यत्व है, अतिशयोक्ति में विषयी की प्रतीति निश्चय रूपसे होती है, अतः लक्षण में "सिद्धत्वे" कहा गया है। उत्प्रेक्षा में विषय निगीरण है। यथार्थ पदार्थ का अधः करण मात्रेण—अर्थात् केवल अप्रधानी करने से ही होता है। "मुखं द्वितीयश्चन्द्रः" उत्प्रेक्षा जिस प्रकार होती है, उस प्रकार अतिशयोक्ति भी होती है। समान विषय होने से अतिशयोक्ति लक्षण की अतिव्याप्ति उत्प्रेक्षा में होगी, अतः 'सिद्धत्वे' विशेषण देना आवश्यक है।

ज्ञातव्य यह है—कि-घट में पल्लवारोपण से घटका अधः करण होता है। "ऊरुकुरङ्गकदृशः" यहाँ ऊरुरूप यथार्थ वस्तु में सम्भावयामि यदयं स्मरस्य विजय स्तम्भः' मुख द्वितीयश्चन्द्रः" यहाँ मुखरूप यथार्थ वस्तु में "मन्ये यदयं द्वितीयश्चन्द्र एव" उस प्रकार है। विषय का अधः करण ही विषय निगीरण है। प्राचीन पण्डित गण--विषय यथार्थ पदार्थ का अनुपाद न--अनुल्लेख से भी उपादान-का उल्लेख से भी, अधः करण मात्रेण केवल विषय का अप्रधान करने से, निगीर्णत्व, विषय का निगीरण कहते हैं। सम्प्रति अतिशयोक्ति का प्रकार वर्णन करते हैं। भेद में भी अभेद, अभेद में भेद, सम्बन्ध, में असम्बन्ध, में सम्बन्ध, कार्य्य कारण का पौर्वापर्य्य विपर्य्यय, ये पञ्चविध भेद हैं। भेद में अभेद, यथार्थ से अयथार्थ भिन्न होने पर भी उससे अभिन्न रूपमें सम्भावना, यथार्थ का सम्बन्ध में भी असम्बन्ध की सम्भावना, उभयका विपर्य्यय--वैपरीत्यद्वय, यथार्थ, अयथार्थ में अभेद होने पर भी भेद की सम्भावना, यथार्थ का असम्बन्ध होने से भी सम्बन्ध सम्भावना, तथा कार्य्य हेतु कार्य्य कारण का पौर्वापर्य्यात्यय, पूर्व वर्त्तित्व, परवर्त्तित्व, रूप वपरीत्य, यहाँ आसत्ति क्रम से ही अन्वय हैं। संख्याक्रम से नहीं, कारण का पूर्व वर्त्तित्व होना नियत है। यहाँ यदि कारण से कार्य्य का पूर्व वर्त्तित्व की सम्भावना, समकाल वर्त्तित्व की सम्भावना हो तो वह अतिशयोक्ति पञ्चविध होगी।

विपर्य्यय—अभेद में भेद असम्बन्ध में सम्बन्ध सा -अतिशयोक्ति भेद में अभेद का दृष्टान्त—

"इन्दुर्नीलाम्बुज युगमपि तिलपुष्पं सबन्धुकम् ।
यस्यां कनकलतायां सेयं कृष्णाङ्गना चित्रम् ॥"

इन्दु, नीलाम्बुज युगल, बन्धुक पुष्प के सहित तिल पुष्प

(नासिका) जिस कनक लता में है, वह कृष्णाङ्गना विचित्र है। यहाँ श्रीराधिका के मुख नेत्रादि का इन्दु नीलाम्बुजादि के सहित अभेद अध्यवसाय है।

अथवा—माधव तव राधायां विधुरुदयी पूर्णतां लभताम्।
नीलाम्बुरुह युगलं तस्मिन् फुल्लं तदेतदाश्चर्य्यम्॥

हे माधव ! तुम्हारी राधा में उदित विधु पूर्णता को प्राप्त होते हैं। आश्चर्य्य तो यह है—उसमें नीलकमल युगल विकसित हैं। अथवा—विश्लेष दुःखादिव बद्ध मौनम्" यहाँ चेतन गत मौनत्व पृथक् है, अचेतन गत मौनत्व पृथक् है। उभय में भेद होने पर भी अभेद है, एवं 'सहाधर दलेनास्या यौवने 'रागभाक् प्रियः" यहाँ अधर का राग—लौहित्य है, प्रियका प्रेम-दोनों का अभेद है।

अभेद में भेद का दृष्टान्त—

"अन्यैव सौन्दर्य्य समृद्धिरस्या भङ्गी तथान्या वपुषोदृशश्च।
स्वान्तस्य चोल्लास भरस्तथान्यो राधैवसान्या प्रियसङ्गमेन॥"

राधा की सौन्दर्य्य समृद्धि अन्य है, वपु नयनों की भङ्गी भी पृथक् है। अन्तर का उल्लासाधिक्य भी पृथक् है, प्रिय सङ्गम से राधा ही उल्लसित होती है। अन्य कोई नहीं, सम्बन्ध में असम्बन्ध का दृष्टान्त—

अमृतं चकोर विलसितमपि शशिनि कापि नान्वभावीति।
राधामुखमनुभवता हरिणा तस्मिन् तत्तदेव मन्येत॥

चन्द्र में चकोर विलसित अमृत होने पर भी किसी को अनुभव नहीं होता है, श्रीकृष्ण, राधामुख का अनुभव कर सबका अनुभव करते हैं। यहाँ चन्द्र में उसका सम्बन्ध होने पर भी असम्बन्ध है। असम्बन्ध में सम्बन्ध का उदाहरण—

"यदिस्यान्मण्डलेसक्तमिन्दोरिन्दीवर द्वयम्।
तदोपमीयते राधावदने चारुलोचनम्।

यदि इन्दु मण्डल में इन्दीवर युगल संलग्न हो तो राधा वदन

हेतौ सति फलाव्यक्ति विशेषोक्ति रुदीर्य्यते॥

में चारु लोचन की उपमा हो सकती है। यहाँ यदि शब्द प्रयोग से कल्पित रक्तत्व सम्बन्ध से अध्यवसाय की प्रतीति होती है, अतः इन्दु मण्डल में यथार्थ इन्दीवरासक्त का यथार्थ के सहित सक्तत्वरूप से अध्यवसाय होने पर लक्षण की सङ्गति हुई। कार्य्य कारण का पौर्वापर्य्य दो प्रकार से है। कारणके पहले कार्य्य की स्थिति से, कार्य्य कारण की स्थिति-समान कालीन होने से। क्रमपूर्वक उदाहरण—

कृष्णाङ्ग सङ्गाय वराङ्गनानां वितन्वती भूरिविकार वृन्दम्।
पूर्वं मनस्युत् सुकता विरासीद्विवेश पश्चान्मुरली निनादः।

श्रीकृष्ण मिलन हेतु गोपाङ्गनाओं में अतिशय विकार समूह की उत्पत्ति होती है, पहले मन में उत्सुकता आविर्भूत होती है, पश्चात् उस से मुरली ध्वनि प्रविष्ट होती है।

"द्वयमेतत् समं जातं रासलीलार्थिनो हरेः।
मुरली वादनं गोपी वृन्दस्याकर्षणं पुरः॥"

रासाभिलाषी श्रीकृष्ण के कार्य्य द्वय युगपत् हुये थे। मुरली वादन एवं निज समीप में गोपीवृन्द का आकर्षण। इस विषय में कतिपय व्यक्ति कहते हैं—

मुख नेत्रादि गतो लौकिकातिशयो लौकिकत्वेनाध्यवसीयते।

मुख नेत्रादि गत लौकिक अतिशय अलौकिक रूपमें अध्यवसाय नहीं करते हैं। मुख नेत्रादि का चन्द्रादि के द्वारा अध्यवसाय से अन्यैव सौन्दर्य्यादि अन्यरूप से अध्यवसाय होते हैं। अन्य देव के स्थान में 'अन्यैव' इव शब्द के योग से अध्यवसाय का असाध्यत्व है। अतः उत्प्रेक्षा होती है, कृष्णाङ्ग सङ्गाय' यहाँ मुरली निनाद प्रथम होने से भी पश्चात् हुआ है। ऐसा अध्यवसाय है। अतएव यहाँ भी इव शब्द के योग से उत्प्रेक्षा है।

विशेषोक्ति अलङ्कार-"हेतौ सति फलाव्यक्ति विशेषोक्ति रुदीर्य्यते।

यथा—अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरःसरः।

अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥

यथा वा—शयाना हस्ताब्जे मृदुलमुपधायाधरदलं

हरेर्मन्दान्दोलालकततिरभि राधीजिततनुः ॥

दधाना साशंकाङ्गुलिभिरभिसंवाहनविधिम्

तथाप्येषा वंशी न हि भजति निद्रालवमपि ॥४३॥

हेतु विद्यमान होने पर भी फल की अभिव्यक्ति न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरःसरः।

अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥"

दिवसावसान प्राय है, अनुरागवती सन्ध्या का भी समागम हुआ है, किन्तु दैवगति किस प्रकार विचित्र है, प्रियका समागम तथापि नहीं हुआ। अपर उदाहरण—

शयाना हस्ताब्जे मृदुलमुपधायाधरदलम्।

हरेर्मन्दान्दोलालालकततिरभि राधीजिततनुः

दधाना सा शङ्काङ्गुलिभिरभि सम्बाहनविधिः

तथाप्येषा वंशी न हि भजति निद्रालवमपि ॥

श्रीहरि के मृदुल अधर दल को उपाधान कर करकमल युगल में शयित वंशी है, एवं शनैः शनैः श्रीहरि की अङ्गुलियों के द्वारा संवाहित भी हो रही है, इस प्रकार होने पर भी वंशी लेशमात्र भी निद्रा को प्राप्त नहीं करती है।

अथवा,—सति हेतोः फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।

हेतु प्रकरण प्राप्त एवं विभावना। का विपरीत होने से विभावन के अनन्तर हेतु घटित विशेषोक्ति अलङ्कार का निरूपण करते हैं। हेतु—प्रसिद्ध कारण, रहने पर भी फलाभाव, कार्य्यानुत्पत्ति होने से

युक्तिः कथञ्चिद्दुक्तं चेत्क्रियया विनिगृह्यते ॥

विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।

कारण प्रसिद्ध होते हुऐ भी कार्य्यानुत्पत्ति प्रतीति--विशेषोक्ति अलङ्कार है। यह द्विविध हैं। अर्थात् उक्त निमित्त एवं अनुक्त निमित्त से द्विविध होती हैं। उक्त निमित्त का उदाहरण—

"धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।

प्रभवोऽप्यप्रमत्ता स्ते ये कृष्णचरणाश्रिताः ॥"

श्रीकृष्ण चरणाश्रित व्यक्ति गण--धनी होकर भी मत्तता विहीन युवक होकर भी अचञ्चल, प्रभुता सम्पन्न होकर भी प्रमाद शून्य होते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण चरणाश्रितत्व को निमित्त कहा गया है।

अनुक्त निमित्त का उदाहरण—

उदेतीन्दुः पूर्णो वहति पवन श्चन्दनवनात्

कुहुकण्ठः कण्ठात् कलमविकलं निर्गमयति।

प्रियालीनां मूर्द्ध्नः शपथ रचना दन्ततृणता

पदोपान्ते कृष्णस्तदपि तवमानो न विरतः ॥"

पूर्ण चन्द्र का उदय, चन्दन वन का अनिल, कोकिल की काकली, अविकल रूप से निर्गत हो रही है, प्रिय सखियों की शपथ रचना, दशन में तृण लेकर चरणों में श्रीकृष्ण निपतित है, तो भी तेरामान विरत नहीं हुआ। तुम आग्रही हो, यह आग्रही हो, इससे निमित्त को नहीं कहा गया है। अचिन्त्य निमित्तत्व ही अनुक्त है, इस भेद का कथन नहीं हुआ है। उदाहरण—

"तृणीकृत त्यक्त कुलीन नारी धर्मापि दूरोज्झित भर्तृ कापि।

सती च याभिप्सित सच्चरित्रा राधाविधात्रा रचि चित्रशीला ॥

तृणवत् कुलनारी का धर्म्म को परित्याग जिन्होंने किया है, दूर से ही भर्त्तृ संसर्ग को भी परित्याग किया है, सतीगण भी जिन के चरित्र की आकाङ्क्षा करती रहती हैं, उन राधा की रचना

यथा—दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच
 स्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतः स्तस्यातिमात्रं बधूः।
कर्णालम्बित-पद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चूपुटे
 व्रीडार्त्ता विदधाति दाडिमफल—व्याजेन वाग्बन्धनम् ॥
व्याजोक्तौ वाचा गुप्तिरिह तु क्रियेति भेदः ॥४४॥

विधाता ने चित्रशिला रूप से की है। यहाँ चित्र शिलात्व ही अचिन्त्य है, यहाँ कार्य्याभाव को—कार्य्य विरुद्ध सद्भाव से दिखाया गया है। विभावना में भी कारणाभाव—कारण विरुद्ध सद्भाव मूल से होता है। इस प्रकार "यः कौमार हरः" यहाँ उत्कण्ठा कारण विरुद्ध का सद्भाव हेतु विशेषोक्ति है। अतएव यहाँ विभावना विशेषोक्ति के द्वारा सङ्कीर्ण उभय का असंकीर्ण उदाहरण अन्वेषणीय है। युक्ति अलङ्कार 'युक्तिः कथञ्चिद् व्यक्तं चेत् क्रियया विनिगृह्यते' किसी प्रकार प्रकाशित वृत्तान्त को क्रिया के द्वारा गोपन करने से युक्ति अलङ्कार होता है। उदाहरण—

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच
स्तत् प्रात गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्यातिमात्रं बधूः।
कर्णालम्बित पद्मराग शकलं विन्यस्य चञ्चूपुटे
व्रीडार्त्ता विदधाति दाडिमफल व्याजेन वाग् बन्धनम् ॥

निशीथ में दम्पति का कथोपकथन गृह शुकने सुन लिया था, प्रत्यूष में गुरुजन के समीप में उसने उस विवरण को कहने लगा, बन्धु ने उस वृत्तान्त को सुनकर कर्ण भूषण में स्थित पद्मराग दाड़िम फल के छल से उस का कथन को रुद्ध किया। व्याजोक्ति में वाणी के द्वारा गोपन होता है, और यहाँ क्रिया के द्वारा गोपन होता है, व्याजोक्ति के सहित युक्ति अलङ्कार का यह भेद है।

लोकोक्ति अलङ्कार—"लोकवादानुकारस्तु लोकोक्ति र्भण्यते बुधैः"

लोक प्रसिद्ध कथन के द्वारा चमत्कार पूर्ण वर्णन को लोकोक्ति

लोकवादानुकारस्तु लोकोक्ति र्भण्यते बुधैः ॥
यथा—नामैव ते वरद वाञ्छितदातृभावं
 व्याख्यास्यतो न वहसे वरदानमुद्रां।
विश्वप्रसिद्धतरविप्रकुल-प्रसूते
 र्यज्ञोपवीतवहनं हि न खल्वपेक्ष्यम् ॥
अत्रोत्तरार्द्धे लोकप्रवादानुकरणं ॥४५॥
लोकोक्तिरेव छेकोक्ति र्भवेदर्थान्तरान्विता ॥
लोकोक्तेरर्थान्तरगर्भत्वेच्छेकोक्तिः ॥ यथा—
अहिरेवहि जानीयादहिपादान्नचापरः।

अलङ्कार कहते हैं। उदाहरण—

"नामैव ते वरद वाञ्छित दातृभावं
 व्याख्यास्यतो न वहसे वरदान मुद्राम्।
विश्वप्रसिद्धतरविप्रकुल--प्रसूते
 र्यज्ञोपवीतवहनं हि न खल्वपेक्ष्यम् ॥"

लोक प्रवादसिद्ध हि तुम वाञ्छित प्रद हो, किन्तु सक्रिय रूपसे वाञ्छित वस्तु प्रद होने की आवश्यकता नहीं है।

कारण,—विश्व विख्यात विप्रकुल में जन्मग्रहण करने के पश्चात् यज्ञोपवीत धारण करने की किसी प्रकार आवश्यकता नहीं है। इस श्लोकके उत्तरार्द्धमें लोक प्रवाद का अनुकरण किया गया है।

लोकोक्तिरेव छेकोक्ति र्भवेदर्थान्तरान्विता ॥

छेकोक्ति अलङ्कार—जिस लोकोक्ति से अन्य अर्थ प्रकाशित होता है, उसको छेकोक्ति अलङ्कार कहते हैं।

दृष्टान्त—अहिरेवहि जानीयादहिपादान्नचापरः।

किस वन में, आज कृष्ण खेलना चाहते हैं? सखा को एक

कस्मिन्वने कृष्णोऽद्य क्रीडितुमिच्छतीत्येकस्मिन् सख्यौ कश्चित्सखायं पृच्छति सति कृष्णान्तिकस्थं सुबलमुद्दिश्य स तमाह अहिरेव हीति लोकप्रवादानुकारोऽयं। स चास्य स्मारकव्यापारमप्ययमेव वेत्तीत्य र्थान्तरगर्भं करोति ।४७।

अहेतौ हेतुताकॢप्तिः प्रौढोक्ति रिति कीर्त्यते ।
कार्य्यातिशयायाहेतो तद्धेतुत्व-कल्पनं प्रौढोक्तिः ।।

यथा—कल्पतरुकामदोग्ध्री चिन्तामणि धनदशङ्खानां ।
रचितो रजोभरपय स्तेजः श्वासान्तरां वरैरेषः ।।

अत्र राज्ञोऽतिदातृत्वं वर्ण्यते तच्च कल्पवृक्षादि पञ्च-निर्मितत्वं हेतु र्नतु वस्तुत स्तदस्ति ।।४८।।

सखा पूछने पर कृष्ण के समीप वर्ती सुबल को देखकर उसने कहा, "अहिरेव हीति" यह लोक प्रवाद का अनुवाद है—इस से स्मरण कराने का कार्य्य होता है, एवं यह ही जानता है, इस प्रकार अर्थान्तर को प्रकाश करता है ।

प्रौढ़ोक्ति अलङ्कार—"अहेतौहेतुताकॢप्तिः प्रौढ़ोक्तिरिति कीर्त्यते ।।

अहेतु में हेतुता की कल्पना करना प्रौढ़ोक्ति अलङ्कार है । अर्थात् कार्य्यातिशयता हेतु में उसको हेतु मानना प्रौढ़ोक्ति है ।

उदाहरण—"कल्पतरुकामदोग्ध्री चिन्तामणि धनदशङ्खानाम् ।
रचितो रजोभरपय स्तेजः श्वासान्तरां वरैरेषः ।।

कल्पतरु, कामधेनु, चिन्तामणि, कुवेर, एवं शङ्ख, प्रभृति नामतः बाता हैं, कारण नृप दान कर्म्म के द्वारा उन सबको म्लान किये हैं, यहाँ नृपति का अतिशय दान शीलत्व वर्णन किया गया है । किन्तु कल्पवृक्षादि पञ्चनिर्मितत्व हेतु जो कथित है, वह वस्तुत नहीं है ।

मिथ्याध्यवसिति मिथ्यासिद्ध्यै मिथ्यार्थनिर्मितिः ।।

यथा—गोविन्दचरणद्वन्द्वं मायावादविशारदः ।
लभते सच्चिदानन्दं खपुष्पस्तवकं वहन् ।

न चेयं तृतीयातिशयोक्तिः चेद्यदि-शब्दाभ्यामसम्भविनोऽर्थस्या कल्पनात् ।।४९।।

फलोत्पत्ति विना हेतुं यत्र स्यात् सा विभावना ।।

यथा—अपीतक्षीवकादम्बमसंमृष्टामलाम्बरम् ।
अप्रक्षालितसूक्ष्माम्बु जगदासीन्मनोहरम् ।।

मिथ्याध्यवसिति अलङ्कार—

मिथ्याध्यवसिति मिथ्यासिद्ध्यै मिथ्यार्थनिर्मितिः ।।

दृष्टान्त—"गोविन्द चरण द्वन्द्व मायावादविशारदः ।
लभते सच्चिदानन्दं खपुष्पस्तवक वहन् ।।

मायावाद विशारद व्यक्ति-आकाश कुसुमस्तवक वहन कर सच्चिदानन्द स्वरूप गोविन्द चरण द्वन्द्व को प्राप्त करता है । यह तृतीयातिशयोक्ति नहीं है, कारण-चेत्-यदि शब्द के द्वारा असम्भव अर्थ की कल्पना नहीं की गई है ।

विभावना अलङ्कार—

"फलोत्पत्ति विना हेतुं यत्र स्यात् सा विभावना ।।

कारण के विना ही फलोत्पत्ति होने से विभावना अलङ्कार होता है ।

दृष्टान्त—अपीतक्षीवकादम्बमसंमृष्टामलाम्बरम् ।
अप्रक्षालितसूक्ष्माम्बु जगदासीन्मनोहरम् ।।

पान व्यतीत मत्त कलहंस सशुद्धि व्यतीत स्वच्छ वसन प्रक्षालन व्यतीत ही सूक्ष्म सलिल जगत् मनोहर था । यहाँ पर निखिल हेतु प्रतिबन्ध न होने पर भी कार्य्य विरूप का कथन होने पर भी

अत्र हेतोरकात्स्न्र्यं प्रतिबन्ध्यत्वे कार्य्यविरूपत्वेनाख्यायां च केचिद्विभावनां मन्यन्ते ॥ क्रमेणोदा०—

उद्यानमारुतोद्भूत चूतचम्पक-रेणवः ।
उदस्रयन्ति पान्थानामस्पृशन्तोऽपि लोचने ॥

अत्र स्पर्शक्रिया-वैकल्यमेव हेतो रकृत्स्नता ।

चित्रं तपति राजेन्द्र प्रताप-तपन स्तव ।
अनातपत्रमुत्सृज्य सातपत्रं द्विषद्गणम् ॥

अत्र तापहेतोः प्रतापतपनस्यातपत्रं प्रतिबन्धि ।

उदिते कुमारसूर्य्ये कुवलयमुल्लसति भाति नक्षत्रं ।
मुकुलीभवन्ति चित्रं परराजकुमारपाणिपद्मानि ॥

कतिपय व्यक्ति विभावना अलङ्कार मानते हैं। क्रमशः उदाहरण—

उद्यानमारुतोद्भूत चूतचम्पक--रेणवः ।
उदस्रयन्ति पान्थानामस्पृशन्तोऽपि लोचने ॥

उद्यान मारुत से उत्पन्न आम्र मुकुल के एवं चम्पक रेणुसमूह-पथिक के लोचन को स्पर्श न करके भी नयन जल निर्गत कराते हैं। यहाँपर स्पर्श क्रिया वैकल्य से ही हेतु की अकृत्स्नता हुई है।

"चित्रं तपति राजेन्द्र प्रताप-तपन स्तव ।
अनातपत्रमुत्सृज्य सातपत्रं द्विषद्गणम् ॥

हे राजेन्द्र ! आप का प्रतापतपन आतपत्र विहीन को परित्याग कर आतपत्र युक्त शत्रुवर्ग को तापित करता है, यह अतीव आश्चर्य्य कर है। तापके कारण स्वरूप प्रताप तपनका प्रतिबन्धक आतपत्र है।

"उदिते कुमार सूर्य्ये कुवलयमुल्लसति भाति नक्षत्रम् ।
मुकुलीभवन्ति चित्रं परराजकुमार पाणि पद्मानि ।,

कुमार सूर्य्य उदित होने पर कुवलय उल्लसित होता है, एवं

अत्र कुवलयोल्लासादेः कार्य्यस्य सूर्य्योदयो नानुरूपो हेतुः । उभयत्र विरोधाभासेन सङ्कीर्णेयम् ।

अम्बुजमम्बुनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुजादम्बु ।
मुरभिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान् महानदी जाता ॥

नक्षत्र प्रकाशित हो रहा है, किन्तु आश्चर्य्य है कि राज कुमार के पाणि पद्म समूह मुकुलित होते हैं।

यहाँ कुवलय उल्लास प्रभृति कार्य्य के प्रति सूर्य्योदय अनुरूप हेतु नहीं है। उभयत्र विरोधाभास हेतु यह सङ्कीर्ण है।

"अम्बुजमम्बुनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुजादम्बु ।
मुरभिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान् महानदी जाता ॥

अम्बु में अम्बुज उत्पन्न होता है, किन्तु कभी भी अम्बुज से अम्बु उत्पन्न नहीं होता है, श्रीकृष्ण में इस का विपरीत दृष्ट होता है, श्रीकृष्ण चरण कमल से महानदी उत्पन्न हुई है। यहाँ नदी का कारण रूप में प्रसिद्ध अम्भोज नहीं है।

अथवा—"विभावना विना हेतुं कार्य्योत्पत्ति र्यदुच्यते ।
उक्तानुक्त निमित्तत्वाद् द्विधासा परिकीर्त्तिता ॥

हेतु—प्रसिद्ध कारण के विना कार्य्योत्पत्ति होने से विभावना अलङ्कार होता है। अर्थात् प्रसिद्ध कारण का अभाव से कार्य्योत्पत्ति प्रतीति विभावना है। कारण के अभाव से कार्य्योत्पत्ति कैसे होगी ? कारण के विना कार्य्योदय होगा, कहा गया है, वह अन्य कारण की अपेक्षा से ही होगा। कारणान्तर कथन कहीं है, कहीं नहीं है।

उदाहरण—"अनायास कृशं मध्यमशङ्क तरले दृशौ ।
श्रीराधाया वयस्यङ्गमभूषण मनोहरम् ॥

श्रीराधा का अङ्ग-यौवन कालमें मध्यदेश प्रयत्न के विना ही कृश है, शङ्का हीन होने पर भी नयन द्वय चञ्चल है। अलङ्कार रहित होकर भी मनोहर है, कृशत्व के प्रति आयास, तरलत्व के

अत्र नद्याः कारणत्वेन ख्यातं नाम्भोजम् ।।५०।।

उपायेन विना सिद्धि र्वाञ्छितार्थस्य यद्भवेत् ।
उपायाद्यदुपायार्थादुपेयस्योपलम्भनम् ।
यच्चेष्टाभ्यधिकार्थस्य सिद्धि स्तत् स्यात् प्रहर्षणं ।।

क्रमेणोदा०—मुनेर्दुर्वाससः कोपात्त्रातुमस्मानलं हरिः ।
इति चिन्तयतो राज्ञस्तत्रासीत्स्वयमेव सः ।।

फलोपायसाधकाद्यत्नादांतरालिकोपायसिद्धिमनपेक्ष्य

प्रति शङ्का—एवं मनोहर के प्रति भूषण प्रसिद्ध कारण है, उस के अभाव से कार्य्योत्पत्ति विभावना है । यहाँ वयोरूप निमित्त का कथन है, यहाँ "अभूषण मनोहारि राधिका वपुर्बभौ" इस पाठ से अनुक्त कारण का उदाहरण है । प्रहर्षण अलङ्कार—

"उपायेन विना सिद्धि र्वाञ्छितार्थस्य यद् भवेत् ।
उपायाद्युपायार्थादुपेयस्योपलम्भनम् ।
यच्चेष्टाभ्यधिकार्थस्य सिद्धि स्तत् स्यात् प्रहर्षणम् ।।"

वाञ्छितार्थ की सिद्धि यदि उपाय के बिना ही होती है, उपाय से—तथा उपायार्थ से चेष्टा से भी अधिक उपाय की सिद्धि यदि होती है तो प्रहर्षण अलङ्कार होता है । उदाहरण—

मुनेर्दुर्वाससः कोपात्त्रातुमस्मानलं हरिः ।
इति चिन्तयतो राज्ञस्तत्रासीत्स्वयमेव सः ।।

श्रीहरि दुर्वासा के कोप से हम सब की रक्षा करने में सक्षम हैं, राजा युधिष्ठिर इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे, इस समय श्रीहरि स्वयं हि वहाँ उपस्थित दिखाई दिये थे ।

फलोपाय साधकादि यत्न न करने पर भी आन्तरालिक उपाय सिद्धि की अपेक्षा न करके यदि फल की साक्षात् प्राप्ति हो तो भी प्रहर्षण अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

फलस्य चेत् साक्षात् प्राप्तिः स्यात्तदपि प्रहर्षणम् । यथा—

अञ्जनाय खनन्मूलमद्याह निधि-दर्शिते ।
अधस्तादलभं तस्य सर्वदुःख हरं निधिम् ।।

अत्राञ्जन-निरपेक्षो निधिलाभः ।। यथावा—

ध्रुवाय स्मृतये विष्णो र्यशो वेश्मनि कीर्त्तयन् ।
बहुलाश्वो नृप-स्तस्मिं स्तमपश्यत्समागतं ।।

अत्र स्मृतिनिरपेक्ष साक्षात्कारः ।।

स्थानाभिकामस्तपसि स्थितोहं त्वां दृष्टवान् साधु मुनीन्द्र-गुह्यम् ।
काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं स्वामिन्कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ।।५१।।

अञ्जनाय खनन्मूलमद्याहं निधि दर्शिते ।
अधस्तादलभं तस्य सर्व दुःख हरं निधिम् ।।"

अञ्जन हेतु आज मैंने मूल खनन किया, किन्तु उसके अधस्तल में सर्वदुःख हर निधि को प्राप्त किया । यहाँ अञ्जन निरपेक्ष निधि लाभ हुआ ।

अथवा—"ध्रुवाय स्मृतये विष्णो र्यशो वेश्मनि कीर्त्तयन् ।
बहुलाश्वो नृप स्तस्मिंस्तमपश्यत् समागतः ।।"

भवन में बहुलाश्व नृपति ध्रुवस्मृति हेतु विष्णु यश कीर्त्तन कर रहे थे, इस समय समागत विष्णु को वहाँ उन्होंने देखा । यहाँ स्मृति निरपेक्ष साक्षात्कार है ।

"स्थानाभिकामस्तपसि स्थितोऽहं त्वां दृष्टवान् साधु मुनीन्द्र गुह्यम् ।
काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे ।।"

उत्तम स्थान लाभ हेतु मैं तपस्या रत हूँ, साधु मुनीन्द्र दुर्लभ

यत्साक्षात्करणं भूतभाविनां भाविकं तु तत् ॥

यथा—आसीत्कञ्चुलिकात्रेति पश्याम्यस्याः कुचद्वयम् ।

कलयामि नितम्बं च रणिष्यन्मणिमेखलम् ॥

अत्र पूर्वार्द्धे भूतस्य साक्षात्कारः, परार्द्धे तु भाविनः ॥५२॥

उदात्त मतिसंपत्ति–वर्णनं कविभिः स्मृतं ॥

यथा-प्रतिबिम्बितनिकुरम्बैः करम्बिते मुकुर-मन्दिरे कृष्णम् ।

चतुरोऽपि चतुर्मुखभूर्मुनि रतिकष्टादबोधिष्ट ॥५३॥

आप का मैंने दर्शन भी किया, काच अन्वेषण करते करते मानों दिव्य रत्न पाया, स्वामिन् ! मैं कृतार्थ हूँ, वर नहीं चाहता हूँ ।

भाविक अलङ्कार—

"यत् साक्षात् करणं भूत भाविनां भाविकं तु तत् ॥

अतीत एवं भविष्यत् वस्तुका साक्षात् कार जिसका साक्षात्कार से होता है, उसको भाविक अलङ्कार कहते हैं ।

दृष्टान्त— 'आसीत् कञ्चुलिकात्रेति पश्याम्यस्याः कुचद्वयम् ।

कलयामि नितम्ब ञ्च रणिष्यन् मणिमेखलम् ॥"

यहाँ कञ्चुलिका रही इस प्रकार विचार करते करते कुचद्वय को देखा, एवं मणि मेखला रणित नितम्ब को भी देखा ।

यहाँ पूर्वार्द्ध में अतीत का साक्षात् कार हुआ, एवं उत्तरार्द्ध में भावी का साक्षात् कार हुआ ।

उदात्त अलङ्कार—

"उदात्तमति सम्पत्ति वर्णनं कविभिः स्मृतम् ॥

अतिशय सम्पत्ति का वर्णन को कविगण उदात्त अलङ्कार कहते हैं ।

दृष्टान्त–"प्रतिबिम्बित निकुरम्बैः करम्बिते मुकुर मन्दिरे कृष्णम् ।

चतुरोऽपि चतुर्मुख भू र्मुनि रतिकष्टादबोधिष्ट ।

प्रतिविम्ब युक्त मुकुर मन्दिर में कृष्ण को देखकर

परिवृत्तिः स्मृतार्थानां यः स्याद्विनिमयो मिथः ।

यथा—कृष्णादंकस्रजं नीत्वा मणिमालां न्यधात् प्रिया ।

गृहीत्वा स तु साचीक्षामदाद्वक्षोजपीड़नम् ॥५४॥

विध्याभासो निषेधेऽपि विधिश्चेद्व्यक्तमीक्ष्यते ॥

यथा—गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः ।

ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान् ॥

मुनि निपुण होने पर भी चतुर्मुख हो गये थे, एवं अति कष्ट से प्रबुद्ध हुये थे ।

परिवृत्ति अलङ्कार—

"परिवृत्तिः स्मृतार्थानां यः स्याद्विनिमयो मिथः ॥

स्मृति गत पदार्थों का परस्पर विनिमय होने से परिवृत्ति अलङ्कार होता है ।

"कृष्णादङ्क स्रजं नीत्वा मणिमालां न्यधात् प्रिया ।

गृहीत्वा स तु साचीक्षा मदाद्वक्षोज पीड़नम् ॥

प्रियाने कृष्ण से अङ्क स्रज को ग्रहण कर मणिमाला प्रदान किया, उन्होंने भी उस को ग्रहण कर वामलोचन से देखकर निविड़ आलिङ्गन किया ।

विध्याभास अलङ्कार—

"विध्याभासो निषेधेऽपि विधिश्चेद् व्यक्तमीक्ष्येत ॥

यहाँ पर निषेध में भी विधि दृष्ट होती है, उसे विध्याभास अलङ्कार कहते हैं । उदाहरण—

"गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः ।

ममापि जन्म तत्रैव भूयाद् यत्र गतो भवान् ॥

कान्त ! तुम यदि जाना चाहते हो तो, जाओ, मङ्गलमय गमन पथ हो, मेरा भी जन्म वहीं हो, जहाँ आप जा रहे हों । यहाँ पर तुम

अत्र त्वयि गतेह न भविष्याम्यतस्त्वं मा न गन्तव्यमिति निषेधे गच्छेति विधि र्दर्शितः ॥५५॥

अविरोधे विरोधित्वं विरोधाभासमुज्जगुः ।
जात्यादीनां तु जात्याद्यः स स्याद्बहुविधो मतः ॥

यथा—दाव स्तव हिमवातः पङ्कजमुष्मप्रवर्षि चन्द्रमुखि ।
मर्मकृतः खलु मधुपा श्चेलं च हलाहलं किमिदम् ॥

अत्र वातपङ्कजमधुपचेल-शब्दा जातिवाचकाः । दावोष्म-कृत-हलाहल शब्दास्तु क्रमाज्जातिगुणक्रियाद्रव्यवाचकाः । तेषामेतेषां च क्रमाद्विरोध वदवभासः । यथा वा—

चले जाने पर मैं यहाँ वर्त्तमान नहीं रहूँगी । अतः तुम न जाओ, इस प्रकार निषेध में विधि दर्शायी गई ।

विरोधाभास अलङ्कार—

"अविरोधे विरोधित्वं विरोधाभासमुज्जगुः ।
जात्यादीनां तु जात्याद्यः स स्याद् बहुविधो मतः ॥"

अविरोध में विरोध को विरोधाभास कहते हैं । जात्यादी के जात्यादि – अनेक प्रकार विरोधाभास होते हैं ।

उदाहरण—"दावस्तव हिमवातः पङ्कज मुष्मप्रवर्षि चन्द्रमुखि ।
मर्मकृतः खलु मधुपा श्चेलं च हलाहलं किमिदम् ॥

हे चन्द्र मुखि ! मलयसमीरण--तुम्हारे पक्ष मे दावानल सदृश है, पङ्कज भी उष्णता वर्षण कारी है, मधुकर निकर तो मर्मन्तुद हैं, वसन भूषण परिच्छद – हलाहल सदृश है, यह कैसा विचित्र है ? यहाँ, वात पङ्कज मधुर चेल शब्द समूह जाति वाचक है । दाव-उष्मकृत हलाहल शब्द समूह – क्रमशः जाति गुण क्रिया द्रव्य वाचक है । उनसबों के सहित इन सबों का क्रमाद् विरोध के सदृश प्रतीय

ध्वनिः पिकानां मधुरोऽप्यभूत्कटुः शीतोपि दाहं तनुते स्म मारुतः ।
सुकोमलोप्यच्युत ! पुष्पकन्दुको भवेद्वियोगे पविरेव सुभ्रुवः ॥

अत्र मधुरशीतकोमल-शब्दा गुणवाचकाः । कटुदाहपवि-शब्दाः क्रमाद् गुणक्रियाद्रव्यवाचकाः, एवमन्येऽपि भेदा बोध्याः ॥

पराभवं फेनिलवक्त्रतां च बन्धं च भीतिं च मृतिं च कृत्वा ।
पवर्गदातापि शिखण्डमौले त्वं शात्रवाणामपवर्गदोऽसि ।

"जहार हृदयं रामा हारिण्यपि विहारिणी" त्येवमादिषु

मानता है । अथवा—

"ध्वनिः पिकानां मधुरोऽप्यभूत्कटुःशीतोऽपि दाहं तनुते स्म मारुतः ।
सुकोमलोप्यच्युत ! पुष्पकन्दुको भवेद्वियोगे पविरेव सुभ्रुवः ॥"

हे अच्युत ! शोभन नयनीओं के पक्ष में तुम्हारे विरह काल में कोकिल के शब्द स्वभावतः मधुर होने पर भी कटु प्रतीत होता था, समीरण शीतल होने से भी दहन करता, सुकोमल पुष्प कन्दुक वज्र तुल्य होता है ।

यहाँ मधुर शीत कोमल शब्द समूह गुण वाचक हैं, कटु दाह पवि शब्द समूह क्रमशः गुण क्रिया द्रव्य वाचक हैं, इस प्रकार अपर भेद समूह को जानना होगा ।

"पराभवं फेनिल वक्त्रतां च बन्धं च भीतिं च मृतिं च कृत्वा ।
पवर्गदातापि शिखण्डमौले त्वं शात्रवाणामपवर्गदोऽसि ॥"

हे शिखण्ड मौले ! तुम शत्रु वर्ग को पराभव प्रदान करते हो, उस के वदन को फेनिल करते हो बन्ध, भीति, मृति भी प्रदान करते हो, इस प्रकार पवर्ग दाता अर्थात् मुक्तिदाता होकर भी शत्रुओं को भक्ति प्रदान करते हो ।

श्लेषविच्छित्तिकः सः ।।५६।।

"जहार हृदयं रामा हारिण्यपि विहारिणी" हारिणी होकर भी विहारिणी रामा हृदय अपहरण कर लिया । यहाँ श्लेष विच्छित्तिक विरोधाभास है । विशेष विवेचन—

"जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः ।
क्रिया च क्रिया द्रव्याभ्यां द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः ।।
विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः ।।

कार्य्य का बन्धत्व की प्रतीति में विभावना होती है, कारण को बाधत्व प्रतीति में विशेषोक्ति होती है, एवं दोनों का पारस्परिक बाध्यत्व की प्रतीति में विरोधाभास अलङ्कार होता है । आपाततः विरुद्धवत् प्रतीयमान होने से विरोधाभास होता है । अतस्मिन् तद् बुद्धि विरुद्ध है, जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य, के सहित परस्पर जाति विरुद्ध के समान प्रतीति होती है । यह चतुर्विध हैं । गुण क्रिया द्रव्य के सहित परस्पर गुण विरुद्ध वत् प्रतीत होता है, यह तीन प्रकार हैं, क्रिया द्रव्य के सहित परस्पर क्रिया विरुद्ध वत् प्रतीति होती है, यह दो प्रकार हैं । द्रव्य के सहित परस्पर द्रव्य विरुद्ध वत् प्रतीत होता है । यह एक विध है । इस रीतिसे विरोधाभास दशविध होते हैं ।

जात्यादि चतुर्विध के सहित जाति का विरोध का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

"हिमकर करणासारोघनसारी गन्धसारोऽपि ।
त्वयि मनसोऽन्तर्वर्त्तिनि माधव दावानलस्तस्याः ।।"

हे माधव ! तुम अदृश्य होने से ज्योत्स्ना तथा चन्दन पङ्क दावानल के समान होते हैं । यहाँ जाति के सहित जातिका विरोध है । विरह में विरोध है, वस्तुत अविरोध है ।

"राधे त्वदङ्ग संस्पर्शे नलिन्य पिन कोमला ।।

हे राधे ! तुम्हारे अङ्ग संस्पर्श से कमल भी कोमल नहीं होता है । यहाँ गुण के सहित जाति का विरोध है ।

"यदङ्ग मासाद्य विधूसराश्च गोधूलयो भूषणता मुपेयुः ।
विभूषणानां मणयश्च जग्मु विधुरत्वं स उपैति कृष्णः ।।

जिन के अङ्ग सङ्ग से गोधूलि प्रभृति भूषण हो जाते हैं । विभूषण रूपमणि समूह मलिनता को प्राप्त करते हैं, वह कृष्ण हैं । यहाँ क्रिया के सहित जाति का विरोध है ।

"यो विष्णुरपि कार्य्यार्थं सिंह स्तस्मै नमो नमः ।।

जो विष्णु होकर भी कार्य्य हेतु सिंह हैं, उनको नमस्कार, यहाँ विष्णुरूप द्रव्य के सहित सिंहत्व जाति का विरोध है ।

"वेणोर्निनादो मधुर--स्वभावात् मर्म व्यथायां कटुरङ्गनानाम् ।।"
"यः शीतलोऽपीन्दु मयूखवृन्दाद् दहत्यमूषां हृदयं वियोगे ।।"

स्वभावत मधुर स्वभाव होने पर भी वेणु निनाद-गोपाङ्गना के पक्ष में मर्म व्यथा का कारण होकर कटु बन जाता है ।

इन्दु किरण शीतल होने पर भी वियोग में गोपाङ्गना के हृदय को जलाता रहता है । यहाँ पूर्वार्द्ध में गुण के सहित गुण का, उत्तरार्द्ध में क्रिया के सहित गुण का विरोध है ।

"कठिन शीलामयत्वाद् गोवर्द्धन एव भूभृतां नाथः ।
कृष्ण करे कुसुममयः कन्दुक इव कोमलो भाति ।।"

पर्वत राज गोवर्धन--शिलामय कठिन होने पर भी कृष्ण कर में शोभित होकर कोमल कन्दुक के समान प्रकाशित है । यहाँ गोवर्धन रूप द्रव्य के सहित गुण का विरोध है ।

"जीवयति च मूर्च्छयति च पीवरयति च सूक्ष्मयत्यपि च ।
हरि मुरलीरव खरली नो जाने किं विजानाति ।।"

जीवित करती, मूर्च्छित करती, स्थूल करती, सूक्ष्म भी करती है, मैंने नहीं जानती, हे मुरली ध्वनि क्या जानती है ? यहाँ क्रिया के सहित क्रिया का विरोध है ।

अनङ्गो यत् कटाक्षेण सङ्गीभवति तत्क्षणात् ।
ईक्षण क्षणदः कृष्णो वोक्षितः क्षणदामुखे ।।"

जिन की कटाक्षसे तत् क्षणात् अनङ्ग पूर्णाङ्ग होता है। प्रदोष में कृष्ण दर्शन आनन्द मय है। यहाँ अनङ्ग रूप द्रव्य के सहित क्रिया का विरोध है।

"त्वत्कीर्त्या सितिमाद्वैतेजाते जगति माधव।
ऐरावतो विलुप्तोऽभूद् यमुनापि च जाह्नवी॥"

हे माधव! तुम्हारी कीर्ति शुभ्रता से जगत् शुभ्र हो गया, और ऐरावत विलुप्त हो गया, तथा यमुना भी विलुप्ता हो गई। यहाँ गङ्ग यमुना द्रव्य का विरोध है। विभावना में कारणाभाव से कार्य्य बाध्य रूपसे प्रतीत होता है। विशेषोक्ति में कार्य्याभाव से कारण बाध्य रूप से प्रतीत होता है। विरोधाभास में परस्पर कार्य्य कारण का एवं उससे भिन्न पदार्थ का बाध्यत्व होता है। अर्थात् विरोध के कारण असम्भव प्रतीत होता है। अतः विभावना विशेषोक्ति के सहित विरोधाभास का भेद है।

"आयाता यमुनाकुञ्जं हारिण्यपि विहारिणी।
नित्य वलय युक्तापि राधा नवलयान्विता॥"

हरियुक्ता विहारिणी राधा यमुना कुञ्ज में आई है। वह वलय युक्ता होकर भी नवलय युक्ता है। हारिणी, हारवती, विहारिणी बिहरण शीला, वलयानि कलाविका भूषणानि, नवे न लयेन गीता वाद्यादीनां मिथः समय रूपेण अन्विता च। इस प्रकार उक्ति वैचित्र्य से विरोध, श्लेष प्रयुक्त होता है।

"विरोधाभास भेद सङ्कलनम्"

प्रकारः	उदाहरणम्
१ जात्यासह जातेर्विरोधः	हिमकर किरणासारः
२ जात्यासह गुणस्य विरोधः	राधे त्वदङ्ग संस्पर्श
३ जात्यासह क्रियाया विरोधः	यदङ्ग मासाद्य
४ जात्यासह द्रव्यस्य विरोधः	जो विष्णुरपि कार्य्यार्थं सिंहः
५ गुणेन सह गुणस्य विरोधः	यः शीतलो
६ गुणेन सह क्रियाया विरोधः	वहत्यमूर्षा हृदयं वियोगे।
७ गुणेन सह द्रव्यस्य विरोधः	कठिन शिलामयत्वाद् गोवर्धनः।
८ क्रियाया सह क्रियाया विरोधः	जीवयति च मूर्च्छयति।
९ क्रियाया सह द्रव्यस्य विरोधः	अनङ्गो यत् कटाक्षेण
१० द्रव्येन समं द्रव्यस्य विरोधः	त्वत् कीर्त्या सितिमाद्वैते।

पर्य्यायोक्तं यदा भंग्या व्यङ्ग्यं वाच्यवदिष्यते।
यथा—गर्वो नैसर्गिकं वासं विजहौ रतिचेतसि।
हृदि दाशरथे धैर्य्यं विलोक्य जनकात्मजाम्॥
अत्र रति निर्गर्वा रामो निर्धैर्य्य इति व्यङ्ग्योऽप्यर्थो भङ्गी-विशेषोपनिबन्धाद्वाच्यवत् प्रकाशते॥५७॥
एकस्य बहुधोल्लेखादुल्लेखः स्यादलंकृति॥

—※※—

पर्य्यायोक्ति अलङ्कार—

"पर्य्यायोक्तं यदा भङ्ग्या व्यङ्ग्य वाच्यवदिष्यते॥

भङ्गी के द्वारा व्यङ्ग्यार्थ को शब्द से उल्लेख करने से पर्य्यायोक्त अलङ्कार होता है। दृष्टान्त—

गर्वो नैसर्गिक वासं विजहौ रतिचेतसि।
हृदि दाशरथे धैर्य्यं विलोक्य जनकात्मजाम्॥

अत्यासक्त स्वाभाविक वसन भूषण परित्याग कारिणी जनकात्मजा को देखकर दाशरथि का गर्वो एवं धैर्य्य चला गया। यहाँ 'रति--निर्गर्वा, रामो निर्धैर्य्य व्यङ्ग्यार्थ होने पर भी भङ्गी विशेष के द्वारा लिखित होने से वाच्यवत् प्रकाशित हुआ है।

उल्लेख अलङ्कार—

"एकस्य बहुधोल्लेखादुल्लेखः स्यादलङ्कृतिः॥

एक वस्तु बहुधा उल्लेख होने से उल्लेख अलङ्कार होता है।

यथा–प्रिय इति गोपबधूभिः शिशुरिति वृद्धैं रधीश इति देवैः
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभि र्देवः ।।५८

प्रकृताप्रकृतानां यद्धर्मैक्यं दीपकं तु तत् ।
एकं क्रियासु बह्वीषु कारकं यदि तन्मतं ।।

तद्दीपकं । क्रमेणोदा०——नदीनां च बधूनां च भुजगानां च सर्वदा ।
प्रेम्णामपि गति र्वक्रा कारणं तत्र नेष्यते ।।

[illegible] नद्यादीनां प्रकृतानां प्रेम्णां च वक्रगति रेको धर्मः ।

उदाहरण--"प्रिय इति गोपबधूभिः शिशुरिति वृद्धैं रधीश इति देवैः ।
नारायण इति भक्तै र्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभि र्देवः ।।

श्रीकृष्ण गोपबधूओं के द्वारा प्रियरूप में वृद्ध गण के पक्ष में शिशु रूप में, देवगण की दृष्टि में अधीश रूप में भक्त गण के पक्ष में नारायण रूप में, एवं योगिवृन्दके पक्ष में ब्रह्मरूप में गृहीत हुए थे।

दीपक अलङ्कार—

"प्रकृताप्रकृतानां यद्धर्मैक्यं दीपकं तु तत् ।
एकं क्रियासु बह्वीषु कारकं यदि तन्मतम् ।।

प्रकृताप्रकृत पदार्थों का एक धर्म्म होने से दीपक अलङ्कार होता है, इस अनेक क्रियाओं में एक कारक भी होता है।

उदाहरण—नदीनाञ्च बधूनाञ्च भुजगानाञ्च सर्वदा ।
प्रेम्णामपि गति र्वक्रा कारण तत्र नेष्यते ।।"

नदी, बधू, भुजङ्ग एवं प्रेम की गति सर्वदा वक्रा होती है। इस में कोई कारण नहीं है। यहाँ प्रकरण अप्राप्त नदी, बधू भुजङ्ग प्रभृति का एवं प्रकरण प्राप्त प्रेम का वक्र गति रूप एक धर्म है।

द्विःशरान्नाभिसंधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान् ।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विनाभिभाषते ।।

अत्रैकं कर्त्तृकारकमभिसंधयादिषु क्रियासु सम्बन्धं पश्चान्नायोगः ।

यथा वा--मोदते चिन्तयत्यन्तर्वेपते वीक्ष्य सा हरिम् ।।५६

मालादीपक माद्यं चेद् यथोर्ध्व मुपकारकं ।। यथा—
त्वयि सङ्गर-सम्प्राप्ते धनुषा सादिताः शराः ।
शरैररिशिर स्तेन भूस्तया त्वं त्वया यशः ।।

अनेक क्रियाओं में एक कारक का दृष्टान्त---

"द्विशरान्नाभिसंधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान् ।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामोद्विर्नाभिभाषते ।।

राम दो वार शरानुसन्धान नहीं करते हैं, आश्रित गण को दो वार की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है, प्रार्थी को दो वार प्रदान नहीं करते हैं, एवं दो वार कथन भी नहीं करते हैं।

यहाँ एक कर्त्तृ कारक राम के सहित अनेक क्रियाओं का योग हुआ है, अनन्तर अयोग भी नहीं है। अन्योदाहरण—

"मोदते चिन्तयत्यन्तर्वेपते वीक्ष्य सा हरिम् ।।

श्रीहरि को देखकर वह आनन्दित होती है, चिन्तित होती है, कम्पित होती है।

मालादीपक अलङ्कार—

"मालादीपकमाद्यचेद् यथोर्द्ध्वमुपकारकम् ।।
त्वयि सङ्गर-सङ्गप्राप्ते धनुषा सादिताः शराः ।
शरैररिशिर स्तेन भूस्तया त्वं त्वया यशः ।।

संग्राम प्राप्त होने पर धनुष में शर समूह नियोजित हुये, उस

यथा वा—भाग्यै र्भूम्या भवान्प्राप्तो भवता महिता मतिः ।
मत्या मुमुक्षुशरणं चरणं मुरवैरिणः ॥

अत्र भूम्यादिभिः पूर्वैपूर्वैरुत्तरोत्तरेषु भवदादिषु प्राप्ति-क्रियाकर्मत्वविधान रूपोपकृतिः ॥६०॥

वर्ण्यानामितरेषां वा धर्म्मैक्यं तुल्ययोगिता ।

प्राकरणिकानामेकधर्माभिसम्बन्ध स्तुल्ययोगिता । अप्राकरणिकानां वा स तथा । क्रमेणोदा०—

आयुः श्रियं यशो धर्म्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

से अरि वर्ग के मस्तक छेदित हुआ, उस से भूतल शोभित हुआ, और तुम्हार यशः विस्तार भी हुआ। अथवा—

"भाग्यै र्भूम्या भवान् प्राप्तो भवता महिता मतिः।
मत्या मुमुक्षुशरणं चरणं मुरवैरिणः ॥

भाग्य वश आपने भूतल में जन्म ग्रहण किया, एवं आपने उत्कृष्ट मति भी प्राप्त की, जिस मति के द्वारा आपने मुरमथन के चरणों की शरण ली है।

यहाँ भूमि प्रभृति के सहित उत्तरोत्तर भवदादि प्राप्ति क्रिया का कर्मत्व विधानरूप उपकृति हुई है।

तुल्ययोगिता अलङ्कार—

"वर्ण्यानामितरेषां वा धर्म्मैक्यं तुल्य योगिता ॥

प्राकरणिक पदार्थों का एक धर्माभि सम्बन्ध तुल्य योगिता है, अथवा अप्राकरणिक पदार्थों का एक धर्माभिसम्बन्ध तुल्य योगिता है।

उदाहरण—"आयुः श्रियं यशो धर्म्म लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

अत्र महदतिक्रम-नाश्यत्वेन प्रकृतीनां पुरुषायुः प्रभृतीनां हन्तिरूपैकक्रियया सम्बन्धः ॥

त्वदङ्ग-मार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते ।
मालती-शशभृल्लेखा-कदलीनां कठोरता ॥

अत्र नायिकासौकुमार्य्य-वर्णने प्रकृतेऽप्रकृतानां मालत्यादीनां कठोरत्वरूपैकगुणसम्बन्धः ॥६१॥

मीलितं त्वतिसादृश्याद् भेद-श्चेन्नैव लभ्यते ।

उदा०—श्यामले कुचकस्तूरी जनै र्नालक्षि वक्षसि ।
अलिकेऽलक्तकं चापि गैरिकाक्ते मधुद्विषः ॥६२॥

आयुः धन सम्पत्ति, यश धर्म्म स्थान, आशिस् एवं समस्त मङ्गल को महदवमानन विनष्ट करता है। यहाँ महदतिक्रम नाश्य रूप में प्रकरण प्राप्त पुरुष के आयुः प्रभृति कर्म्म का हन्ति रूप एक क्रिया के सहित सम्बन्ध है।

"त्वदङ्ग मार्दवे दृष्टे कस्य चित्ते न भासते ।
मालती शशभृल्लेखा कदलीनां कठोरता ॥"

तुम्हारे अङ्ग मार्दव को देखकर किस के चित्त में मालती चन्द्र किरण एवं कदली प्रभृति की कठोरता का अनुभव नहीं होता है।

यहाँ नायिका की सु कोमलता का वर्णन प्रसङ्ग में अप्रासङ्गिक मालती प्रभृति का कठोरत्व रूप गुण का सम्बन्ध है।

मीलित अलङ्कार—

"मीलितं त्वतिसादृश्याद् भेद--श्चेन्नैव लभ्यते ।

अति सादृश्य हेतु भेद की उपलब्धि न होने से मीलित अलङ्कार होता है। दृष्टान्त—

कुतश्चिद् भेदभाने तु प्रोक्तमुन्मीलितं बुधैः ॥

उदा०—राधे तड़िद्गौरि तवैष गण्डयोः कर्णावलम्बी नवकेतकीछदः ।

न सौरभेणापि गतो विभिन्नतां मधुव्रतेनैष विविच्य बोधितः ॥६३॥

सामान्य मतिसादृश्याद् विशेषश्चेन्न लक्ष्यते ॥

"श्यामले कुचकस्तूरी जनै र्नालक्षि वक्षसि ।
अलकेऽलक्तकं चापि गैरिकाक्ते मधुद्विषः ॥६२॥

मुरमथन श्रीकृष्ण के श्यामल वक्षः स्थल में कुच कस्तूरी को जनगण देख नहीं पाये एवं गैरिकाक्त ललाट फलक में अलक्तक को देख नहीं पाये ।

उन्मीलित अलङ्कार—

"कुतश्चिद् भेदभाने तु प्रोक्तमुन्मीलितं बुधैः ॥

कहीं पर भेद प्रतीत होने पर बुधगण उक्त अलङ्कार को उन्मीलित अलङ्कार कहते हैं। दृष्टान्त—

"राधे तड़िद्गौरि तवैष गण्डयोः कर्णावलम्बी नवकेतकीछदः ।
न सौरभेणापि गतो विभिन्नतां मधुव्रतेनैष विविच्य बोधितः ॥६३॥

हे तड़िद् गौरि राधे ! तुम्हारे कर्णभूषण रूप में स्थित नूतन केतकी पत्रका बोध सौरभ से भी गण्डस्थल से पृथक् रूपसे नहीं हुआ। किन्तु भ्रमर ने ही उसको पृथक् करके दिखलाया है ।

सामान्य अलङ्कार—

"सामान्यमति सादृश्याद् विशेषश्चेन्न लक्ष्यते ॥

अति सादृश्य हेतु यदि विशेष की उपलब्धि न हो तो सामान्य अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

उदा०—मल्लिका-मालभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः ।

क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ।६४।

विशेषस्य कुतश्चिच्चद्भानं स स्याद् विशेषकः ॥

उदा०—आसन्पद्माकरे स्त्रीणां पद्मान्यास्यानि संप्रति ।

लक्षितान्युदिते चन्द्रे पद्मान्यास्यानि च स्फुटं ॥६५॥

मीलितोदाहरणे श्यामतातिसाम्याद्वक्षसः पृथक् कस्तूरी न भासते । सामान्योदाहरणे वस्तु-पार्थक्यावभासेऽपि शौक्ल्यातिसाम्याद्व्यावर्त्तक-विशेषो नोपलभ्यते । उन्मीलित विशेषकौ तु तयोः प्रतिद्वन्द्विनावन्वर्थौ ॥

"मल्लिका मालभारिण्यः सर्वाङ्गीणाद्रचन्दनाः ।
क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ॥६४॥

ज्योत्स्नाभिसारिका रमणीवृन्द मल्लिका माल्य विभूषित, सर्वाङ्ग में श्वेत चन्दन लिप्त एवं शुभ्र वसन धृत होने के कारण ज्योत्स्ना से पृथक् रूप में दिखाई नहीं देती है ।

विशेषक अलङ्कार--"विशेषस्य कुतश्चिच्चद्भानं स स्याद् विशेषकः ।

कुतचिद् विशेष का भान होने से विशेषक अलङ्कार होता है ।

दृष्टान्त —"आसन् पद्माकरे स्त्रीणां पद्मान्यास्यानि सम्प्रति ।
लक्षितान्युदिते चन्द्रे पद्मान्यास्यानि च स्फुटम् ॥

पद्माकर में स्त्रीयों के मुख समूह एवं पद्म समूह अभिन्न रूपसे दृष्ट होते थे, किन्तु चन्द्रोदय होने के कारण ही पृथक् रूप से कमल एवं मुख समूह दृष्ट हुये थे ।

मीलित के उदाहरण में श्यामता के अतिसाम्य हेतु वक्ष से पृथक् रूपसे कस्तूरी दिखाई न दी । सामान्योदाहरण में वस्तु का पार्थक्य दृष्ट होने पर भी शुक्लता की अति समता हेतु भेद दृष्ट नहीं होता है । उन्मीलित एवं विशेषक किन्तु प्रतिद्वन्द्वी भेद का ही

यस्मिन् विशेष सामान्यविशेषाः स विकस्वरः ।

प्रस्तुतविशेषसमर्थनाय सामान्यमुपन्यस्यापरितोषात् पुनर्विशेषश्चेदुपन्यस्यते, तदा विकस्वरः ॥

उदा०—अनन्तरत्न-प्रभवस्य तस्य हेम्नश्च सौभाग्यविलोपि-जातम् ।

एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोःकिरणेष्विवाङ्कः ॥

तस्य हिमाचलस्येति प्रकरणात् ॥६६॥

एकस्य गुणदोषाभ्यां यदि स्यातांपरस्य तौ ।

क्रमतो व्युत्क्रमाच्चापि तदोल्लास श्चतुर्विधः ॥

प्रकाशक है ।

विकस्वर अलङ्कार—

"यस्मिन् विशेष सामान्य विशेषाः स विकस्वरः ॥

प्रकरण प्राप्त विशेष के समर्थन हेतु सामान्य का उपन्यास से सन्तुष्ट न होकर पुनर्वार यदि विशेष का उपन्यास होता है तो विकस्वर अलङ्कार होता है ।

दृष्टान्त—"अनन्तरत्न प्रभवस्य तस्य हेम्नश्च सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥'

अनन्तर रत्न प्रभव हिमालय के सौभाग्य से सुवर्ण का सौभाग्य विलुप्त हुआ, कारण-एक दोष—गुण की दृष्टि से विलुप्त हो जाता है, कारण--इन्दु में दोष है—अङ्क, किन्तु किरण का प्राचुर्य्य होने के कारण वह दोष नगण्य होता है। उस प्रकरण हिमाचल की त्रुटिवर्णन में होने पर भी भूरि रत्न प्रभव होने से उक्त दोष नगण्य हुआ। यहाँ प्रकरण है—हिमाचल का उत्कर्ष वर्णन ।

एकस्य गुण दोषाभ्यां यदि स्यातां परस्य तौ ।
क्रमतो व्युत्क्रमाच्चापि तदोल्लास श्चतुर्विधः ॥

तौ गुणदोषौ । तत्रैकस्य गुणेनान्यस्य गुणो यथा—

कुसुमावचयादंस स्तया यत्परिपीड़ितः ।
एकः कृती मदङ्गेषु शेषमङ्गं भुवो भरः ॥

अत्र नायिका-सौन्दर्य्यगुणेन तन्निपीड़ितस्य स्वांसस्य कृतित्व-गुणो निरूपितः । दोषेण दोषो यथा —

लोकानन्दनचन्दन द्रुम सखे नास्मिन् वने स्थीयतां
दुर्वंशैः कठिनै रसारहृदयैराक्रान्तमेतद् वनम् ।
ते ह्यन्योन्य निघर्ष जातदहनज्वालावलीसंकुला
न स्वान्येव कुलानि केवलमिदं सर्वं दहेयुर्वनं ॥

एक के गुण दोष के द्वारा यदि अपर के गुण दोष हों, अथवा व्युत्क्रम से दोष गुण हो तो उल्लास अलङ्कार होता है । यह उल्लास अलङ्कार चतुर्विध होते हैं। एक गुण के द्वारा अन्य का जो गुण होता है, उसका दृष्टान्त—

"कुसुमावचयादंसस्तया यत्परिपीड़ितः ।
एकः कृती मदङ्गेषु शेषमङ्गं भुवो भरः ॥"

कुसुम चयन हेतु तुमने जो मेरा स्कन्ध देश को पीड़ित किया उस से मेरा वह अङ्ग अतीव कृतार्थ हुआ है, अपर अङ्ग किन्तु पृथिवी का भार स्वरूप होकर रहा है ।

यहाँ नायिका का सौन्दर्य्य गुण से उसके द्वारा निपीड़ित निज स्कन्ध का कृतित्वगुण निरूपित हुआ ।

दोष के द्वारा दोष का दृष्टान्त—

"लोकानन्दन चन्दन द्रुम सखे नास्मिन् वने स्थीयताम्
दुर्वंशैः कठिनै रसार हृदयै राक्रान्त मेतद् वनम् ॥
ते ह्यन्योन्य निघर्ष जात दहन ज्वालावली सङ्कुला
न स्वान्येव कुलानि केवलमिदं सर्वं दहेयुर्वनम् ॥"

अत्र वेणूनां परस्परसंघर्षसंजातदहनसंकुलत्व-दोषेण वननाशरूपो दोषो वर्णितः ॥ गुणेन दोषो यथा—

पानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णवातैं दूरीकृता करिवरेण मदान्धबुद्धया ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डन-हानिरेषा भृङ्गा पुर्नविकचपद्मवने चरन्ति ।

अत्र मधुपानामलङ्कारित्वगुणेन गजस्य तत्प्रतिक्षयो दोषत्वेनोक्तः । दोषेण गुणो यथा—

आद्यन्तः परिचुम्बितं प्रतिमुहु र्लीढ़ पुनश्चर्वितम्

हे सखे ! लोकानन्दन चन्दन द्रुम ! इस वन में अवस्थान न करना। कारण - यह वन कठिन असार हृदय दुर्वंश के द्वारा व्याप्त है। वे सब--परस्पर संघर्ष कारी हैं, एवं उससे उत्पन्न दहन ज्वाला से आकुल हैं,इससे केवल निज कुलको ही वे दग्ध करते हैं, यही नहीं अपितु समस्त वन को दग्ध करते हैं ।

यहाँ वेणु का परस्पर संघर्ष सञ्जात दहन सङ्कुलत्व दोष के द्वारा वननाश रूप दोष का कथन हुआ है। गुण के द्वारा दोष का दृष्टान्त—

"पानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णवातैं दूरीकृता करिवरेण मदान्धबुद्धया
तस्यैव गण्डयुगमण्डन हानिरेषा भृङ्गा पुर्नविकचपद्मवने चरन्ति ॥"

मदान्ध बुद्धि करिवर के द्वारा कर्ण पवन से यदि मधुपानार्थी मधुकर विताड़ित होते हैं तो करिवर के गण्डयुग मण्डन की हानि होगी, कारण--भृङ्ग गण तो विकच पद्मवन में विचरण करते रहते हैं। यहाँ मधुप गणके अलङ्कारित्व गुणके द्वारा अलङ्कार उसका प्रतिक्षयको दोष रूप में कहा गया है ।

दोष के द्वारा गुण का उदाहरण

त्यक्तं वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः ।
हे सद्रत्न तवैतदेव कुशलं यद्वानरेणादरा
दन्तः सारविचारणव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना ॥

अत्र वानरस्य चापलदोषेण रत्नस्य चूर्णनाभावो गुणत्वेन वर्णितः । अत्राद्यन्तयोरुल्लासोऽन्वर्थः । मध्ययोस्तु छत्रिन्यायेन लाक्षणिकः ॥६७॥

अवज्ञा गुणदोषाभ्यां न स्यातां चेत्क्रमेण तौ ।

तौ गुणदोषौ । एकस्य गुणदोषाभ्यां परस्य चेद् गुणदोषौ न स्याता तदा अवज्ञालङ्कारः ॥ तत्र गुणेन गुणाभावो यथा-

---

"आद्यन्तः परि चुम्बितं प्रति मुहुर्लीढ़ं पुनश्चर्वितम् ।
त्यक्तं वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः ॥
हे सद्रत्न तवैतदेव कुशलं यद्वानरेणादरा
दन्तः सारविचारणव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना ॥"

हे सद्रत्न ! वानरने तुम्हें आद्यन्त चुम्बन किया, लेहन भी किया एवं चर्वण किया एवं नीरस मानकर भूतल में परित्याग भी कर दिया । तथापि तुम दुःखी मत हो, कारण, इससे तुम्हारा मङ्गल ही हुआ, कारण, अन्तः सार विचारण व्यसनी वानरने तुम्हें प्रस्तर के द्वारा चूर्ण नहीं किया ।

यहाँ वानर का चापल्य दोष से रत्न का जो चूर्ण नहीं हुआ, यही गुण है । उक्त श्लोकके आदि अन्त में उल्लास मुख रूपसे वर्णित है, मध्य पद द्वय में छत्रिन्याय से लक्षणा द्वारा वर्णित है ।

अवज्ञालङ्कार—

"अवज्ञा गुण दोषाभ्यां न स्यातां चेत् क्रमेण तौ ॥

एकके गुण दोषोंके द्वारा अपर को यदि गुण दोष नहीं हो तो अवज्ञालङ्कार होता है । गुण के द्वारा गुणाभाव उदाहरण—

गोविन्दमरविन्दाक्षं जगदानन्ददायिनं ।
अद्याक्षिपति चैद्यश्चेत्तेन किं तस्य लाघवम् ।।
अत्र भगवद्गुणेन चेद्यहृद्दुल्लासरूपगुणाभावः ।।
दोषेण दोषाभावो यथा—
हृष्यत्यभ्युदिते यस्मिन्सुधांशौ निखिलं जगत् ।
ग्लायन्ति यदि पद्मानि का हानि स्तस्य वर्ण्यते ।।
अत्र पद्मग्लानि-दोषेण चन्द्रस्य लधिमदोषाभावः ।।६८।।
दुःखस्याभ्यर्थनानुज्ञा तस्मिन्नेव सुखेक्षणात् ।
यथा—विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।६९।।

"गोविन्दमरविन्दाक्षं जगदानन्ददायिनम् ।
अद्याक्षिपति चैद्यश्चेत्तेन किं तस्य लाघवम् ।।

जगदानन्दद कमलनयन गोविन्द को अद्य चैद्य नृपति यदि तिरस्कार करता है,तो उस से गोविन्द का लाघव क्या होगा ? यहाँ भगवद् गुण के द्वारा चैद्य का हृदयोल्लास रूप गुणका अभाव वर्णित है । दोष के द्वारा दोषाभाव का उदाहरण—

हृष्यत्यभ्युदिते यस्मिन्सुधांशौ निखिलं जगत् ।
ग्लायन्ति यदि पद्मानि का हानि तस्य वर्ण्यते ।।"

सुधांशु उदित होने से निखिल जगत् आनन्दित होते हैं, उस में पद्म यदि आनन्दित नहीं होता तो उस से चन्द्र की लघुता क्या होगी ? यहाँ पद्म ग्लानि दोष के द्वारा चन्द्र का लघिमा दोषाभाव वर्णित है ।

अनुज्ञा अलङ्कार—"दुःखस्याभ्यर्थनानुज्ञा तस्मिन्नेव सुखेक्षणात् ।। उसमें सुख दर्शनसे दुःख को अनुमोदन करने से अनुज्ञालङ्कार

प्रतिषेधस्तु स प्रोक्तो यः ख्याताभावनिर्णयः ।।

अतिप्रसिद्धो निषेधः स्वतोनुपयुक्तो यद्यर्थान्तरं गर्भी करोति, तदा तेनैव चारुत्वांचितोऽयं प्रतिषेधोऽलङ्कारः ।

यथा—न विषेण न शस्त्रेण नाग्निना न च मृत्युना ।
अप्रतिकारपारुष्याः स्त्रीभिरेव स्त्रियः कृताः ।।

अत्र स्त्रीणां विषादिनिर्मितत्वाभावः ख्यात एव निर्णीयमान, स्तासां क्रौर्यं विषादिभ्योऽप्यतिशयितमित्येतमर्थं गर्भीकरोति स चा प्रतीकारेत्यनेन व्यक्तोभवति ।।७०।।

असम्भाव्यतयार्थस्य निष्पत्तिः स्यादसम्भवः ।

दृष्टान्त— विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद् गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।"

हे जगद् गुरो ! वहाँ वहाँ वे सब विपद नित्य होते रहें जिससे अपुनर्भव दर्शन आप का दर्शन लाभ सम्भव होगा ।

प्रतिषेध अलङ्कार—

अतिप्रसिद्ध निषेध का वर्णन अपने में अनुपयुक्त होकर यदि अर्थान्तर प्रकाशक हो तो होता है । दृष्टान्त—

"न विषेण न शस्त्रेण नाग्निना न च मृत्युना ।
अप्रतिकार पारुष्याः स्त्रीभिरेव स्त्रियः कृताः ।।

स्त्रीयों का परुष वचन का प्रतीकार विष, शस्त्र, अग्नि एवं मृत्यु के द्वारा नहीं होता है ।

यहाँ स्त्री गण विष के द्वारा निर्म्मित नहीं होती हैं, यह निर्णीत है, किन्तु स्त्रीयों में भी क्रूरता विष, शस्त्र, अग्नि एवं मृत्यु से भी अधिक है । इस प्रकार अर्थ का बोध होता है, उसका प्रतीकार करना असम्भव है ।

यथा-अयं वारामेको निलय इति रत्नाकर इति

श्रितोऽस्माभि स्तृष्णा-तरलितमनोभि र्जलनिधिः ।

क एवं जानीते निजकरपुटोकोटरगतं

क्षणादेनं ताम्यत्तिमिमकरमापास्यति मुनिः ॥७१॥

असङ्गति र्भवेद्भिन्नदेशत्वे हेतुकार्य्ययोः ॥

यथा-तवाधरौष्ठे क्षतमञ्जनं च मम व्यथार्त्तं मलिनञ्च चेतः।

पीत स्तया ते वदनासवस्त्व मत्तः कुतोनर्थपरंपरेयं ।७२।

असम्भव अलङ्कार—

असम्भाव्यतयार्थस्य निष्पत्तिः स्यादसम्भवः ॥

असम्भव रूपसे प्रतीत अर्थ की निष्पत्ति का वर्णन होने से असम्भव अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

"अयं वारामेको निलय इति रत्नाकर इति

श्रितोऽस्माभि स्तृणा तरलितमनोभि र्जलनिधिः ।

क एवं जानीते निजकरपुटो कटोरगतम्

क्षणादेनं ताम्यत्तिमिमकरमापास्यति मुनिः ॥"

तृष्णा तरलित मति हम सब जल निधि को जल समूह का एकमात्र स्थान जानते हैं । एवं रत्नाकर नाम से भी जानते हैं, किन्तु कौन जानता कि—भीषण तिमिमकर निकर समन्वित इस जलनिधि को निज वितस्ति परिमित उदर के मध्य में क्षणकाल में मुनि स्थापन कर लेगा ।

असङ्गति अलङ्कार—

"असङ्गति र्भवेद्भिन्न देशत्वे हेतुकार्य्ययोः ॥

हेतु एवं कार्य्य की स्थिति भिन्न देश में वर्णित होने से असङ्गति अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

वाञ्छितप्रतिकूलार्थ प्राप्ति स्तु स्याद् विषादनम् ॥ यथा—

राज्याभिषेक च्छविरम्बुजाक्षो रामः प्रभाते सुखयेदयं नः ।

इत्थं सुमित्रा-तनये ब्रुवाणे तमादिशत् पङ्क्तिरथो वनाय ॥७३

हेतोः कार्य्यात्मिनाख्यानं हेतु रित्यभिधीयते ॥ यथा—

अद्रीणां विद्रुतिः साक्षादाकृष्ट व्रजसुभ्रुवाम् ॥

स्थैर्य्यं स्रोतस्वतीनां तु जीयाद्वंशीध्वनि र्विभोः ॥

"तवाधरौष्ठे क्षत मञ्जनं च मम व्यथार्त्तं मलिनञ्च चेतः ।

पीत स्तया ते वदनासवस्त्वं मत्तः कुतोऽनर्थपरम्परेयम् ॥"

तुम्हारे अधर में क्षत एवं अञ्जन दृष्ट होते हैं, मेरा चित्त किन्तु व्यथार्त्त एवं मलिन हो गया है, तुम्हारे वदनासवका पान मैंने किया है, किन्तु मत्तता तुम्हारे में आ गई, यह अनर्थ परम्परा कैसे हुई ?

विषादन अलङ्कार—

"वाञ्छित प्रतिकूलार्थ प्राप्ति स्तु स्याद् विषादनम् ॥

वाञ्छित प्रतिकूलार्थ प्राप्ति का वर्णन होने से विषादन अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

"राज्याभिषेक च्छविरम्बुजाक्षो रामः प्रभाते सुखयेदयं नः ।

इत्थं सुमित्रा-तनये ब्रुवाणे तमादिशत् पङ्क्तिरथो वनाय ॥"

राज्याभिषेक च्छवि कमल नयन राम प्रभात काल में हम सब को सुखी करेंगे—सुमित्रातनय इस प्रकार जब कह रहे थे, उसी समय वन गमन हेतु आदेश हुआ ।

हेतु अलङ्कार— "हेतोः कार्य्यात्मिनाख्यानं हेतु रित्यभिधीयते ॥

कारण को कार्य्य के सहित अभिन्न कथन को हेतु अलङ्कार कहते हैं । उदाहरण—

"अद्रीणां विद्रुतिः साक्षादाकृष्टि र्व्रजसुभ्रुवाम् ।

स्थैर्य्यं स्रोतस्वतीनां तु जीयाद्वंशीध्वनि र्विभोः ॥"

अत्राद्रिविद्रवादौ हेतुरपि वंशीनादस्तदादिरूपतया निबद्धः ॥७४॥

अनुकूलं प्रातिकूल्याद्यदि स्यादनुकूलता ॥ यथा—

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीड़ितः पाणिजै
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणितदनाहताः ।
हस्तेनानमितः कचेऽधरसुधापानेन समोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ॥

यथा वा—कंसः कृष्णहृतप्राणो ममज्जानन्दसम्पदि ॥७५॥

पर्वत समूह का विगलन, व्रजाङ्गना गण का आकर्षण, नदी समूह की रुद्धता कारिणी विभो की वंशी ध्वनि जय युक्त हो। यहाँ अद्रिद्रव प्रभृति के प्रति हेतु होने पर भी वंशी ध्वनि को कार्य्य रूप में निबद्ध किया गया है।

अनुकूल अलङ्कार—"अनुकूलं प्रातिकूल्याद्यदि स्यादनुकूलता"

प्राति कूल्य से यदि अनुकूलता का वर्णन हो तो अनुकूल अलङ्कार कहते हैं। दृष्टान्त—

"दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीड़ितः पाणिजै
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणितदनाहता।
हस्तेनानमितः कचेऽधर सुधापानेन समोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः॥"

बाहु युगल के द्वारा पयोधर युगल को आवद्ध किया, हस्त द्वयके द्वारा प्रतिरोध किया, दशनों के द्वारा अधर पुट को एवं श्रोणि को वसन के द्वारा अवरुद्ध किया, हस्तके द्वारा आनमित केश कलाप के द्वारा अधर दान में प्रतिरोध उत्पन्न किया--कान्ताने इस प्रकार करने से कान्त परम तृप्ति को प्राप्त किया। कारण-काम की वामा गति है। उदाहरणान्तर—

दण्डापूपिकयान्यार्थागमो ऽर्थापत्ति रिष्यते ।

मूषिकेणेहस्थो दण्डश्चेद्भक्षित स्तर्हि तदन्तिकस्थो ऽपूपोऽपि भक्षित एवेत्यपूपभक्षणमर्थादागतमिति न्यायो दण्डापूपिका । यथा—

हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले ।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः ॥

"कंसः कृष्णहृतप्राणो ममज्जानन्दसम्पदि ॥

कृष्ण हृतप्राण कंस आनन्द सम्पद में निमज्जित हुआ।

अथवा—"अनुकूलं प्रातिकूल्य मनुकूल विधायिचेत् ॥

प्रति कूलाचरण भी यदि अनुकूलता में पर्य्यवसित हो, एवं वह व्यञ्जना वृत्ति लभ्य हो तो, वह अनुकूम अलङ्कार होगा।

दृष्टान्त—"प्राणापहारं हरिरप्रिय द्विषां मखापहारञ्च बलाच्छति पतेः।
स्थानापहारं फणिनश्च कारयन्तेनैव तेषां विहितं सुमङ्गलम् ॥

विद्वेषी जनों का प्राण नाश श्रीहरिने किया। इन्द्र यज्ञ भङ्ग किया, कालिय को निर्वासित किया। किन्तु उससे ही उन सबों को मङ्गल हुआ। अहिता चरण से हितापत्ति की प्रतीति हो अनुकूल अलङ्कार है। विच्छित्ति विशेष से समस्त अलङ्कारों से विलक्षण होने से यह पृथक् अलङ्कार गण्य हुआ।

अर्थापत्ति अलङ्कार—"दण्डापूपिकयान्यार्थागमो ऽर्थापत्ति रिष्यते ॥

मूषिक ने जब यहाँ के दण्ड को भक्षण किया है, तब उसके समीपस्थ अपूप को भी उसीने भक्षण किया है। इस प्रकार अपूप भक्षण अर्थ से प्राप्त होने के कारण—यह नियम--दण्डापूपिक कहलाता है। दृष्टान्त—

'हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः॥"

यथा वा—म्लेच्छानामपि चेतांसि हरन्ति भगवद्गुणाः ।
शुचीनां वेदवेदान्त-वेत्तृणां का कथा पुनः ॥७६॥

निश्चय स्तु निषिध्यान्यत्प्रकृत चेन्निरूप्यते ॥ यथा—

हृदि विसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ।

श्रीहरि के द्वारा मुक्त यह हार स्तन मण्डल में विलसित है, यदि मुक्तों की अवस्था इस प्रकार होती हैं, तो हम सब तो स्मर-किङ्कर हैं, हमारे पक्ष में कैसी अवस्था होगी—विचारणीय है ?

अथवा—म्लेच्छानामपि चेतांसि हरन्ति भगवद्गुणाः ।
शुचीनां वेदवेदान्त वेत्तृणां का कथा पुनः ॥"

भगवद् गुण गण जब म्लेच्छों के चित्तों को हरण करते हैं--तब वेद वेदान्त वेत्ता पवित्र व्यक्तियों का आकृष्ट होने का प्रसङ्ग ही क्या है ? निश्चय अलङ्कार—

"निश्चय स्तु निषिध्यान्यत्प्रकृतं चेन्निरूप्यते ॥

यदि अन्य वस्तु को निषेध कर प्रकरण प्राप्त पदार्थ का वर्णन करते हैं, तो—निश्चय अलङ्कार होगा । दृष्टान्त—

हृदि विसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥

वक्षः स्थल में मृणाल का हार है, यह भुजङ्गमनायक नहीं है, कण्ठ में कुवलय दल श्रेणी है—गरल द्युति नहीं है । यह मलयज-रज है, भस्म नहीं हैं, हे अनङ्ग ! हर भ्रान्ति से मुझ को प्रहार न

अत्र भुजङ्गादिकमप्रकृतं निषिध्य प्रकृतं मृणालहारादि स्थाप्यते ।

यथा वा—वदनमिदं सरोजं नयने नेन्दीवरे एते ।
इह सविधे मुग्धदशो मधुकर न मुधा परिभ्राम्यं ।७७।

सन्देहः स स्मृतो यः स्यात्प्रकृतेऽन्यस्य संशयः ॥
निश्चयगर्भो निश्चयान्तः शुद्धश्च सः ॥

क्रमेणोदा०—किमयं मुदिरः कथं पृथिव्यां विधुरस्मिन्नयमत्र लाञ्छनं क्व ।
इह किं चपला क्व चापलं तत् किमु कृष्णः सुमुखः स पीतवासाः ॥

करो, क्रोध से क्यों धावित हो रहे हो ?

यहाँ प्रकरण अप्राप्त भुजङ्ग प्रभृति को निषेध करके मृणाल हारादि का स्थापन किया गया है । अथवा—

"वदनमिदं सरोजं नयने नेन्दीवरे एते ।
इह सविधे मुग्धदशो मधुकर न मुधा परिभ्राम्यम् ॥"

यह वदन है, सरोज नहीं है, नयन द्वय है, ये इन्दीवर नहीं हैं, निकट में मधुकर ! मुग्ध होकर वृथा भ्रमन न करो ।

सन्देहालङ्कार--"सन्देहः स स्मृतो यः स्यात् प्रकृते ऽन्यस्य संशयः ॥"

जहाँ प्रकरण प्राप्त विषय व्यतीत अन्यत्र संशय होता है, उस को सन्देहालङ्कार कहते हैं । यह अलङ्कार–निश्चय गर्भ–निश्चयान्त, एवं शुद्ध भेद से त्रिविध हैं ।

क्रमश उदाहरण—

"किमयं मुदिरः कथं पृथिव्यां विधुरस्मिन्नयमत्र लाञ्छनं क्व ।
इह किं चपला क्व चापलं तत् किमु कृष्णः सुमुखः स पीतवासाः ॥

मुखमस्याः किं कमलैः किमिन्दुसारेण निर्मितं धात्रा ।
आनन्दयति मदक्षिभ्रमरचकोरौ यदश्रान्तं ॥

पलाशकुसुम-भ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यलिः ।
सोऽपि जम्बुफलभ्रान्त्या तमलिं धर्त्तुमिच्छति ॥

साम्यातिशयतोऽ तस्मिन् स्तद्बुद्धि र्भान्तिमान् स्मृतः ॥

यथा—स्वमूर्त्तिं स्फुरितां स्वच्छे सा वीक्ष्य हरिवक्षसि ।
सपत्नी-भ्रान्तितः कान्तिमरुणां नेत्रयो र्दधौ ॥७९॥

यह क्या मेघ है ? पृथिवी में कैसे विधु होगा ? इस में लाञ्छन कहाँ है ? यह क्या चपला है ? इस में चपलता कहाँ है ? तब क्या वह पीत वसन सुमुख कृष्ण है । द्वितीय का उदाहरण—

"मुखमस्याः किं कमलैः किमिन्दुसारेण निर्मितं धात्रा ।
आनन्दयति मदक्षिभ्रमर चकोरौ यदश्रान्तम् ॥"

इसका मुख है, कमलों से प्रयोजन क्या है ? विधाताने क्या इस का निर्म्माण---इन्दु सार के द्वारा किया है ? कारण— मेरे अक्षि भ्रमर एवं चकोर को अनवरत यह आनन्बित करता रहता है । तृतीय का उदाहरण—

"पलाशकुसुम भ्रान्त्या शुक तुण्डे पतत्यलिः ।
सोऽपि जम्बुफल भ्रान्त्या तमलिं धर्त्तुमिच्छति ॥"

शुक तुण्ड में पलाश कुसुम भ्रान्ति से अलि निपतित होता रहता है, वह भी जम्बुफल भ्रान्ति से उस अलिको पकड़ना चाहता है । भ्रान्तिमान् अलङ्कार—

"साम्यातिशयतोऽ तस्मिस्तद्बुद्धि भ्रान्तिमान् स्मृतः ॥"

साहृश्य हेतु तद् भिन्न वस्तु में तद् बुद्धि को भ्रान्तिमान् अलङ्कार कहते हैं । उदाहरण—

"स्वमूर्त्ति स्फुरितां स्वच्छे सा वीक्ष्य हरि वक्षसि ।

सदृशानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्यात् स्मरणं मतं ॥ यथा—
सरस्यां पङ्कजं पश्यन्सस्मार वनिताननम् ॥८०॥

अभवन्वस्तुसम्बन्धो यदि वा कुत्रचिद्भवन् ।
कल्पयत्युपमां प्रोक्ता तदा द्वेधा निदर्शना ॥

तत्रासम्भववस्तु-सम्बन्धनिबन्धना यथा—
क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्वायं श्रीपतिरच्युतः ।
तृषार्त्तमुपसंयातो निपातः सौरसैन्धवा ॥

स्वपत्नी भ्रान्तितः कान्तिमरुणां नेत्रयो दंधौ ॥

हरि के स्वच्छ वक्षस्थल में स्फुरित निज मूर्त्ति को देखकर स्व पत्नी भ्रान्ति से उसने निज नयन युगल को अरुणित किया ।

स्मरण अलङ्कार–"सदृशानुभव द् वस्तु स्मृतिः स्यात् स्मरणं मतम् ॥

सदृश अनुभव से वस्तु स्मृति का वर्णन को स्मरण अलङ्कार कहते हैं । दृष्टान्त—"सरस्यां पङ्कजं पश्यन् सस्मार वनिताननम् ॥'

सरोवर में पङ्कज को देखकर वनितानन का स्मरण किया ।

निदर्शना अलङ्कार–"सम्भावन् वस्तु सम्बन्धो यदि वा कुत्रचिद् भवन् ।
कल्पयत्युपमां प्रोक्ता तदाद्वेधा निदर्शना ॥"

साहृश्य कल्पना में पर्य्यवसित वाक्यार्थ निदर्शना है । यदि वस्तु अन्यत्र हो एवं उपमेय भाव से कल्पित हो तो वह निदर्शना अलङ्कार द्विविध होते हैं । असम्भव वस्तु सम्बन्ध निदर्शना का उदाहरण—"क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्वायं श्रीपतिरच्युतः ।
तृषात्तमुपसंयातो निपातः सौर सैन्धवः ॥"

पापीयान् दरिद्र मैं कहाँ हूँ, यह श्रीपति अच्युत भी कहाँ हैं ? तृषात्त व्यक्ति के पक्ष में गङ्गासङ्गम तुल्य यह प्रसङ्ग है । यहाँ 'पञ्च पूल्यः' 'षट् पूपा' इस प्रकार अन्वय असम्भव होने के कारण यहाँ वाक्यार्थ का विम्ब प्रतिविम्बभाव कल्पित हुआ । मुझ दरिद्र के पक्ष

अत्र पञ्चपूल्यः षट् पूपा इतिवदन्वयोऽसंभवन् वाक्यार्थयो बिम्बप्रतिबिम्बभावं कल्पयति । स च दरिद्रस्य मम श्रीकान्त साक्षात्कारस्तृष्णार्त्तस्य गङ्गासङ्गम इवेति । यथा वा--

आज्ञा-भङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनं ।
पृथक्शय्या वरस्त्रीणामशस्त्रविहितो बधः ॥

अत्रापि नृपाज्ञाभङ्गादिकमशस्त्रकृतबधतुल्यमिति तद्भावमावेदयति ।

यथा वा—सुभ्रु त्वद्वदनं धत्ते लीलां पीयूषदीधितेः ।
अत्र कथमन्यस्यान्यलीलाधारणमिति सादृश्ये पर्य्यवसानं ।

अथ सम्भवद्वस्तु-सम्बन्धनिबन्धना यथा—

कुमुदान्युदयन्नेष विकासयति चन्द्रमाः ।
बोधयन्निजसंपत्तेः फलं मित्रानुकम्पनम् ॥

में श्रीकान्त का साक्षात्कार—तृष्णार्त्त के पक्ष में गङ्गासङ्गम तुल्य है ।

अपर उदाहरण—"आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम् ।
पृथक् शय्या वरस्त्रीणामशस्त्र विहितो बधः ॥"

नरेन्द्र वृन्दकी आज्ञा भङ्ग, एवं विप्रों का मान खण्डन, उत्तम रमणीयों की पृथक् शय्या—अशस्त्र विहित बध है । यहाँ नृपाज्ञा भङ्गादि अशस्त्र कृत बध तुल्य हैं, इस के द्वारा उस प्रकार व्यवहार निषिद्ध है ।

उदाहरणान्तर—"सुभ्रु त्वद् वदनं धत्ते लीलां पीयूष दीधितेः ॥"

हे सुभ्रु ! तुम्हारा वदन--पीयूष दीधिति की लीला को धारण कर रहा है । यहाँ, कैसे अपर की लीला का धारण अपर कर सकता है ? इस से यह सादृश्य में पर्य्यवसान हुआ है । अनन्तर सम्भव--

अत्रदृगर्थबोधनक्रियायां कर्त्तृतया विधोरन्वयः संभवत्येव, स च विधुकृत—कैरवविकासस्य सम्पन्न-कृतसुहृत्प्रसादस्य च तद्भावमावेदयति ॥८१॥

समुच्चय स्तु सार्द्धं चेत्पतंत्येकत्र हेतवः ।
गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां किं वा गुणक्रिये ॥

बहूनि कारणानि यदि खलेकपोतन्यायेनकस्मिन् कार्ये सहिताः पतन्ति, यदि वा गुणौ क्रिये गुणक्रिये च युगपन्नि निबध्यते, तदा समुच्चय श्चतुर्धा ॥ क्रमेणोदा०—

कुलं रूपं वयो विद्या धनं च मदयत्यमुम् ।
मधुरं च वच स्तस्य विशदं च मनो मम ।

वस्तु सम्बन्ध निदर्शना का उदाहरण प्रस्तुत करते है—

"कुमुदान्युदयन्नेष विकासयति चन्द्रमाः ।
बोधयन्निजसम्पत्तेः फलं मित्रानुकम्पनम् ॥"

कुमुद समूह को विकसित कर चन्द्रमा उदित होता है । एवं सूचित करता है, कि निज सम्पत्ति का फल मित्रानुकम्पन है, यहाँ इस प्रकार बोधन क्रिया में कर्त्ता रूप में विधु का अन्वय सम्भव है ।

विधु कृत कैरव विकास का एवं सम्पन्न व्यक्ति कृत सुहृद् प्रसाद का अभाव सूचित होता है ।

समुच्चय अलङ्कार—"समुच्चयस्तु सार्द्धंचेत् पतन्त्येकत्र हेतवः ।
गुणौ क्रिये वा युगपत् स्यातां किंवा गुण क्रिये ॥

अनेक कारण यदि खलेकपोत न्याय से एक कार्य्य में युगपत् होते हैं, यदि वा गुण एवं क्रिया का उल्लेख युगपत् होता है, तब समुच्चय अलङ्कार होता है । यह चतुर्धा हैं ।

क्रमशः उदाहरण—"कुलं रूपं वयो विद्याधनं मदयत्यमुम् ।
मधुरं च वचस्तस्य विशदश्च मनो मम ।

गतश्च मथुरां कृष्णः प्रविष्टश्च हृदि ज्वरः।
रक्तं च हलिनो वक्त्रं सकम्पश्च स मुष्टिकः।८२।
भवेत् परिकरो नाम साकूतं चेद्विशेषणं ॥

उदा०—अमेध्य-प्रतिजातस्य विट्पात्रस्य विनाशिनः।
वपुषः परिपोषाय मूढ़ाः पापानि कुर्वते ॥

अत्र विशेषणानि सर्वथा विशेष्यापकृष्टत्वाभिप्राय-गर्भाणि। यथा वा-

एष लक्ष्मीपतिः कृष्णो दारिद्र्यं मेऽपनेष्यति।

अत्र लक्ष्मीपतिरिति विशेषणं दैन्यविनाशसामर्थ्याभि-प्रायगर्भं ॥८३॥

गतश्च मथुरां कृष्ण प्रविष्टश्च हृदि ज्वरः।
रक्तश्च हलिनो वक्त्रं सकम्पश्च स मुष्टिकः ॥"

कुल, रूप, वयस, विद्या, एवं धन उसको मत्त करते थे। उस की वाणी मधुर थी, मेरा भी मन प्रसन्न था।

कृष्ण मथुरा गये, हृदय में ज्वर प्रविष्ट हुआ। बलराम का बदन रक्तिम हुआ, मुष्टिक भी कंपने लगा।

परिकर अलङ्कार—"भवेत् परिकरो नाम साकूतंचेद्विशेषणम् ॥

अभिप्राय पूर्ण विशेषण का प्रयोग होने से परिकर अलङ्कार होता है। उदाहरण-

अमेध्य प्रतिजातस्य विट् पात्रस्य विनाशिनः।
वपुषः परिपोषाय मूढ़ाः पापानि कुर्वते ॥"

अपवित्र वस्तु से उत्पन्न एवं मलपूर्ण तथा विनाशी शरीर पोषण हेतु मूढ़गण पाप कार्य्य करते रहते हैं। यहाँ विशेषण समूह विशेष्य का अपकर्ष सूचक हैं ॥

साकूतत्वे विशेष्यस्य मतः परिकरांकुरः ॥

यथा—लिखितुं कार्त्तवीर्य्य स्ते विभूती र्मथवेक्षितुं।
वक्तुं शेषः प्रभुर्भूमन् क्वाहमेष क्व ताः पुनः ॥

अत्र कार्त्तवीर्य्य इत्यादीनि विशेष्याणि सहस्रबाहुत्वाद्यभि-प्रायगर्भाणि ॥८४॥

सूक्ष्मं त्वाकूतचेष्टा चेत्स्वाकूतज्ञे प्रकाश्यते।

स्वाभिप्रायाभिज्ञं प्रति यदि तदाकूतव्यंजकं चेष्टितं झटिति तद्बोधनाय प्रकाश्यते, तदा सूक्ष्मं नाम, यथा—

अथवा—"एष लक्ष्मी पतिः कृष्णो दारिद्र्यं मेऽपनेष्यति ॥

यह लक्ष्मी पति कृष्ण मेरा दारिद्र्य अपनोदन करेंगे। यहाँ 'लक्ष्मीपति' विशेषण-दैन्य विनाश सामर्थ्य के अभिप्राय से प्रवृत्त हुआ है।

परिकराङ्कुर अलङ्कार-"साकूतत्वे विशेषस्य मतः परिकराङ्कुरः ॥

अभिप्राय विशेष से विशेष्य का प्रयोग होने से 'परिकराङ्कुर' अलङ्कार होता है।

उदाहरण—"लिखितुं कार्य्य वीर्य्यस्ते विभूती र्मथवेक्षितुम्।
वक्तुं शेषः प्रभुर्भूमन् क्वाहमेष क्व ताः पुनः ॥"

हे कार्त्तवीर्य्य ! आप की विभूति को लिखने में अथवा देखने में तथा कहने में अनन्त समर्थ हैं, हे भूमन् ! कहाँ आप की विभूति और कहाँ मैं।

यहाँ कार्त्तवीर्य्य प्रभृति विशेष समूह सहस्र बाहु प्रभृति को प्रकाश करने के अभिप्राय से प्रयोग किया गया है।

सूक्ष्म अलङ्कार—"सूक्ष्मं त्वाकूत चेष्टा चेत् स्वाकूतज्ञे प्रकाश्यते ॥"

अभिप्राय अभिज्ञ व्यक्ति के प्रति उसकी अभिप्राय व्यञ्जक चेष्टा को आशु बोध हेतु प्रकाश करते हैं तो सूक्ष्म नामक अलङ्कार

ललाटलग्नानलकान्समीक्ष्य सखी स्वसख्या श्चतुरा प्रभाते।
लिलेख तस्याः सशरं मृगाक्ष्याः शरासनं पाणिसरोजयोः सा॥

अत्र स्वाकूताभिज्ञा या नायिकायाः पाणौ धनुर्वाण-लिखनरूपं चेष्टितं त्वया पुरुषवत् निशि चेष्टितमित्याकूतं। पुरुषाः खलु धनुर्वाणभृतो यद्भवन्ति। यथा वा—

कान्तमायान्तमालोक्य मन्दिरे चेन्दिरानना।
चकार करकञ्जस्य कुट्मलीभावमुत्सुका॥

अत्र संकेत-समयावबोधायागते निजाकूतज्ञे नेतरि तद्बोधकमिदं चेष्टितं। रात्रि स्तत्समय इत्याकूतं॥८५॥

होता है। उदाहरण—

"ललाट लग्नानलकान् समीक्ष्य सखीस्व सख्या श्चतुरा प्रभाते।
लिलेख तस्याः स शरं मृगाक्ष्याः शरासनं पाणिसरोजयोः सा॥"

प्रभात समय में चतुरा सखी ने निज सखी के ललाट फलक में संलग्न अलकावली को देखकर उस मृग नयनी सखीके कर कमलों में शर के सहित शरासन को अङ्कन किया। यहाँ अभिप्रायाभिज्ञा सखीने नायिका के कर कमल युगल में जो धनुर्वाण को लिखा है, उस से अभिप्राय यह व्यक्त हुआ है कि—

नायिकाने रात्रिमें नायकके प्रति पुरुषायित चेष्टा की। कारण पुरुष गण धनुर्वाण धारी होते हैं। उदाहरणान्तर—यह है—

"कान्तमायान्तमालोक्य मन्दिरे चेन्दिरानना।
चकार कर कञ्जस्य कुट्मलीभावमुत्सुका॥"

मन्दिर में इन्दिरानना नायिकाने कान्त को समागत देखकर व्यग्रता से कर कमल को कमल कोरकवत् किया।

यहाँ सङ्केत समय को सूचित करने के निमित्त समागत नि

हेतो वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदीर्य्यते॥

वाक्यार्थः पदार्थो वा यदि हेतुः स्यात्तदा काव्यलिङ्गं। क्रमेणोदा०—यः कीर्त्तयति गोविन्दं संसार स्तस्य नश्यति।

स्वर्गग्रामटिकां नेच्छेद् गोविन्दार्पित-मानसः॥

ननु वाक्यार्थ-गतेन काव्यलिङ्गेन कार्य्यकारणभावीयोऽर्थान्तरन्यासश्चरितार्थोऽस्तु, मैवं। हेतुस्तु त्रिविधः--निष्पादकः समर्थको ज्ञापकश्चेति। आद्यः काव्यलिङ्गस्य विषयः। द्वितीयोऽर्थान्तरन्यासस्य। तृतीयस्त्वनुमानस्येति पृथगेव काव्यलिङ्गात्तद्भावीयः सः॥८६॥

अभिप्रायज्ञ नायक के प्रति उस प्रकार नायिका ने किया। इस से रात्रि में मिलन समय अभिव्यक्त हुआ।

काव्यलिङ्ग अलङ्कार—

"हेतो वाक्य पदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदीर्य्यते॥"

अर्थ विशेष के प्रति यदि वाक्यार्थ अथवा पदार्थ हेतु होता है तो काव्य लिङ्ग अलङ्कार होता है। अतएव यह द्विविध हैं। क्रमश उदाहरण—

"यः कीर्त्तयति गोविन्दं संसार स्तस्य नश्यति।
स्वर्ग ग्रामटिकां नेच्छेद् गोविन्दार्पित मानसः॥"

जो गोविन्द नाम कीर्त्तन करता है, उसका संसार विनष्ट होता है। वह अतितुच्छ स्वर्ग सुख को भी नहीं चाहता है, कारण, वह गोविन्दार्पित मानस है।

वाक्यार्थ के द्वारा काव्य लिङ्ग निष्पन्न होने से कार्य्य कारण भाव से जो अर्थान्तर न्यास होता है--वह नहीं होगा। इस प्रकार कहना समीचीन नहीं है। कारण—हेतु त्रिविध हैं—निष्पादक, समर्थक, एवं ज्ञापक। निष्पादक-काव्य लिङ्ग का और समर्थक

अर्थान्तर न्यास का कारण है। ज्ञापक—अनुमान का है। अतः काव्य लिङ्ग से अर्थान्तर न्यास पृथक् अलङ्कार है।

अथवा—"हेतो र्वाक्य पदार्थत्वे काव्य लिङ्गो निगद्यते ॥"

कारण घटित काव्य लिङ्गालङ्कार का लक्षण करते हैं--अर्थ विशेष के प्रति यदि वाक्यार्थ अथवा पदार्थ कारण होता है। तो उसे काव्यालङ्कार कहते हैं, अतएव यह द्विविध हैं। काव्य का लिङ्ग---अर्थात् वैचित्र्य विशेष भूत चिह्न है। दृष्टान्त—वाक्यार्थता--

"मुख नयन निभे ये पङ्कजेन्दीवरेते
सलिलमनु निविष्टे यस्तु मध्योपमस्ते।
मृगपति रिह राधे! काननेऽसौ प्रविष्ट
स्तव तनुसदृशेक्षा भाग्यमप्यस्ति नो मे ॥"

हे राधे! तुम्हारे मुख एवं नयन का सादृश्य पङ्कज एवं इन्दीवर में है, किन्तु वे दोनों जल में प्रविष्ट हो चुके हैं। एक चन्द्र ही उपमा स्थल रह गया है, किन्तु वह भी कानन में प्रविष्ट हो चुका है, अर्थात् पृथिवी की च्छाया से आवृत हो गया है। अतः चन्द्र को देखकर भी मैं विरह दुःख को दूर करूँ—इसकी सम्भावना नहीं है।

यहाँ "स्तव तनु सदृशेक्षा भाग्यमप्यास्ते न मे" इस चतुर्थ पादात्मक वाक्यार्थ के प्रति पादत्रयात्मक वाक्य द्वयार्थ कारण है। प्रथम वाक्यार्थ के बिना चतुर्थ वाक्यार्थ सार्थक नहीं हो सकता है। पदार्थता का उदाहरण—

"अनन्त गुण सौन्दर्य्य कला वैदग्ध्य राजिते।
राधिकाया मनोमग्नं गोपेश तनये सखि ॥"

सखी कहती है—हे सखि! अनन्त गुण सौन्दर्य्य कला वैदग्ध्य राजित गोपेशतनय में राधिकाया मन मग्न हो गया है।

यहाँ द्वितीयार्द्धार्थ मनो मग्न के प्रति प्रथमार्द्ध अनन्त गुण सौन्दर्य्य कला वैदग्ध्य राजित पद हेतु है। यह समास बद्ध होने से एक पद है।

अनेक पद का निदर्शन-- निखिल गुण गभीरे क्ष्माधरोद्धार धीरे।
सकल सुखदशीले क्षालिताशेष पीले।
सुभग नव किशोरे विश्व चित्ताक्षि चौरे
मुरभिदि युवतीनां हृन्निमग्नं सखीनाम् ॥

निखिल गुण गभीर गिरिधर धीर, सकल सुखदशील अशेष बाधा निवारक सुभगनव किशोर विश्व चित्ताक्षि चौर कृष्ण में सती युवतीओं का हृदय निमग्न है।

'इह केचित् वाक्यार्थ गतेन काव्य लिङ्गेनैव गतार्थतया कार्य्य कारण भावे अर्थान्तर न्यासं नाद्रियन्ते। तदयुक्तं—तत्राप्यत्र हेतु स्त्रिधा भवति। ज्ञापक, निष्पादक, समर्थक श्चेति। तत्र ज्ञापको ऽनुमानस्य विषयः। निष्पादकः—काव्य लिङ्गस्य विषयः। समर्थको ऽर्थान्तर न्यासस्येति पृथक् कार्य्य कारण भावे ऽर्थान्तर न्यासः काव्य लिङ्गात्। तथाहि—मुख नयने त्यादौ चतुर्थ पाद वाक्य मन्यथा साकाङ्क्षतया असमञ्जसमेव स्यादिति पादत्रयं निष्पाद कत्वेनापेक्ष्यते" "सहसा" इत्यादौतु 'परोपकार निरतं दुर्जनैः सह सङ्गतिः" "ददामि भवतस्त्वं न विधेया कदाचन इत्यादिवदुपदेश मात्रणापि निराकाङ्क्षतयाऽर्थतो ऽपि गतार्थत्वं सहसा विधानाभावं सम्पद् वरणं सोपपत्तिकमेव करोतीति पृथगेव कार्य्य कारण भावे-ऽर्थान्तर न्यासः काव्य लिङ्गात्।

मम्मठादि के मत निराश हेतु कहते हैं—अर्थालङ्कार में वे सब केवल सामान्य विशेष भाव से दो प्रकार ही अर्थान्तर न्यास मानते हैं। वाक्यार्थ के द्वारा काव्य लिङ्ग निष्पन्न होने से कार्य्य कारण भाव से अर्थान्तर न्यास को मानना ठीक नहीं है, उसके उत्तर में कहते हैं--इस प्रकार कथन समीचीन नहीं है। कारण--हेतु त्रिविध हैं—ज्ञापक, निष्पादक एवं समर्थक, ज्ञापक--अनुमान का विषय है, निष्पादक--काव्य लिङ्ग का, एवं समर्थक अर्थान्तर न्यासका विषय है।

अतः काव्य लिङ्ग से अर्थान्तर न्यास पृथक् अलङ्कार है। 'मुखनयन' इत्यादि में चतुर्थ पादके वाक्य में हेतु की अपेक्षा है। वह

विकल्प स्तुल्यबलयो र्विरोधे चातुरीजुषि ।
यथा—पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति च शिखण्डिनः ।
अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥

अत्र कान्तकृतान्त-कर्त्तृकयो र्दुःखनाशयो र्युगपद्भावा-सम्भवाद्विरोधः। तुल्यबलत्वं च तयोः स्पर्द्धायाः सम्भाव्य-

---

अन्वय प्राप्त न होकर असंलग्न हो जायेगा। अतः पूर्वोक्त पादत्रय वाक्यार्थ स्वसम्पादक रूप में हैं। "सहसा विदधीत न क्रियाम्' इस स्थल में 'मैं कहता हूँ—परोपकार निरत दुर्जन के सहित कभी भी सङ्गति न करे, इस कथन के तुल्य उपदेश मात्र ही होगा। और निराकाङ्क्ष भी होगा। किन्तु यहाँ सहसा विधानाभाव ही सम्पत्तिमान् बनाता है। इस अर्थ को देखकर निर्णय होता है कि—अर्थान्तर न्यास काव्य लिङ्ग से पृथक् अलङ्कार है।

"राधिकाया मनोमग्नं गोपेश तनये सखि।
अनन्त गुण सौन्दर्य्य कलादि राजितो हि सः॥

हे सखि! गोपेश तनय में राधिका का मन मग्न हो गया है, कारण, वह अनन्त गुण सौन्दर्य्य कलादि रञ्जित ही है। यहाँ हि शब्द से गुणादि रञ्जित हेतु ही हो गया है, हेतु प्रकाश हो जाने से यह अलङ्कार नहीं हुआ। वैचित्र्य ही अलङ्कार का मूल है।

विकल्प अलङ्कार—"विकल्प स्तुल्यबलयोर्विरोधे चातुरीजुषि॥

समकक्ष के मध्य में चमत् कारातिशय से विरोध उपस्थित होने पर विकल्प अलङ्कार होता है। दृष्टान्त—

"पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति च शिखण्डिन।
अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति॥"

अविरत वारि वर्षण हो रहा है, मयूर वृन्द भी नृत्य कर रहे हैं। अद्य कान्त अथवा कृतान्त दुःखापनोदन करेगा।

मानत्वात्। कान्तो यद्यागच्छेत्तदा मरणं नाशकयं, मरणे तु कान्तागमासम्भव इत्युभयोः स्पृहायां विकल्पः। श्लेषगर्भत्वाच्चातुर्य्यं। यथा वा—

युष्माकं कुरुतां भवार्त्तिशमनं नेत्रे तनु र्वा हरेः॥
दीयतामूर्जितं वित्तं देवाय ब्राह्मणाय वेत्यत्र नायमलङ्कारः।

यहाँ कान्त—कृतान्त के द्वारा दुःख नाश का युगपद् होना असम्भव होने के कारण विरोध है। तुल्यबल होने के कारण उभय की स्पर्द्धा होना भी सम्भव है। कान्त का आगमन यदि होता है तो मरण नहीं होगा, मरण होने से कान्त समागम असम्भव है, इस रीति से उभय स्पृहा में विकल्प है। श्लेष गर्भ होने के कारण चातुर्य्य है। अथवा—"युष्माकं कुरुतां भवाब्धि शमनं नेत्रे तनर्वा हरेः॥

तुम सब को भवार्त्ति का उपशमन हरि के नयन अथवा तनु करे। देवता एवं ब्राह्मण को प्रचुर वित्त प्रदान करो" यहाँ अलङ्कार नहीं है। कारण--चमत्कारातिशय का अभाव है।

अथवा---"विकल्प तुल्य बलयो र्विरोधश्चान्तरायतः॥"

तुल्य बल--अर्थात् समकक्ष पदार्थ का विरोध--विप्रतिपत्ति--अन्तराय से उपस्थित होने पर विकल्प अलङ्कार होता है। विरोध की प्रतीति अवास्तव रूपसे होती है। एकपक्ष का अवलम्बन से समाधान होता है। यहाँ पर भी विकल्प संज्ञा है, अतः विरुद्ध कल्प पक्ष जहाँ है, उसे विकल्प कहते हैं। दृष्टान्त--

"नाद व्याजात क्षिपसि कठिने मारली मामृतीं वा,
धागवंशि प्रणय सखिनो जीवनं वा स्मृति वा।
ताभ्यां नान्यां वितर विषमां हा दशामत्यसह्यां
गोप्यः कृष्ण प्रणय विकला वंशिकामित्थमाहुः॥"

हे प्रणय सखि वंशी! निनाद के छद्म से कठिन अवस्था में

चातुर्य्याभावात् ।।८७।।

रत्नावली क्रमाद्व्यक्तिः ख्यातसाहित्यशालिनां ।।

उदा०--महापद्मः पद्मार्चितचरण-शंखांचितकरः

श्रवोभूषाभास्वन्-मकरविलसन्कच्छपवपुः ।

तुम जल देती हो। गरल अथवा मृत्यु को देती हो, अथवा मृत्यु वा जीवन देती हो, अपर को इस प्रकार अति असहनीय विषम अवस्था प्रदान न करो, गोपी गण कृष्ण प्रणय विह्वल होकर वंशी को इस प्रकार कह रही थीं।

यहाँ श्लिष्टार्थ यह है कि--जीवन मरण का संघटन करना एक साथ असम्भव है। अत विरोध है। स्वतन्त्र होने से तुल्य बल भी है, इस प्रकार श्लेष घटित वैचित्री का निदर्शन है।

"भक्ति प्रह्व विलोकन प्रणयिनी नीलोत्पल स्पर्द्धिनी
ध्यानालम्बनतां समाधिनिरतै र्नीतेहित प्राप्तये।
लावण्यस्य महानिधीरसिकतां लक्ष्मी दृशोस्तन्वती
युष्माकं कुरुतां भवाब्धि शमनं नेत्रे तनुर्वा हरेः।।"

यहाँ श्लेष के कारण चारुता है, हरेः---विष्णु के नयन युगल तनु--शरीर भक्तों का सांसारिक दुःख शमन करें। एक का भवार्त्ति शमन, करने से अपर का होना असम्भव हेतु विरोध है, एकतर का अवलम्बन से समाधान होता है। उभयकी भावार्त्तिशमन में सामर्थ्य होने के कारण--तुल्य बलत्व है।।

रत्नावली अलङ्कार---

"रत्नावली' क्रमाद् व्यक्तिः ख्यातसाहित्य शालिनाम् ।।

सहभाव से अवस्थित वस्तुओं का क्रम पूर्वक प्रकाश से रत्नावली अलङ्कार होता है। उदाहरण--

"महापद्मः पद्मार्चित चरण शङ्खाञ्चितकरः।
श्रवोभूषाभास्वन्--मकरविलसन्कच्छपवपुः।

मुकुन्दः सत्कुन्द-स्तुतदशननीलोरुचिभरा
द्वलिव्याजात् खर्वो हृदि निवसदेव प्रणयिनाम् ।।

अत्र प्रसिद्धसहभावा नवापि निधयः क्रमाद्व्यञ्जिताः।

एवं तथाभूताः सिद्ध्यादयोप्युदाहार्य्याः ।।८८।।

पूर्वं पूर्वं प्रति स्याच्चेदूर्ध्वमूर्ध्वं विशेषणं।

स्थाप्यं सत्खण्ड्यमानं वा तदा त्वेकावली भवेत् ।।

उत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्व-विशेषण भावेन स्थापनं खण्डनं वा यदि भवति, तदा द्विभेदा एकावली स्यात्।

क्रमेणोदा०--वृन्दावनं दिव्यलतापरीतं लताश्च पुष्प-स्फुरिताग्रभाजः।

पुष्पाण्यपि स्फीत-मधुव्रतानि मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीताः ।।

अत्र पूर्वपूर्वविशेषणतयोत्तरोत्तरस्य स्थापनम्।

मुकुन्दः सत्कुन्दस्तुतदशननीलोरुचिभराद्
वलिव्याजात् खर्वो हृदि निवसदेव प्रणयिनाम् ।।"

यहाँ साहचर्य परायण नव निधि का वर्णन क्रमशः हुआ है। इस प्रकार अष्ट सिद्धि प्रभृति का उदाहरण भी अनुसन्धेय है।

एकावली अलङ्कार--"पूर्वं पूर्वं प्रति स्याच्चेदूर्द्ध्वमूर्द्ध्वं विशेषणम्।
स्थाप्यं सत्खण्ड्यमानं वा तदा त्वेकावली भवेत् ।।

उत्तर उत्तर का पूर्व पूर्व भाव से स्थापन वा खण्डन होने से एकावली अलङ्कार होता है। इसका भेद द्विविध है। क्रमश उदाहरण--

"वृन्दावनं दिव्यलतापरीतं लताश्च पुष्प स्फुरिताग्रभाजः।
पुष्पाण्यपि स्फीत मधु व्रतानि मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीताः ।।

दिव्य लतामण्डित श्रीवृन्दावन है, लता समूह कुसुमाकीर्ण है, कुसुम समूह में मधुकर विलसित हैं, एवं मधुव्रत गण भी मनोहर

न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीन-षट्पदं ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार
यन्मनः ॥

अत्र पूर्वपूर्व विशेषणभावेन परपरस्य निरासः ॥८९॥

व्याघात स्त्वन्यथाकारितथाकारिकृतं यदि ।

तथाकारिसाधनं यद्यन्यथाकारिकृतं स्यात्तदा व्याघातः । लोके यद्यद् साधनत्वेन प्रसिद्धं तच्चेत्केनचिद्विरुद्धसाधनं क्रियते, तदेत्यर्थः ॥ यथा —

गुञ्जन रत हैं ।

पूर्व पूर्व के विशेषण रूपसे उत्तरोत्तर का स्थापन यहाँ हुआ है ।

"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलीन-षट्पदम् ।
न षट् पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥

जिस में सुचारु पङ्कज नहीं है, वह जल जल नहीं है, जिस में मधुकर लीन नहीं है, वह पङ्कज नहीं है, मधुर अव्यक्त शब्द जिस से उच्चारित नहीं होते वह षट् पद नहीं है, वह गुञ्जन गुञ्जन नहीं है, जिस से मनोहरण नहीं होता है । यहाँ पूर्व पूर्व विशेषण भाव से पर पर का निरास हुआ है ।

व्याघात अलङ्कार—

"व्याघात स्त्वन्यथाकारितथाकारिकृतं यदि ।

जिस साधन से कार्य्योत्पन्न होता है, उसको अन्यथा करने से व्याघात अलङ्कार होता है । अर्थात् लोक में जो जो साधन-जिस जिस कार्य्योत्पन्न हेतु निर्दिष्ट है, अपर व्यक्ति यदि उस उस साधन को अन्यथा कर देते हैं । तो वर्णन चमत् कारातिशय से व्याघात नामक अलङ्कार होता है । उदाहरण—

दृक्पातनिहतं कामं दृक्पातै जीवयन्ति याः ।
गौर्य्योऽपि विभवस्नेहा स्ताः स्तुवे गोपसुभ्रुवः ॥

यथा वा—सीते मृदुस्त्वं न मया सहाटवीं चलेति भर्त्रा गदिता
तमाह सा ।
देवारविन्दाक्ष चलाम्यहं पुरो मृद्वीं विचित्रां भवता
सहाटवीं ॥९०॥

"दृक्पातनिहतं कामं दृक्पातै जीवयन्ति याः ।
गौर्य्योऽपि विभवस्नेहा स्ताः स्तुवे गोपसुभ्रुवः ॥"

दृष्टि पात से जो काम निहत हुआ, जो-उस काम को जीवित करती हैं, गौरी की भी विपुल स्नेह पात्र स्वरूपा उन गोपाङ्गनाओं का स्तव करता हूँ ।

अथवा-सीते मृदुस्त्वं न मया सहाटवीं चलेति भर्त्रा गदिता तमाह सा ।
देवारविन्दाक्ष चलाम्यहं पुरो मृद्वीं विचित्रां भवता सहाटवीम् ॥

भर्त्ता ने सीता को कहा—सीते तुम कोमला हो, मेरे सहित अरण्य गमन न करो, यह सुनकर सीता बोली, हे देवारविन्दाक्ष ! मैं अति कोमला अटवी को आप के सहित जाऊँगी ।

लक्षण एवं उदाहरणान्तर—

"व्याघातः सतु केनापि वस्तु येनयथाकृतम् ।
तेनैव चेदुपायेन कुरुतेऽन्य स्तदन्यथा ॥

तृतीय प्रकार विशेष अलङ्कार में अन्य करण प्रस्तावोत्थान से व्याघात अलङ्कार का निरूपण होता है । कर्त्ता जिस उपाय के द्वारा स्थापन किया है, उस से ही यदि अन्य व्यक्ति उसका अन्य प्रकार कर देता है तो उसको व्याघात अलङ्कार कहते हैं । अर्थात् अपर के करण के द्वारा पूर्व करण का व्याघात होने से व्याघात अलङ्कार होता है । दृष्टान्त—

गुम्फ: कारणमाला स्याद्यथा पूर्वान्त-हेतुभि: ॥
उत्तरोत्तरहेतुभूतपूर्वपूर्वै पूर्वपूर्वहेतुभूतोत्तरोत्तरैर्वा वस्तुभि

"चन्द्रावली प्रणय रूप गुणै: प्रयत्न,
व्यक्तीकृतै र्व्यरचयत् स्ववशं वकारिम् ।
श्रीराधिका तु सहज प्रकटै निजै स्तै
र्व्यस्मारयत्तमिह तामपि हा कुतोऽन्या: ॥"

चन्द्रावली प्रयत्न के द्वारा प्रणय रूप गुणों से श्रीकृष्ण को वश किया है श्रीराधाने तो निज सहज प्रकट गुणों से उस को अन्यथा करके श्रीकृष्ण को वशीभूत किया है । और चन्द्रावली को भी भूला दिया है। अन्य प्रकार व्याघात का लक्षण इस प्रकार है—

"सौकर्य्येण च कार्यस्य विरुद्धं क्रियते यदि सोऽपि व्याघात: ।

एक हेतु से ही प्रति वक्ता यदि वक्ता के मत का विपरीत प्रतिपादन करता है । तो वह भी व्याघात अलङ्कार होता है । इस मतमें वक्ता के मत मतका व्याघात होने से व्याघात अलङ्कार होता है ।

दृष्टान्त—"इहैव त्वं तिष्ठ द्रुतमह महोभि: कतिपयै:
समागन्ता राधे मृदुरसि न चायास सहना ।
मृदुत्वं मे हेतु: सुभग ! भवता गन्तु मधिकं
न मृद्वी सोढ़ा यद्विरह कृतमायासमसमम् ॥"

राधे ! तुम यहाँ रहना, मैं कतिपय दिनों में प्रत्यावर्त्तन करूँगा । तुम मृदु हो क्लेश सहन कर न सकोगी, उत्तर में राधा बोली-हे सुभग ! मेरा कारण है—मृदुता, तुम चले जाने से विरह कृत क्लेश अत्यधिक होगा, उसको सहन करना असम्भव होगा । प्रथम कृष्ण ने राधा को मृदु कह कर सह गमन में निषेध किया, राधाने उस मृदु हेतु को लेकर कहा--साथ चलने में क्लेश स्वल्प होगा, किन्तु तुम्हारे विरह से क्लेश अधिक होगा । कारणमाला अलङ्कार—

"गुम्फ: कारणमाला स्याद्यथा पूर्वान्त--हेतुभि: ॥

यदि गुम्फ: स्यात्तदा कारणमाला ॥ क्रमेणोदा०—
सत्सङ्गाद्वैराग्यं वैराग्याच्चित्तशुद्धिराशु भवेत् ।
चित्तशुद्धया प्रमोदमूर्त्ति: प्रकाशते भगवान् ॥
भवन्ति नरका: पापात्पापं दारिद्र्य-सम्भवम् ।
दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत् ॥९१॥
आक्षेपस्तु निषेध श्चेद्वक्तुमिष्टस्य वस्तुन: ।

पूर्वान्त हेतु सन्देह के द्वारा गुम्फित कारण माला अलङ्कार होता है । उदाहरण—

सत्सङ्गात् वैराग्यं वैराग्याच्चित्तशुद्धिराशु भवेत् ।
चित्तशुद्धया प्रमोदमूर्त्ति: प्रकाशते भगवान् ॥

सत् सङ्ग से वैराग्य होता है. वैराग्य से आशु चित्त शुद्धि होती है । चित्त शुद्धि से भगवान् प्रमोद मूर्त्ति को प्रकाश कर देते हैं ।

"भवन्ति नरका: पापात्पापं दारिद्र्य सम्भवम् ।
दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत् ॥९१॥

दारिद्र्य से पापोत्पन्न होता है,पाप से नरक समूह होते रहते हैं । अप्रदान से दारिद्र्य होता है, अत: दान परायण होना आवश्यक है । अथवा—परं परं यदि पूर्व पूर्वस्य हेतुता तदा कारण मालास्यात् ।

हेतु घटित कारण मालालङ्कार का निरूपण करते हैं, जब परस्पर पदार्थ के प्रति पूर्व पूर्व पदार्थ कारण हो जाता, तब कारणमाला अलङ्कार कहलाता है । कारणों की माला कारण माला उदाहरण—

"वंशीस्वनै गोपवधू गणाहृति र्गोपी हृते रासमहामहोत्सव: ॥
रासोत्सवाद् वाञ्छित पूर्त्ति रीशितु स्तत् पूर्त्तितोऽमूत् सुखसम्मृतं जगत् ॥

वंशीनाद से गोप बधूओं का आहरण हुआ, गोपीयों का

विशेषं वक्तुमिति शेषः ॥ यथा—

सखि विरहे वनमाली विलोक्य दत्तं त्वया हारं ।
हन्त नितान्तमिदानीं निर्दयहृदि किं भणिष्यामः ॥

अत्र हरिविरहज-दुःखस्य विवक्षितस्य प्रतिषेधः । त्वां विनासौ न भविष्यतीति तस्य विशेषो विवक्षितः ॥

यथा वा—नवनीतनिभा राधा बाधा स्मरशराग्निजा ।
निर्दयस्त्वमिहोक्तेन किं वा न ब्रूमहे वयं ॥

अत्र राधा-विरहवेदनाया विवक्षितायाः प्रतिषेधः । अशक्य-

आगमन से रास महामहोत्सव हुआ, रासोत्सव से श्रीकृष्ण का वाञ्छित की पूर्त्ति हुई उनको पूर्त्ति से जगत् तृप्त हुआ ।

आक्षेप अलङ्कार—"आक्षेप स्तु निषेध श्चेद्वक्तुमिष्टस्य वस्तुनः ॥"

विवक्षित वस्तु का निषेध होने से आक्षेप अलङ्कार अर्थात् विशेष विवक्षा से उक्तालङ्कार होता है । उदाहरण—

"सखि विरहे वनमाली विलोक्य दत्तं त्वया हारं ।
हन्त नितान्तमिदानीं निर्दयहृदि किं भणिष्यामः ॥

हे सखि ! तुम्हारे द्वारा प्रदत्त हार को विरह में वनमाली देखकर—हाय हाय ! मैं सम्प्रति निर्दय हृदय में क्या बलूँ ?

यहाँ हरि विरह जा दुःख विवक्षित था, किन्तु उस का निषेध किया गया है । तुम्हारे बिना वह नहीं रहेगी, यही उसका विशेष कथनाभिप्राय है । द्वितीय उदाहरण—

"नवनीतनिभा राधा बाधा स्मरशराग्निजा ।
निर्दयस्त्वमिहोक्तेन किं वा न ब्रूमहे वयं ॥

नवनीत तुल्य कोमला राधा है, स्मरशराग्नि से उत्पन्न बाधा भी निवारण है, तुम निर्दय हो, इस प्रकार शब्द प्रयोग क्या हम

कथयत्वं तु तस्या विशेषो वक्तुमिष्टः ॥ वक्ष्यमाणोक्तविषयतयाक्षेपस्य द्विविधसम्भवात्तथैवासौ निरूपितः ॥९२॥

तुम्हारे प्रति नहीं करेंगे ?

यहाँ राधा की विरह वेदना को कहना अभीप्सितथा, किन्तु उसका निषेध किया गया है । कहने में अक्षमता का प्रकाश करना ही विशेष कथन है । वक्ष्यमाणोक्त विषय रूपसे आक्षेप दो प्रकार होना सम्भव है, अतः द्विविध उदाहरण प्रस्तुत हुये हैं ।

लक्षणान्तर—"वस्तुनो वक्तु मिष्टस्य विशेष प्रति पत्तये ।
निषेधाभास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्तगो द्विधा ॥"

विवक्षित विषय के सम्बन्ध में अधिक बोध कराने के निमित्त जो निषेधाभास उपस्थित होता है, वस्तुतः निषेध नहीं है, किन्तु निषेध के तुल्य प्रतीत होता है । उस को आक्षेप अलङ्कार कहते हैं । कथनारम्भ की असमाप्त अवस्था में रोकना आक्षेप है । यह अलङ्कार प्रथमतः द्विविध हैं ।—कहाँ वक्ष्यमाण विषय का सामान्य रूप से निषेध, कहीं पर अंशान्तर में निषेध है, उक्त विषय में कहीं वस्तु स्वरूप का निषेध है, कहीं पर वस्तु कथन का निषेध है । इस प्रकार दो भेद हैं । इस से आक्षेप का भेद--चतुर्विध होते हैं । क्रमशः

उदाहरण—"कृष्ण तिष्ठ वच्मि राधाया विरहाधिजाम् ।
तद् दशामथवा गच्छ नाख्यामि निर्दये त्वयि ॥"

हे कृष्ण ! रुको, राधा की विरह पीड़ा को कहूँगी । अथवा तुम्हारी वैसी दशा हो जाय, तुम निर्दय हो, तुम से नहीं कहूँगी, यहाँ राधा का विरह को सामान्य रूप से सूचित करके वक्ष्यमाण विशेष का निषेध हुआ है ।

"सा माधव त्वद् विरहेण दूना रसाल त्वां मुकुला कलायाम् ।
दृष्ट्वालिमाला मिलितामिदानीमाः किं त्वदग्रे हत जल्पितैस्तैः ॥"

माधव ! राधा,-तुम्हारे विरह से दुःखी है, और रसाल शाखा

ललितं प्रस्तुते वर्ण्यवाक्यार्थ-प्रतिबिम्बनम् ॥

प्रस्तुते धर्मिणि यो वर्णनीयो वाक्यार्थस्तमवर्णयित्वा तत्रैव तत्सरूपस्य कस्यचिदप्रस्तुतवाक्यार्थस्य वर्णनं ललितं । यथा-

अनायि देशः कतमस्त्वयाद्य वसन्तमुक्तस्य दशां वनस्य ।

के अग्रभाग में स्थित भ्रमर युक्त मुकुल को देखकर उसने जो कुछ कहा है, उसको तुम्हारे पास क्या कहूँ । यहाँ अन्तिम दशा में वह है, इस अंश को नहीं कहा गया है ।

"माधव नाहं दूती प्रियोऽसि तस्या स्त्वमित्यपि न वेद्मि ।
सा म्रियते तव कुयश स्तदिदं धर्म्मान्तरं वच्मि ॥

माधव ! मैं दूती नहीं हूँ, तुम उनका प्रिय हो, यह भी मैं नहीं जानती हूँ । वह मर जायेगी, यह तुम्हारा कुयश है, अतः मैं धर्म की बात कहती हूँ । यहाँ दूतीत्व कथन का निषेध है ।

"हरे गुणानां गणनातिगानां वाणीवचः सम्पद गोचराणाम् ।
न वर्णनीयो महिमेति यूयं जानीय तत्तत् कथने रलं नः॥"

श्रीहरि के गुण—अगणित है, और सरस्वती वाणी का भी अगोचरण है, अत अवर्णनीय महिमा है, केवल उन उन कथन से ही जानना यथेष्ट है, यहाँ उक्त कथन का ही निषेध है, यहाँपर प्रथम उदाहरण में उनका अवश्यम्भावि मरण सूचित है, द्वितीय में कहने में असमर्थ हूँ, तृतीय में दूतीत्व में अयथा वादित्व है । चतुर्थ में महिमा के द्वारा अलौकिकत्व अतिशयत्वादि हैं, वस्तुत विधि नहीं है, निषेध का आभास है ।

ललित अलङ्कार—"ललितं प्रस्तुते वर्ण्यवाक्यार्थ प्रतिबिम्बनम् ॥

प्रस्तुत धर्म्मी में जो वर्णनीय वाक्यार्थ है, उसका वर्णन न करके वहाँ उसके तुल्य किसी प्रस्तुत वाक्यार्थ का वर्णन से ललित अलङ्कार होता है । उदाहरण—

"अनायि देशः कतमस्त्वयाद्य वसन्तमुक्तस्य दशां वनस्य ।

त्वदाप्तसङ्केततया कृतार्था श्रव्यापि नानेन जनेन संज्ञा ॥

नलं प्रत्येतद्वाक्यं । अत्र कतमो देश स्त्वया परित्यक्त इति प्रस्तुतार्थमुपन्यस्य वसन्तमुक्तस्य वनस्य दशामनायीति तत्प्रतिबिम्बभूतार्थमात्रोपन्यासाल्ललितमलंकारः ॥६३॥

रसादीनां रसाङ्गत्वे रसवत् परिकीर्त्यते ।

यथा—कान्तश्चवोंत इत्यादि ॥ अत्र हास्याङ्गं शृङ्गारः ।

यथा वा—मुनि र्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसम्भवः ।
येनैकचुलुके दृष्टौ दिव्यौ तौ मत्स्यकच्छपौ ॥

त्वदाप्त सङ्केत तया कृतार्था श्रव्यापि नानेन जनने संज्ञा ॥"

वसन्त मुक्त वनकी दशा के तुल्य किसी स्थान को तुमने प्राप्त कराया तुम्हारे द्वारा प्राप्त सङ्केत से कृतार्थ संज्ञा का श्रवण उस व्यक्ति के द्वारा कभी भी नहीं हुआ । यह वाक्य नल के प्रति प्रयुक्त हुआ है । यहाँ प्रकरण प्राप्त है—तुमने किस देश को परित्याग किया है, इस प्रकार प्रस्तुतार्थ को कहने के निमित्त वसन्त मुक्त दशा को प्राप्त कराया कहा गया है, अर्थात् उसके प्रतिबिम्बार्थ स्वरूप का उपन्यास होने से ललित अलङ्कार हुआ है ।

रसवत् अलङ्कार—"रसादीनां रसाङ्गत्वे रसवत् परिकीर्त्यते ॥"

रसादि रसका अङ्ग होने से रसवत् अलङ्कार होता है । उदाहरण—'कान्तश्चवोन्त' इत्यादि । यह हास्याङ्ग शृङ्गार है ।

अथवा—"मुनिर्जयति योगीन्द्रो महात्मा कुम्भसम्भवः
येनैक चुलुके दृष्टौ दिव्यौ तौ मत्स्य कच्छपौ ॥

योगीन्द्र महात्मा कुम्भ सम्भव मुनि जय युक्त हो, जिन्होंने एक चुलुके से ही दिव्य मत्य कच्छप को दिखला दिया ॥ यहाँ मुनि विषयक भावाङ्ग—अद्‍भुत है ।

अत्र मुनिविषयक-भावाङ्गमद्भुतः ॥९४॥

भाव श्चेदङ्गतां याति रसादौ प्रेय उच्यते ॥

यथा—चेतो मदीयमित्यादि । अत्र स्मृतिरूपो भावो विप्रलम्भाङ्गं ॥९५॥

तदूर्जस्वि रसादौ चेदङ्गताभा स्तयो र्भवेत् ॥

अथवा—

"रस भावो तदा भासो भावस्य प्रशमस्तथा ।
गुणी भूतत्व मायान्ति यदा लङ्कृतयस्तदा ॥
रसवत् प्रेय ऊर्जस्वि समाहितमिति क्रमात् ॥

रसवदादि अलङ्कार चतुष्टय का वर्णन करते हैं—रस, भाव, भावाभास, भाव प्रशम, भाव शान्ति, ये सब जब गुणीभूत होते हैं, अर्थात् अन्य रस की अपेक्षा से अप्रधान होते हैं, तो रसवत् प्रेय, ऊर्जस्वि समाहित नामक अलङ्कार होते हैं। यहाँ आभास रूप से रसाभास भावाभास का एक रूपसे ही उल्लेख हुआ है। जिस समय एकरस अपर रस भावादि का अङ्ग होता है, तब प्रेयो रसवत् नामालङ्कार होता है। जब एक भाव,अपर भाव—रसादि का अङ्ग होगा, तब प्रेयो नामालङ्कार होगा। जब रसाभास, भावाभास, रस भावादि का अङ्ग होगा, तब ऊर्जस्वि नामालङ्कार होगा, जब भाव का प्रशम, रस भावादि का अङ्ग होगा, तब अर्जस्वि नामालङ्कार होगा, जब भाव का प्रशम, रस भावादिका अङ्ग होगा, तब समाहित नामक अलङ्कार होगा। उक्त चतुष्टय अलङ्कारों के मध्य में रस के योग से रसवदलङ्कार का उदाहरण यह है—"रसोऽस्य स्तीति रसवत्" प्रशंसार्थ में मत्वर्थीय वतु प्रत्यय है, रसान्तर से पुष्ट होने से रसका प्राशस्त्य होता है।

"सख्यं विचित्रं सुबलादिकां कृष्णस्य विज्ञाय निगूढ़ तृष्णाम् ।

तथा—त्वत्सैनिकहृतान्दारान्पुनः प्राप्य त्वदाज्ञया ।
मुदितै र्मथुरानाथ वन्द्यसे शात्रवैरपि ॥

अत्र शत्रु स्तुतिरूपो भावाभासो भगवद्विषयस्य भावस्याङ्गं ॥९६॥

शय्यां निकुञ्जे विरचय्य यत्नादानीय कान्तां रमयन्त्यमुं ये ॥

सुबल प्रभृतियों का विचित्र्य सख्य है, कृष्ण को निगूढ़ तृष्णा को जानकर—निकुञ्ज में शय्या रचना कर यत्न पूर्वक कान्ता को लाकर रमण कराते हैं। यहाँ सख्य रस का अङ्ग है शृङ्गार। अपर दृष्टान्त—धन्यं वृन्दारण्यं यस्मिन् विलसति प्रवर रमणीभिः ।
प्रति कुञ्ज प्रति पुलिनं प्रति गिरि कन्दरमसौ कृष्णः ॥"

वृन्दावन ही धन्य है, जिस में वर रमणीओं के सहित कृष्ण-प्रति कुञ्ज, प्रति पुलिन, प्रति गिरिकन्दर में विलास करते हैं। यहाँ वन वर्णन भाव का अङ्ग शृङ्गार है।

ऊर्जस्वि अलङ्कार—"तदूर्जस्वि रसादौचेदङ्गताभास्तयो र्भवेत् ॥

रसादि में यदि अङ्गता को रस भाव प्राप्त करते हैं--तो ऊर्जस्वि अलङ्कार होता है। निदर्शन—

"त्वत् सैनिक हृतान् दारान् पुनः प्राप्य त्वदाज्ञया ॥
मुदितै र्मथुरानाथ वन्द्यसे शात्रवैरपि ॥"

तुम्हारी सैनिकों के द्वारा अपहृत शत्रु पत्नी वृन्द को प्रत्यर्पण तुम्हारी आज्ञा से होने पर हे मथुरा नाथ! आनन्दित शत्रु वर्ग के द्वारा तुम प्रशंसित होते हो। यहाँ शत्रुस्तु रूप भावाभास भगवद् विषयक भावका अङ्ग है, प्रेय अलङ्कार--

"भावश्चेदङ्गतां याति रसादौ प्रेयउच्यते ॥

भाव—रसादि का अङ्गत्व प्राप्त होने से प्रेय अलङ्कार होता है। दृष्टान्त-चेतो मदीय मित्यादि। यहाँ स्मृति रूप भाव--विप्रलम्भ

का अङ्ग हुआ है।

अथवा—"प्रकृष्ट प्रियत्वात् प्रेयः" भाव--अपर का अङ्ग होने से प्रेयः होता है। उसकी उत्पत्ति यह है—

प्रकृष्ट प्रियत्वात् प्रेयः। उदाहरण—

"कान्ताङ्ग सङ्गम विलग्न विलेपनानि
शष्पेषु भान्ति पति तानि हरेः पदाब्जात्।
आलिप्य यानि हृदये विजहुः पुलिन्दच
स्तद्वेणुगीत मुख दर्शन कामजाधिम्॥"

श्रीहरि के चरणों से विलेपन घास में पतित हुआ था, जो विलेपन कान्ताङ्ग सङ्गम से लग्न था, पुलिन्द रमणी वृन्द जिसका विलेपन निजाङ्ग में करके वेणु गीत मुखदर्शन कामजाधि को प्राप्त किये। यहाँ शृङ्गार रस का अङ्ग पुलिन्द रमणी वृन्द का भाव है।

उदाहरणान्तर—

"वृन्दावन मति पुण्यं यस्मिन् कुसुमस्मितैः फलोरोजैः।
पल्लव कुलाधरैरपि सुखयति कृष्णं लतापालिः॥"

वृन्दावन, अति पवित्र है, जिस में लता समूह कुसुमित फल उरोज, पल्लव कुलाधर के द्वारा कृष्ण को सुखी करती हैं। यहाँ वन वर्णन में भाव का अङ्ग है, लताओं का भाव ऊर्जस्वि का सलक्षण उदाहरणान्तर—"ऊर्जो बलमनौचित्य प्रवृत्तौ तदत्रास्तीति ऊर्जस्वि॥

अनौचित्य प्रवृत्ति में ऊर्ज बलवत् होता है—दृष्टान्त—

"शुशुभुरचलदर्य्योयासुलीनं रमण्यो
हरिहत दनुजानां चण्ड रण्डाः पुलिन्दैः।
अशन सुरत सत्वैः पोषिता स्तोषिता स्तैः।
सहकृत गुण गानैः श्रीहरिं तास्तुवन्ति॥

गिरि कन्दरा-हरिहत दनुजों की स्त्रीयों पूर्णा है। पुलिन्द गण,–उन सब के सहित विहार करते हैं, एवं सह गान स्तुति के द्वारा श्रीहरि की स्तुति करते हैं। यहाँ गिरि वर्णन भाव का अङ्ग पर

अङ्गं रसादौ भावस्य प्रशम श्चेत् समाहितं॥
यथा–देवेन्द्रजित्सु पृथुकात्पृथुकोपमाद्भी
रस्मासु सत्सु न तवेति गिरा सुराणां।
कंसस्य यो हृदि मदः स तु तेषु सर्व
स्वाप्तेषु तत्पृथुकतां क्व गतो न जाने॥
अत्र मदप्रशम स्तस्याङ्गं॥९७॥

भावोदयादे रङ्गत्वे कथिता स्तत्तदाह्वयाः॥
भावोदय-भावसन्धि-भावशाबल्याख्या स्त्रयोऽलङ्कारा:॥

स्वो रति रूप रसाभास है। उसका अङ्ग शत्रु के द्वारा अनुष्ठित शत्रु स्तुति रूप भावाभास है।

समाहि अलङ्कार—"अङ्गं रसादौ भावस्य प्रशमश्चेत् समाहितम्॥

भाव का प्रशमन यदि रसादि में अङ्ग होता है तो समाहित अलङ्कार होता है।

निदर्शन—"देवेन्द्रजित्सु पृथुकात् पृथुकोपमाद्भी
रस्मासु सत्सु न तवेति गिरा सुराणाम्।
कंसस्य यो हृदि मदः स तु तेषु सर्व
स्वाप्तेषु तत्पृथुकतां क्व गतो न जाने॥

इन्द्र को पराजय कारी हम सब के रहते हुये चिपिटक के तुल्य बालक से तुम्हारा कोई भय नहीं है, इस प्रकार असुरों की वाणी से कंस को जो मद हुआ था, वह मद सब में व्याप्त होने पर कंस की बालकता जो कहाँ चली गई--नहीं जानता हूँ।

यहाँ मद प्रशम वीर रस का अङ्ग हुआ है। अर्थात् वीररस में मदाख्य, व्यभिचारि भाव का प्रशम अङ्ग है।

"भावोदयादे रङ्गत्वे कथिता स्तत्तदाह्वयाः॥
भावोदय-भावसन्धि-भावशाबल्याख्या स्त्रयोऽलङ्काराः॥"

यदा —मधुपानप्रवृत्तास्ते सुहृद्भिः सहः वैरिणः ।
श्रुत्वा कुतोऽपि त्वन्नाम लेभिरे विषमां दशाम् ।
अत्र राजविषयक-भावाङ्गं त्रासोदयः । एवमन्यत् ।।९८।९९।
१००।।

गुणीभूत होने से भावोदय, भावसन्धि, भाव शाबल्य नामक तीन अलङ्कार होने हैं । उदाहरण—

"मधपान प्रवृत्तास्ते सुहृद्भिः सह वैरिणः ।
श्रुत्वा कुतोऽपि त्वन्नाम लेभिरे विषमां दशाम् ।।"

सुहृद् वृन्द के सहित वैरिगण मधुपान रत थे, इस समय अकस्मात् कहीं से आप के नामसुनकर विषम दशाको प्राप्त किये थे ।

यहाँ राज विषयक भाव का अङ्ग है त्रासोदय । इस रीति से अपर उदाहरण को भी जानना चाहिये ।

भावोदय, भावसन्धि, भावशाबल्य का क्रमशः उदाहरण—

धर्मराज तव भ्रातु गान्धारी तनया शतं ।
भीमेति नाम श्रवणाल्लेभिरे विषमांदशाम् ।।

हे धर्मराज ! आपका भाई भीम है, इसको सुनकर ही गान्धारी के शत पुत्र विषम दशाको प्राप्त करते हैं । यहाँ त्रासादि राज विषयक रति भाव का अङ्ग है । यह भावोदय है ।

"जन्मान्तरीण रमणस्याङ्ग सङ्ग समुत्सुका ।
सलज्जो चान्ति के सख्याः पातु नः पार्वतीसदा ।।"

जन्मान्तरीण रमणके अङ्ग सङ्ग लाभ हेतु समुत्सुका पार्वती• सखी के समीप में सर्वदा लज्जाशीला पार्वती हम सब की रक्षा करें ।

यहाँ औत्सुक्य लज्जा की सन्धि, देवता विषयक रतिका अङ्ग है भाव सन्धि है ।

"पश्येत् कश्चित् चल चपल रे का त्वराहं कुमारी
हस्तालम्बं वितर ह ह हा व्युत्क्रमः क्वासि यासि ।

इत्थं धर्मात्मज नृप भवद् विद्विषो वन्यवृत्तेः
कन्या कश्चित् फल किसलयान्याददानाभि धत्ते ।।"

हे नृप धर्मात्मज ! आप के प्रभाव से वन्य वृत्ति परायण शत्रु की कन्या फल संग्रह रता होकर इस प्रकार कहती थी—चल-कोई देखलेगा, चपल त्वरा से प्रयोजन क्या है ? मैं तो कुमारी हूँ । हस्तावलम्बन दो, हाय--व्युत्क्रम से कहाँ जा रहे हो । तुम कहाँ हो ।

यहाँ शङ्का, असूया, धृति, स्मृति, श्रम, दैन्य, विरोध औत्सुक्य प्रभृतियों की शबलता, राज विषयक रति भाव का अङ्ग है ।

उक्त अलङ्कार विषय में विचार निम्नोक्त रूप है—

इह केचिदाहुः—वाच्यवाचक रूपालङ्करणमुखेन रसाद्युपकारका एवालङ्काराः । रसादयस्तु वाच्य वाचकाभ्यामुपकार्या एवेति न तेषामलङ्कारता भवितु युक्तेति ।

अन्येतु रसाद्युपकारत्वमात्रेमालङ्कार व्यपदेशो भाक्तश्चिरन्तन प्रसिद्ध्याङ्गीकार्य एव इति ।

अपरे तु रसाद्युपकार मात्रेणालङ्कारत्वं मुख्यतः रूपकादौ वाच्याद्युपधानमजागल स्तन न्यायेनेति ।

अभियुक्तास्तु "व्यञ्जक वाचक वाच्याद्युपकृते रङ्ग भूतै रसादिभि रङ्गिणो रसादेर्वाच्य वाचकोपकारद्वारेणोपकुर्वद्भि रलङ्कृति व्यपदेशोलभ्यते ।

समासोक्तौ तु नायकादि व्यवहार मात्रस्यैवालङ्कृतिता नतु आस्वादस्य तस्योक्तरीति विरहादिति" मन्यन्ते ।

अतएव ध्वनि कारेणोक्तम्—"प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गानि रसादयः ।
काव्ये तस्मिन्नलङ्कारा रसादिरिति मे मतिः ।।"

यदि रसाद्युपकार मात्रेणालङ्कृतित्वं तदा वाचकादिष्वापि तथा प्रसज्जेत । एवञ्च यत् कैश्चिदुक्तं-'रसादीनामङ्गित्वे रसवदाद्यलङ्कारः अङ्गत्वे तु द्वितीयोदात्तालङ्कारः । तदपि परास्तम् ।

"यद्येतएवालङ्कारा: परस्पर विमिश्रिता:
तदा पृथगलङ्कारौ संसृष्टि: सङ्करस्तथा ॥"

यथा लौकिकालङ्काराणां परस्परं विमिश्रत: पृथक् चारुत्वेन पृथगलङ्कारत्वं, तथोक्तरूपाणां काव्यालङ्काराणामपि परस्पर मिश्रत्वे संसृष्टि सङ्कराख्यौ पृथगलङ्कारौ ।

तत्र—"मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थिति: संसृष्टि रुच्यते
एतेषां शब्दार्थालङ्काराणाम् ।

यथा—"देव: पायादपायाद्व: स्मेरेन्दीवर लोचन: ।
संसार ध्वान्तविध्वंस हंस: कंस निसूदन: ॥"

अत्र पायादपायादिति यमकम्, संसार ध्वान्त विध्वंस हंस: कंस निसूदन: । संसारे सादौ चानुप्रास: । इति शब्दालङ्कारयो: संसृष्टि: । द्वितीय पादे उपमा, द्वितीयार्द्ध च रूपकमित्यर्थालङ्कार संसृष्टि: । एवं शब्दालङ्कार संसृष्टे रर्थालङ्कार संसृष्टेश्चस्थितत्वात् संसृष्टि: ।

अथवा—"सुरतरुतेष वतानां सुरतरुचि र्गोपरमणीनाम् ।
त्रिभुवन जन कमनीयो जयति व्रजराज युवराज: ॥"

अत्र शब्दालङ्कारयो र्यमकानु प्रासयो: संसृष्टि: ।

"आलुम्पताव परितोमनस: प्रसाद मालुञ्चतीवपदवीं नयनद्वयस्य ।
उद्वेल कज्जल महोदधिवद् गम्भीरो मोहान्धकार इवमोह इवान्धकार: ॥"

अत्रालङ्कारयो: समासगोत् प्रेक्षान्योन्योपमयो: संसृष्टि: ।
मेघे माघवने मणावपि घृणानिर्वाहको नीलिमा ।
सामानाधिकरण्य मत्र किमहो चित्र तमस्तेजसो: ।
तत्र शब्दार्थालङ्कारयो: अनुप्रास विरोधयो: संसृष्टि ॥"

कतिपय व्यक्ति रसवत् प्रभृति को अलङ्कार नहीं मानते हैं । उसको निरसन कर स्वमत स्थापन हेतु कहते हैं—"अलङ्क्रियते अनेनेति अलङ्करणम् । तथा च वाच्य अर्थ, वाचक शब्द, उभय रूप

यदि अलङ्करण अलङ्कार के हेतु हो, उस से रसादि का उपकारक-पुष्टि जनक शब्दार्थ मात्र वृत्ति वैचित्र्य रूप धर्म्म है । अतएव रसवदादि अलङ्कार नहीं हो सकते हैं । आदि शब्द से भाव, रसाभास भावाभास सन्धि शबल को भी जानना होगा

अन्य मत में अङ्गीभूत रसादि का उपकार मात्र से यथा कथञ्चित् सामान्य रूपसे है, पुष्टि मात्र से रसवदादि में अलङ्कार का प्रयोग होता है । यह गौण है, प्राचीन परम्परा से अलङ्कार ख्याति है, किन्तु शब्दार्थान्यतर घटित वैचित्र्य विशेष के समान वास्तविक अलङ्कार नहीं है ।

अपर मत यह है—मुख्य रूपसे सन्देहादि अलङ्कार में अर्थ शब्द की शोभा सम्पादन होता है. अजागलस्तन नीति से जो पदार्थ रसादि का मुख्य पोषक है, वह मुख्य अलङ्कार है । रूपक सन्देहादि में रसादि का उपकार को छोड़कर शब्दार्थ की शोभा सम्पादकत्व है, वह स्वभाव प्राप्त अजागलस्तन के समान है । अर्थात् निरर्थक है । इस मत में रसवदादि का गौण अलङ्कारत्व है ।

निजमत समर्थन निबन्धन कहते हैं—सर्वमान्य व्यक्तिगण कहते हैं—वाच्य वाचक अर्थ—शब्द का उपकरण के हेतु अध्याहार से 'अयं च रसनोत्कर्षी' यहाँ शृङ्गार रस व्यञ्जक शब्दार्थ युक्त पद्य में करुण रस व्यञ्जक शब्दार्थाध्याहार से अङ्गी रसादिका पोषक होता है, अत: अलङ्कार नाम होता है । शब्दार्थ के तुल्य अङ्गभूत रसादि का भी रसादि का उपकारकत्व है ।

एक रसादि स्थल में उसका निर्वाह कैसे होगा ! उत्तर में कहते हैं—एकमात्र रसादि उपकार समासोक्ति अलङ्कार में आस्वाद्यान्तर के अभाव से उपकारकत्व नहीं होगा ।

नायकादि व्यवहार मात्र को ही अलङ्कारिता है । किन्तु आस्वाद का नहीं । अतएव ध्वनि कारने कहा है—अङ्गभूत रसादि का उपकारक होने से अङ्गभूत रसादि का अलङ्कार संज्ञा होती है ।

जिस काव्य में अन्यत्र रसादि वाक्यार्थ में प्रधान होने से रसादि अङ्ग होते हैं, उपकारक होने के कारण उस काव्य में रसादि अङ्गभूत है। अतएव यह अलङ्कार होगा, इस में मेरी सम्मति है। इससे प्रतीत होता है कि—ध्वनिकारके मतमें भी रसवदादि का अलङ्कारत्व है।

कतिपय व्यक्ति कहते हैं—रसादि का उपकारक होने से यदि अलङ्कार होता है, तब वाचकादि का भी अलङ्कारत्व होना चाहिये। उससे रसादि का अङ्गित्व--प्रधानत्व, होने से रसवदादि का अलङ्कारत्व होगा, अङ्गत्व-उपकारकत्व होने से द्वितीयोदात्तादि का अलङ्कारत्व होता है, यह कथन भी परास्त हुआ।

अङ्गीरसादि का केवल उपकार्य्य होने से उपकारकत्व का अभाव से अलङ्कार ही नहीं होगा। अङ्ग होने से उपकारक होकर रसवदादि का अलङ्कारत्व होगा।

पृथक् पृथक् रूपसे सब अलङ्कारों का वर्णन करके पश्चात् एकत्र अनेक अलङ्कारों का वर्णन करते हैं। एक पद्य एवं गद्य में शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार पृथक् पृथक् रूप से होना सम्भव है। तथापि संसृष्टि नामक पृथक् अलङ्कार जानना होगा। अनेक वैचित्र्य एकत्र होने से उसका पृथक् नाम होना आवश्यक है। जिस प्रकार लौकिक अलङ्कार कटक कुण्डल पृथक् पृथक् होने पर भी मिश्रित रूप अलङ्कार विशेषसे मनोहर होता है, उस प्रकार काव्यालङ्कार परस्पर मिश्रित होकर संसृष्टि सङ्कर नामक पृथक् अलङ्कार होता है। उस में परस्पर अपेक्षा शून्य रूप में शब्दर्थालङ्कार की स्थिति होने से संसृष्टि संज्ञा होती है।

उदाहरण—देव कंसनिसूदन कृष्ण! आप सब को रक्षा विपत्ति से करें। आप के नयन युगल प्रस्फुटित नील कमल के तुल्य हैं। संसारान्धकार विनाश हेतु सूर्य्य स्वरूप हैं, एवं कंस निहन्ता हैं। यहाँ पायात् अपायात् यमक, संसार अनुप्रास है। शब्दालङ्कार की संसृष्टि है। द्वितीय पाद में उपमा है। द्वितीयार्द्ध में रूपक होकर अर्थालङ्कार की संसृष्टि हुई है। इस प्रकार दोनों की स्थिति से शब्दार्थालङ्कार

अथ प्रमाणालङ्काराः।

प्रमाणजन्या प्रमितिः प्रमाणालङ्कृतिः स्मृता ॥

तत्र प्रत्यणम्। यथा—

की संसृष्टि हुई है।

ध्वान्त विध्वंस—ध कार के अनेक धा--सकृत साम्य से छेकानुप्रास हुआ है, विध्वंस—कस--पदगत अन्त्यानुप्रास, ससार, हस, निसूदन, सकार का असकृत साम्य से वृत्त्यनुप्रास है, परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थिति होने से संसृष्टि होती है। विवप् समासगता द्वेधा धर्मवादि विलोपने—समासगता लुप्तोपमा है। संसार में ध्वान्तत्वारोप—श्रीकृष्णमें हंसत्वारोप का निमित्त है। अश्लिष्ट शब्द निबन्धन केवल परम्परित रूपक है। यमकानुप्रास रूप शब्दालङ्कार-उपमा रूपक रूप अर्थालङ्कार है। ये सब परस्पर अपेक्षा रहित होकर हैं। उदाहरण—प्रणत व्यक्तियों के पक्ष में सुरतरु हैं, गोपरमणीयों की सुरतरुचि हैं। त्रिभुवन जन कमनीय हैं, व्रजराज युवराज जय युक्त हों। यहाँ शब्दालङ्कार यमकानुप्रास की संसृष्टि है।

मनको सब प्रकार विषय ग्रहण प्रसन्नता से हटाकर, नयनद्वय के विषय को हटा देते हैं, उद्वेल कज्जल महोदधि के तुल्य गभीर—मोहान्धकार मोह के समान अन्धकार है।

यहाँ समासगतोत्प्रेक्षा अन्योन्य उपमाकी संसृष्टि है। मेघ माधवन मणि में घृणा निर्वाहक नीलिमा है, किन्तु आश्चर्य का विषय है कि—यहाँ तम एव तेजः का सामानाधिकरण्य है। यहाँ शब्दार्थालङ्कार अनुप्रास विरोध की संसृष्टि है।

अथ प्रमाणालङ्काराः।

प्रमाणालङ्कार का वर्णन करते हैं।

"प्रमाण जन्या प्रमितिः प्रमाणालङ्कृतिः स्मृता।"

कलवाक्यान्मृदुस्पर्शात्सौन्दर्य्यादधरासवात् ।
सौरभाच्चापि मे तन्वि हरसीन्द्रिय-पञ्चकम् ॥

अत्रेन्द्रियतृष्णाजन्यं प्रत्यक्षमलंकारः ॥ तथा वा-आसन्-पद्माकरे स्त्रीणामित्यादि । अत्र भ्रमानन्तरं चाक्षुषं तत् ।१०१

अथानुमानं–जानीमहेऽस्या हृदि सारसाक्ष्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्रचन्द्रः ।
तत्कान्तिजालैः प्रसृतैस्तदङ्गे ष्वापाण्डुता कुट्मलताक्षिपद्मे ।

अस्या हृदयं प्रियवदनचन्द्रवदिति रूपकविच्छित्त्या संजातानुमितिरलङ्कारः । वह्निमान् धूमादित्यादौ तु नायं, विच्छित्तिविरहात् ॥१०२॥

प्रमाण जन्य जो निश्चय ज्ञान-उसको प्रमाणालङ्कार कहते हैं । उसके मध्य में प्रत्यक्ष का प्रदर्शन करते हैं–

"कलवाक्यान् मृदु स्पर्शात् सौन्दर्य्यादधरा सवात् ।
सौरभाच्चापि मे तन्वि हरसीन्द्रिय पञ्चकम् ॥"

हे तन्वि ! मधुर वाक्य, मृदु स्पर्श, सौन्दर्य्य अधरासव एवं सौरभ ग्रहण से भी तुम मेरी पञ्चेन्द्रिय को आकर्षण कर रही हो । यहाँ इन्द्रिय तृष्णाजन्य प्रत्यक्ष अलङ्कार है । आसन् पद्माकरे स्त्रीणाम् " यहाँपर भ्रमके पश्चात् चाक्षुष प्रत्यक्ष हुआ है ।

अनुमान अलङ्कार—

"जानीमहेऽस्या हृदि सारसाक्ष्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्र चन्द्रः ।
तत् कान्ति जालैः प्रसृतैस्तदङ्गेष्वापाण्डुताकुट्मलताक्षिपद्मे ॥"

कमलनयनी के हृदय में प्रियवक्त्र चन्द्र विराजित है, मैं जानता हूँ । कारण–उसके विस्तृत कान्ति समूह के द्वारा अङ्ग में शुभ्रता आजाने से नयन कमल मुकुलित हुआ है ।

अथोपमानं यथा—तां रोहिणीं विजानीहि ज्योतिषामत्र मण्डले ।
यस्तन्वि ! तारकान्यासः शकटाकार माश्रितः ॥

अत्रोपमानमूलमतिदेशवाक्यं । शकटाकारा रोहिणीत्युपमितिः ॥१०३॥

अथ शाब्दः—वेदास्तथा स्मृतिगिरो यमचिन्त्यशक्ति
सृष्टिस्थितिप्रलयकारणमामनन्ति ।
तं श्यामसुन्दरमविक्रियमात्ममूर्त्तिं
सर्वेश्वरं प्रणतिमात्रवशं भजामः ॥

यहाँ "इस का हृदय प्रिय वदन चन्द्रवत् है," रूपक विच्छित्ति के द्वारा अनुमिति अलङ्कार हुआ है । किन्तु 'वह्निमान् धूमात्" स्थल में विच्छित्ति के अभाव हेतु अलङ्कार नहीं हुआ है ।

उपमान अलङ्कार–"तां रोहिणीं विजानीहि ज्योतिषामत्र मण्डले ।
यस्तन्वि ! तारकान्यासः शकटाकारमाश्रितः ॥"

हे तन्वि ! ज्योति मण्डल में शकटाकार जो तारका विन्यस्त है, उस को रोहिणी जानना । यहाँ उपमान मूलक अतिदेश वाक्य है, अन्यतुल्यत्व विधानमतिदेशः । अ त पूर्व दिश धातु के उत्तर भाववाच्य में अल्प्रत्यय से अतिदेश शब्द निष्पन्न हुआ है । अन्य धर्म का अन्यत्र आरोप, यथा गो सदृशो गवयः ॥ "शकटाकारा रोहिणी" इस प्रकार उपमिति होती है ।

शाब्द अलङ्कार—वेदास्तथा स्मृतिगिरो यमचिन्त्यशक्ति
सृष्टिस्थितिप्रलयकारणमामनन्ति ।
तं श्यामसुन्दरमविक्रियमात्ममूर्त्तिं
सर्वेश्वरं प्रणतिमात्रवशं भजामः ॥

वेद एवं तदनुगत स्मृति शास्त्र समूह—जिन अचिन्त्यशक्ति

अत्र निर्विकारचैतन्यमूर्त्तिरीश्वरो जगद्धेतुरित्यत्र श्रुत्यादि-प्रमाणमुक्तं, तज्जन्या शाब्दी प्रमितिः। एवमाचारविषयाः स्मृतयः, श्रुतिलिङ्गादयश्च षट् बोध्याः ॥१०४॥

अथार्थापत्तिः।—निर्णेतुं शक्यमस्तीति मध्यं तव नितम्बिनि।

अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः॥

अत्राकुचस्थित्यन्यथानुपपत्तिप्रभवार्थापत्तिं मध्यसत्वे प्रमाणमिति तन्निश्चयरूपा प्रमितिः ॥१०५॥

अथानुपलब्धिः। यथा—स्फुटमसदवलग्नं तन्वि निश्चिन्वते ते

तदनुपलभमाना स्तर्कयंतोऽपि लोकाः।

सम्पन्न को जगत् के सृष्टि स्थिति प्रलय के कारण मानते हैं,--उन अविक्रिय आत्ममूर्त्ति प्रणति मात्र बश सर्वेश्वर श्यामसुन्दर का-भजन हम सब करते हैं।

यहाँ निर्विकार चैतन्य मूर्त्ति ईश्वर जगद् के हेतु हैं, इस विषय में श्रुत्यादि प्रमाण कहे गये हैं। तज्जन्य "शाब्दी प्रमितिः। इसी प्रकार आचार विषयक स्मृति समूह होती है। श्रुति, लिङ्ग वाक्य, प्रकरण स्थान समाख्या" को भी जानना होगा।

अर्थापत्ति—अलङ्कार—प्रस्तुत करते हैं—

"निर्णेतुं शक्यमस्तीति मध्यं तव नितम्बिनि।

अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः॥"

हे नितम्बिनि! तुमारे कटिदेश है—यह निर्णय किया जा सकता है, अन्यथा पयोधर भर स्थिति अनुपलब्ध होगी।

यहाँ पर कुच द्वय की अन्यथानुपपत्ति हेतु मध्य भाग की विद्यमानता में प्रमाण है। अतः उसकी निश्चय रूपा प्रमिति है।

अनुपलब्धि अलङ्कार—"स्फुटमसदवलग्नं तन्विनिश्चिन्वते ते

तदनुपलभमाना स्तर्कयंतोऽपि लोकाः।

कुलगिरिवरयुग्मं यद्विनाधारमास्ते तदिह मकरकेतो

रिन्द्रजालं प्रतीमः॥

अत्र मध्यानुपलब्धि र्मध्याभावे प्रमाणं, ततो मध्यं नास्तीति प्रमितिः ॥१०६॥

अथ सम्भवः। स च सहस्रे शतं सम्भवतीति बुद्धौ सम्भावना। यथा—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयत्यवज्ञां

जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।

उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा

कालो ह्ययं निरवधि र्विपुला च पृथ्वी॥

अत्र समानधर्म-विशिष्टस्य जनस्योत्पत्तिस्थिती संभवारूढेन

कुलगिरिवरयुग्मं यद्विनाधारमास्ते

तदिह मकरकेतो रिन्द्रजालं प्रतीमः॥

हे तन्वि तुम्हारे कटिदेश है ही नहीं—इस प्रकार निश्चय होता है। उसको न देखकर लोक तर्क करने लगते हैं कि—कुलगिरि युगल जिस के बिना अवस्थित हैं, यह तो मकराङ्क का इन्द्रजाल है।

यहाँ मध्यदेश की अनुपलब्धि--कटिदेश के अभाव में कारण है। अतः मध्यदेश दिखाई नहीं पड़ता है, यह प्रमिति है।

सम्भव अलङ्कार सहस्र संख्या में शत होना सम्भव है।

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयत्यवज्ञां

जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।

उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोपि समानधर्मा

कालो ह्ययं निरवधि र्विपुला च पृथ्वी॥

कतिपय व्यक्ति हमें अवज्ञा करें, एवं कतिपय व्यक्ति कुछ भी

प्रमाणेन सिद्धेऽस्ति [illegible] कालानन्त्यपृथ्वी-वैपुल्ये भवतः ॥१०७॥

अथैतिह्य-तच्चाज्ञातवक्तृकं पारंपर्य्यप्रसिद्धमेव। यथेह तरौ यक्षो निवसतीति ॥ उदा०—

> कल्याणी वत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे।
> राति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥

इह लौकिकी गाथेत्यनिर्दिष्टवक्तृकं प्रवाहपारम्पर्य्यमुक्तं।१०८

अथ पूर्वोक्तैरनुप्रासाद्यैरैतिह्यान्तैरलङ्कारैः संसृष्टिसंकरौ

धारणा करें, उस में दृष्टि देना ठीक नहीं है। कारण, मेरा समान धर्मा कोई भी व्यक्ति उत्पन्न होगा, कारण यह काल अवधि शून्य है, और पृथिवी भी विपुला है।

यहाँ समान धर्म विशिष्ट व्यक्ति की उत्पत्ति, सम्भव नामक प्रमाण के द्वारा सिद्ध होने पर उसका उपपादक अनन्त काल एवं विपुला पृथिवी है।

ऐतिह्य अलङ्कार अज्ञात वक्ता की परम्परा से समागत विषय को ऐतिह्य कहते हैं जिस प्रकार कहा जाता है, इस वृक्ष में यक्ष निवास करता है। उदाहरण—

> "कल्याणी वत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे।
> राति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि।

मङ्गलमयी यह गाथा लौकिकी प्रतीति होती है कि-जीवित मनुष्य को शतवर्ष से आनन्द प्रदान करती आ रही है। यहाँ लौकिकी गाथा--शब्द से अनिर्दिष्ट वक्ता के द्वारा प्रवाह परम्परा का बोध होता है।

संसृष्टि सङ्कर नामक अलङ्कार का वर्णन करते हैं।

नाम स्याताम् ॥ यथा मणिस्वर्णादि-संयोगे चारुत्वातिशयो पृथगलङ्कारस्तथानुप्रासोपमादिसंयोगे संसृष्टिः सङ्करश्च तादृक् पृथगलङ्कारो नृसिंहाकारवपुः। संसृष्टौ तिलतण्डुल-न्यायेन सङ्करे तु क्षीरनीरन्यायेनालङ्कारसंयोगः। तथाहि—

> सा स्यात्संसृष्टिरेतेषां पृथगेकत्र या स्थितिः।

पूर्वोक्तानामलङ्काराणामेकस्मिन् काव्ये मिथो निरपेक्षा स्थितिः संसृष्टिः ॥ यथा—

> कृष्णः पायादपायान्नः पूर्णेन्दु-सदृशाननः।
> भक्तहृत्सरसीहंस कंसवंशनिसूदनः ॥

अत्र पायादपायादिति यमकं कंसवंशेत्यनुप्रासः। अनयोः

अनुप्रास से आरम्भ कर ऐतिह्य पर्य्यन्त यावतीय अलङ्कारों के सम्मिलन से संसृष्टि सङ्कर नामक अलङ्कार होते हैं। जिस प्रकार मणि स्वर्णादि सयोग से चारुतातिशय निबन्धन पृथक् अलङ्कार होता है, उसी प्रकार अनुप्रास उपमा प्रभृति अलङ्कारों के संयोग से संसृष्टि एवं सङ्कर नरसिंहाकारवत् पृथक् अलङ्कार होते हैं। संसृष्टि में तिल तण्डुल न्याय से एवं सङ्कर में क्षीर नीरन्याय से अलङ्कार का संयोग होता है। संसृष्टि का लक्षण—

> "सा स्यात् संसृष्टिरेतेषां पृथगेकत्र या स्थितिः।"

पृथक् पृथक् अस्तित्व विद्यमानता में पारस्परिक मिलन से संसृष्टि अलङ्कार होता है। अर्थात् पूर्वोक्त अलङ्कारों का काव्य में पारस्परिक निरपेक्षा स्थिति होने से संसृष्टि अलङ्कार होता है।

निदर्शन—"कृष्णः पायादपायान्नः पूर्णेन्दु सदृशाननः।
भक्तहृत्सरसीहंसः कंसवंशनिसूदनः ॥

पूर्णेन्दु सदृशानन भक्तहृत् सरसीहंस कंसवंश निसूदन कृष्ण—विनाश से हम सब की रक्षा करें।

संसृष्टिः। पूर्णेति भक्तेति चोपमारूपकयोः, एवं संसृष्टचोऽन्य सा बोध्या। यथा वा–

वृन्दावनद्रुमतलेषु गवां व्रजेषु वेलावसान-समयेषु च मृग्यते यत्।
तद्वेणुवादनपरं शिखिपिच्छचूडं ब्रह्म स्मरामि कमलेक्षणम्-अभ्रनीलं ॥

अत्र पूर्वार्द्धे तुल्ययोगिता तुर्य्यपादे तूपमानयोः संसृष्टिः।१०६

स्थितिरङ्गाङ्गिभावेन तद्वदेकाश्रयेण चेत्।।
सन्दिग्धत्वेन न चैतेषां तदा स्यात्संकर स्त्रिधा।

यहाँ "पायादपायात्" यमक है, एवं "कंसवंश" स्थल में अनुप्रास है। उभय की संसृष्टि हुई है। "पूर्णेन्दु सदृशानन:" एवं "भक्त हृत् सरसी हंस" स्थल में उपमा एवं रूपक है। उभयके मिलन से संसृष्टि अलङ्कार हुआ है।

उदाहरणान्तर—"वृन्दावन द्रुमतलेषु गवां व्रजेषु
वेलावसान समयेषु च मृग्यते यत्।
तद् वेणु वादन परं शिखिपिच्छ चूड़–
ब्रह्म स्मरामि कमलेक्षणमभ्रनीलम् ॥"

वृन्दावन के तरुतल में, गोष्ठ में एवं वेलावसान समय में जिन का अनुसन्धान होता है, कमलेक्षण मेघश्याम वेणुवादन परायण शिखिपिच्छ चूड़ उन ब्रह्म का स्मरण करता हूँ।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में तुल्य योगिता अलङ्कार है, एवं चतुर्थ पाद में उपमान अलङ्कार है, उभय के मिलन से संसृष्टि अलङ्कार हुआ है। सङ्कर अलङ्कार का वर्णन करते हैं—

"स्थितिरङ्गाङ्गि भावेन तद्वदेकाश्रयेण चेत्।
संदिग्धत्वेन चैतेषां तदास्यात् सङ्कर स्त्रिधा ॥"

तत्राङ्गाङ्गिभावेन स्थिति र्यथा—

वदनमृगाङ्कं सुदृशो वक्षसि नक्षत्रमालिकां वीक्ष्य।
उदितेऽपि पूष्णि कोकी विशंकयासौ प्रवेपते रात्रेः ॥

अत्र रूपकमङ्गं भ्रान्तिमानङ्गी। यथा वा। अनुरागवती सन्ध्येत्यादि। अत्र समासोक्ति र्विशेषोक्ते रङ्गं। एकाश्रयणेन स्थिति र्यथा–

राजते रघुवर्य्यस्य कीर्त्तिः कुन्देन्दु-सुन्दरी।

अत्र व्यतिरेकानुप्रासयो रेकपदाश्रयणेन स्थितिः।

यथा वा–नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन्श्रेय एव महोदयम्।
यशोधा वा महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥

अङ्गाङ्गि भाव से—एकाश्रय से एवं सन्दिग्धरूप से अलङ्कारों की एकत्र स्थिति होने से तीन प्रकार सङ्कर अलङ्कार होते हैं। अङ्गाङ्गि भाव से स्थिति का दृष्टान्त—

"वदन मृगाङ्क सुदृशो वक्षसि नक्षत्र मालिकां वीक्ष्य।
उदितेऽपि पूष्णि कोकी विशङ्कयासौ प्रवेपते रात्रेः ॥"

सु नयनी के वक्षस्थल में नक्षत्र मालिका एवं वदन चन्द्र को देखकर सूर्य्योदय होने पर भी कोकी रात्रि की शङ्का से कम्पित होने लगी।

यहाँ रूपक अङ्ग है, एवं भ्रान्तिमान् अङ्गी है। जैसे "अनुरागवती संध्या" यहाँ समासोक्ति विशेषोक्ति का अङ्ग है।

एकाश्रय से स्थिति का दृष्टान्त—

"राजते रघुवंशस्य कीर्त्तिः कुन्देन्दु सुन्दरी ॥

रघुवर्य्य की कुन्देन्दु सुन्दरी कीर्त्ति विराजित है। यहाँ व्यतिरेक अनुप्रास की स्थिति एकपदाश्रय से हुई है।

यस्य नन्दस्य । स्तनं शब्दं वाक्यं पपौ पालितवानिति प्रथमोऽर्थः । अत्रानुमानश्लेषयोरेकपादाश्रयणेन स्थितिः । संदिग्धत्वेन स्थिति यथा—

मुखाब्जं तव पश्यामो दशनद्युतिकेशरं ॥

अत्र रूपकमुपमा वेत्यनिश्चयात्सन्देहः । एकतर-युक्त्यनुपलम्भात् । यथा वा । दोर्भ्यां संयमित इत्यादि । (८०) अत्र विशेषोक्ति—विभावनयोः सन्देहेन संकरः । अनुकूलार्थान्तरन्यासयो स्तयो श्चैकाश्रयणेन स्थित्या च

अन्योदाहरण—"नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एव महोदयम् ।
यशोधा वा महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥

हे ब्रह्मन् ! नन्द एवं महाभागा यशोदा ने अत्युत्तम श्रेयस्कर अनुष्ठान क्या किया है--जिस से हरिने उनका स्तन पान किया ? यस्य नन्दस्य, स्तनं शब्दं, वाक्यं, पपौ--पालितवानिति प्रथमोऽर्थः ।

द्वितीय अर्थ–सुस्पष्ट है । यहाँ अनुमान श्लेष की एक पादाश्रय से स्थिति हुई है । सन्दिग्ध रूप से स्थिति का उदाहरण—

"मुखाब्जं तव पश्यामो दशनद्युति केशरम् ॥

दशनद्युति केशर युक्त तुम्हारे वदन कमल को देखता हूँ ।

यहाँ रूपक है, अथवा उपमा है– निश्चय न होने के कारण-सन्देह हुआ है । कारण—एकतर निर्णय हेतु युक्ति का अभाव है । अन्योदाहरण—"दोर्भ्यां संयमितः पयोधर भरेणापीडितः पाणिजै
राविद्धोदशनैः क्षताधर पुटः श्रोणितदनाहता ।
हस्तेनानमितःकचेऽधर सुधापानेन सम्मोहितः ।
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामागतिः ॥"

यहाँ विशेषोक्ति विभावना का सन्देह हेतु सङ्कर हुआ है । अनुकूल एवं अर्थान्तर न्यास अलङ्कार की एकाश्रय में स्थिति हेतु

सः । एकतरयुक्तेरुपलम्भे तु न सन्देह--संकरः । यथा—

तवेदं श्रीकरग्राहि मुकुन्द करपङ्कजं ।

अत्र करस्यैव श्रीकरग्रहः संभवेदित्युपमायाः साधिका युक्ति र्बाधिका तु रूपकस्य । यथा वा–त्वां विद्वद्भास्करं संज्ञा समालिङ्गति सर्वदा ॥

अत्रालिङ्गन मुपमाया बाधकं । सत्याः पतितुल्ये तस्यासम्भवात् ॥११०॥

अथैषामलङ्काराणां केचन दोषाः सन्ति, ते तूक्तेषु दोषेष्वन्तर्भवन्त्यतः पृथङ् न लक्ष्यन्ते । तथाहि वैफल्यमप्रसिद्धी रीत्ययोग्यता चानुप्रासस्य दोषः ।

सङ्कर अलङ्कार हुआ है ।

एकतर युक्ति उपलब्ध होने से सन्देह सङ्कर नहीं होगा ।

उदाहरण—"तदेवं श्रीकरग्राहि मुकुन्द करपङ्कजम् ॥

मुकुन्द कर पङ्कज तुम्हारे श्रीकरग्राहि है । यहाँ कर का ही श्रीकरग्रह होना सम्भव है । इस प्रकार उपमासाधिका युक्ति रूपक की बाधिका है । अपरोदाहरणम्—

"त्वां विद्वद् भास्करं संज्ञा समालिङ्गति सर्वदा ॥

विद्वद् भास्कर रूप तुमको संज्ञा सर्वदा आलिङ्गन करती है । यहाँ आलिङ्गन उपमा का बाधक है ।

अनन्तर अलङ्कारों के दोष समूह का वर्णन करते हैं । अलङ्कारों के कतिपय दोष हैं । दोष समूह उन सब दोषों में ही अन्तर्भाव होंगे अतः पृथक् लक्षण नहीं करते हैं । वैकल्य अप्रसिद्धिरिति अयोग्यता अनुप्रास अलङ्कार का दोष है । वह अपुष्टार्थत्व प्रसिद्धि

स चापुष्टार्थत्वं प्रसिद्धिविरोधः प्रतिकूलाक्षरत्वं च क्रमात् ।
क्रमेणोदा० — सुन्दरो नन्दपुत्रोऽसौ कंस त्वद्वंशनाशनः ॥

अत्रानुप्रासो वाच्यापोषकत्वाद्विफलः ॥

वृन्दारकाणां सन्दोहः कुन्देन्दु-प्रतिमो बभौ ॥

अत्र सर्वेषां देवानां शौक्ल्यमप्रसिद्धम् ॥

शिखण्डिताण्डवे भामा कामकाण्डैर्विखण्डिता ॥

अत्र शृङ्गारे गौड़ो रीतिरयुक्ता । यमकस्य त्रिपाद्यां स्थितिरप्रयुक्ता ॥

यथा— सारसं तत्र पश्यन्ती सारसं नवयौवना ।
प्रेयसि श्रीहरौ सुभ्रूः सारसं प्रत्यपद्यत ॥

विरोध, एवं प्रतिकूलाक्षरत्व क्रमश दोष है । उदाहरण—
"सुन्दरो नन्द पुत्रोऽसौ कंस त्वद् वंशनाशनः ॥

हे कंस ! वह सुन्दर नन्दनन्दन तुम्हारे वंशहन्ता है । यहाँपर अनुप्रास वाच्य का पोषक न होने के कारण—विफल है ।

"वृन्दारकाणां सन्दोह कुन्देन्दु प्रतिमो बभौ" वृन्दारक समूह कुन्द एवं इन्दु के तुल्य हुये थे । यहाँ समस्त देवताओं का शुक्लत्व अप्रसिद्ध है ।

"शिखण्डिताण्डवे भामा काम काण्डे विखण्डिता ॥

कोपना नायिका मयूर नृत्य में कामुकी रीति से विखण्डिता हुई । यहाँ शृङ्गार रस में गौड़ी रीति का प्रयोग अयुक्त है । त्रिपदी में यमक की स्थिति भी अप्रयुक्ता है । उदाहरण—

"सारसं तत्र पश्यन्ती सारसं नव यौवना,
प्रेयसी श्रीहरौ सुभ्रूः सारसं प्रत्यपद्यत ॥

वह नव यौवना भाव पूर्ण रूप से कमल को देखती रहती । प्रिय श्रीहरि में सुभ्रू ने राजहंस का बोध किया ।

उपमायामसादृश्यासम्भवावनुचितार्थता ॥ क्रमेणोदा०—

हंसः करीव निर्भाति विधुवत्पाण्डुरं वचः ॥

अत्र मरालगजयोः सादृश्यं नास्ति, वचसि शौक्ल्यमसम्भवि ।
उपमानस्य जातिप्रमाणगते न्यूनत्वाधिक्ये च तथा ।
क्रमेणोदा०—विप्रोऽयं सर्पवद्दीप्रो दधिबिन्दुनिभो विधुः ।
अत्र जात्या प्रमाणेन च न्यूनता । दीर्घायुर्द्रौणिवत्काको वेणीयं यमुनोपमा । अत्र जात्या प्रमाणेन चाधिक्यम् ।००।

नवप्रभः संप्रति काव्यकौस्तुभः
प्रभाति विद्यं कविभूषणेन यः ।
आलोकत स्तस्य जनैः सुबुद्धिभिः
परीक्ष्यतामेष नु काव्यपूरुषः ॥

विद्याभूषणगदितं गदितन्त्रं काव्यकौस्तुभं विश्र ।

उपमा में सादृश्य एवं असम्भव--हेतु अनुचितार्था है । उदाहरण क्रमशः— "हंसः करीव निर्भाति विधुवत् पाण्डुरं वचः ॥

हंस करी के समान प्रतिभात होता है । विधु के समान वाणी शुभ्र है । यहाँ मराल एवं गज में सादृश्य है ही नहीं । वाणी में शुक्लता भी असम्भव है ।

उपमान का जाति प्रमाण होने एवं न्यूनता आधिक्य होने से दोष होता है । क्रमशः उदाहरण—

"विप्रोऽयं सर्पवद् दीप्रोदधिबिन्दुनिभो विधुः ॥

यह ब्राह्मण सर्प के तुल्य दीप्तिशील है । दधिबिन्दु के समान चन्द्र है । यहाँ जाति एवं प्रमाण के द्वारा न्यूनता है ।

"दीर्घायु द्रौणिवत् काको वेणीयं यमुनोपमा ॥

द्रौणी के समान यह काक दीर्घायु है । यह वेणी यमुना के तुल्य है । यहाँ जाति एवं प्रमाण के द्वारा आधिक्य है ।

तिष्ठति यदि कमनीयो नमनीयोऽसौ न किं सदसि ॥२॥

इति काव्यकौस्तुभे शब्दार्थालङ्कारनिर्णयो
नवमी प्रभा ॥९॥

—*—

सविवरण ग्रन्थोप संहार करते हैं—

नवप्रभ सम्प्रति काव्य कौस्तुभः
प्रभाति विद्य क विभूषणनेयः
आलोकत स्तस्य जनैः सु बुद्धिभिः
परीक्ष्यतामेष नु काव्यपूरुषः ॥

श्रीबलदेव विद्याभूषण रचित जो नव प्रभ नवीन कान्ति विशिष्ट अर्थात् नवम परिच्छेद विशिष्ट काव्य कौस्तुभ ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, इस का अवलोकन सुबुद्धिमान् जनगण करें, एवं काव्यादि लक्षणों की परीक्षा करें।

विद्या भूषण गदितं गदितन्त्रं काव्य कौस्तुभं बिभ्रत् ।
तिष्ठति यदि कमनीयो नमनीयोऽसौ न किं सदसि ॥"

विद्या भूषण द्वारा कीर्तित काव्यानुशासन रूप काव्य कौस्तुभ को अभ्यास करने से सभा में स्पृहणीय इस प्रकार कुछ अवशेष नहीं रहेगा जो नत नहीं होगा अर्थात् आयत्त में नहीं आयेगा।

इति काव्य कौस्तुभे शब्दार्थालङ्कार निर्णयो नवमी प्रभा।
(संवत् १८१२ का माह सुदि १ दिने शनिवासरे एषा पुस्तका सवाई जयपुर मध्ये लिपीकृता)

शास्त्रिणा हरिदासेन वृन्दारण्य निवासिना
व्याख्यातं सप्रयत्नेन लोकानां बोधहेतवे ।
नेत्र वेद नभः पक्षे कार्त्तिके रविवासरे
गान्धर्विका प्रसादेन ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः ॥

—*—